डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2024-26
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 140
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

मूल्य 50/-

42 वाँ वर्ष

फरवरी 2024

अक्षरा

227

साहित्य की मासिकी

साधो सबद साधना कीजै
अजित वडनेरकर

स्तंभ
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, रामेश्वर मिश्र पंकज, कुसुमलता केडिया

अनुवाद
विभा खरे

आलेख
चन्द्रप्रकाश त्रिवेदी, शिवदयाल, कृष्ण बिहारी पाठक, चन्द्रप्रकाश जायसवाल आदि।

शोधालेख
सुभाष जाटव, अमन वर्मा 'दीप अमन', मंजुल कुमार सिंह

ललित निबंध
आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

व्यंग्य
भूपेन्द्र भारतीय

कहानी
मंगला रामचंद्रन, संजय कुमार सिंह, राजा सिंह, सुशांत सुप्रिय

अक्षरा
अंक-227
मूल्य 50/- रुपये

वरिष्ठ छायाकार
जगदीश कौशल

राष्ट्रकवि पंडित सोहन लाल द्विवेदी

जन्म : 22 फरवरी 1906
प्रयाण : 1 मार्च 1988।

पंडित सोहन लाल द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के बिन्दकी नामक कस्बे में हुआ था। उनकी हाई स्कूल तक की शिक्षा फतेहपुर में तथा उच्च शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में सम्पन्न हुई। वर्ष 1976 में कानपुर विश्वविद्यालय से डी. लिट् की उपाधि प्राप्त हुई। महामना मदन मोहन मालवीय और पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के संसर्ग एवं प्रेरणा से उनमें राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रप्रेम के साहित्य-सृजन की भावना बलवती हुई। गाँधी जी के नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन में भी उन्होने सक्रिय रूप से भाग लिया। द्विवेदी जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से देश की युवापीढ़ी में अभूतपूर्व उत्साह एवं देश-प्रेम की भावना का संचार किया। राष्ट्र प्रेम की कविताओं के कारण उन्हें जनता तथा कवि सम्मेलनों में हमेशा उच्च सम्मान प्राप्त होता रहा।

हिन्दी साहित्य की उन्नति एवं समृद्धि के लिए उन्होंने अथक साहित्य साधना की। सन् 1941 में प्रकाशित 'भैरवी' उनका प्रथम काव्य संग्रह था जो स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के लिए प्रेरणा गीतों का संग्रह है। पूजागीत, विषपान, युगाधार, वासन्ती, चित्रा, जय गाँधी आदि उनके काव्य संग्रह हैं। उनके कई बाल काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं जिनमें दूध-बताशा, बाँसुरी और झरना, बच्चों के बापू, बाल भारती, शिशु भारती, हँसो-हँसाओ, नेहरू चाचा आदि प्रमुख हैं। उनका एक गीत बहुत प्रसिद्ध हुआ-कोशिश करने वाले की कभी हार नहीं होती।

द्विवेदी जी ने प्रबंध, गीति और मुक्तक तीनों शैलियों में काव्य रचना की है। उनकी भाषा सरल, सरस, प्रवाहपूर्ण, शुद्ध एवं परिमार्जित खड़ी बोली है। उनकी भाषा में व्यावहारिक शब्दों, मुहावरों तथा उर्दू भाषा के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी दिखाई देता है। उन्होंने सन् 1938 से 1942 तक लखनऊ से प्रकाशित दैनिक राष्ट्रीय समाचार पत्र 'अधिकार' तथा कई वर्षों तक 'बालसखा' बाल पत्रिका का सम्पादन भी किया। राष्ट्रकवि की उपाधि से अलंकृत पंडित सोहन लाल द्विवेदी को भारत सरकार द्वारा वर्ष 1969 में पद्मश्री उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया था। उनका यह दुर्लभ कलात्मक छायाचित्र भोपाल के सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध छायाकार श्री जगदीश कौशल द्वारा सन् 1980 में पंडित जी के भोपाल प्रवास के अवसर पर क्लिक किया गया था।

अक्षरा

227

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
42 वाँ वर्ष

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

संजय सक्सेना
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन सहयोग

सुधा बाथम
अक्षर-संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, (लेखाविभाग-2661087)
ई-मेल - **myakshara18@gmail.com**
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - **www.एमपीराष्ट्रभाषा.com**

ज्यां फ्रेन्कोइस लियोटार्ड का वह कथन याद कर लें तो राम को इस देश का इतिहास न मानने के लिए आमादा लोगों का दुख दूर हो जायेगा।

'हम आदतन निम्नवत् क्रम पेश करते हैं, कि एक तथ्य है, उसके गवाह का बयान है, मतलब यह कि एक वृत्तांतमूलक गतिविधि अपने को एक तथ्य से एक वृत्त में कायांतरित कर रही है। इतिहास की इस मुश्किल पर यह स्थिति एक नाटकीय प्रादर्श सामने लाती है= कि बाहर की ओर एक तथ्य है, नाट्यस्थल से अलग, इधर मंच पर नाटकीय विमर्श सामने आता हुआ, उसके भीतर छुपा हुआ निर्देशक, कथावाचक अपनी सारी मशीनरी के साथ, वृत्तांत की गढ़न। इतिहासकार से अपेक्षा है कि वह इस पूरी मशीनरी और कुचक्र को अस्वीकार कर दे और बहाल करे उस निर्वासिती को, इस नाट्य की दीवालों को गिराकर। पर यह स्पष्ट करता है कि इतिहासकार खुद भी कुछ नहीं बस एक और निर्देशक है, उसका वृत्त कुछ नहीं बस एक और उत्पाद है, उसका कार्य बस एक और वृत्त।'

तो राम का वृत्तांत अस्वीकार करने वाला इतिहासकार अपनी ओर से किसी तथ्य को नहीं पेश कर रहा बल्कि एक अपना ही वृत्तांत तैयार कर रहा है।

तो राम के मामले में तथ्यवाद का रोना रोने वाले स्वयं जिन्हें प्रस्तुत करते हैं, उनके विवरणों में भी उतनी ही कहानी है।

राम के इतिहास को किसी सभ्यतागत विस्तार में देखने की जगह इतिहासकार को यह लगता है कि मध्यकाल के बारे में उसके पास ज़्यादा विशेषीकृत पहुँच है जबकि सच तो यह है कि वहाँ भी उसने एक वृत्तांत ही तैयार किया है।
तब इरफ़ान हबीब किसी जियाउद्दीन बरनी के कथन का इस्तेमाल करते हुए सांप्रदायिक इतिहासलेखनशास्त्र का ही प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं, जबकि राम के वृत्त को कहने वाले एक साभ्यतिक इतिहास लेखनशास्त्र को पेश करते हैं।

और हमारे प्रगतिशील इतिहासकार–जिन्हें मैं सांप्रदायिक इतिहासकार कहना ज़्यादा उचित समझता हूँ अपने इतिहासों में इतने चालबाज किस हक़ से हैं? जब वे मंदिरों के नष्ट किये जाने के पीछे धार्मिक कारण न ढूँढ़कर आर्थिक कारण बताते हैं या वे उपनिवेशवाद के पीछे पोप की धर्माज्ञाओं की भूमिका छिपाते हैं और तत्समय यूरोप के अनेक देशों में गठित ईस्ट इंडिया कंपनियों के आर्थिक उद्देश्यों को बताते हैं तो क्या ऐसा करके वे ज़्यादा धर्मनिरपेक्ष हो जाते हैं? वे दरअसल आक्रामकों और साम्राज्यवादियों के सम्पूर्ण चरित्र को समझाने की जगह खुद उसे एकांतिक (मॉड्युलर) बना रहे हैं।

और क्या ऐसा करने से यह तथ्य नष्ट हो जायेगा कि मंदिर नष्ट किये गये? यदि धार्मिक की जगह आर्थिक कारण से भी कोई चीज़ नष्ट की गई हो, तो यह उस मंदिर में आस्थार्पण करने वालों के दुख को कैसे कम करती है?

नतीजा यह है कि आक्रमण का औचित्यीकरण करने वाले अंतत: रावण के औचित्यीकरण में ही रत हो जाते हैं। अंतत: रावण के आतंकवाद का समर्थन करने वाले मंदिरों को नष्ट करने वालों, ब्राह्मणों और बौद्धों का नरसंहार करने वालों, मुंडों की मीनार खड़ी करने वालों, दास व्यापार करने वालों के आतंक को कमतर करते दिखते हैं।

आज भक्ति की सामूहिकता से इतने विचलित होने वाले शुक्र

मनाएँ कि यह एक सभ्य देश है, यह अपनी आस्था में खुश है, उसे सैनिक ताक़त के दम पर किन्हीं दूसरी जातियों और देशों पर लादने नहीं जाता।

इसकी भक्ति ने देश भर में अद्भुत रचनात्मक ऊर्जा का संचार किया है, यह आपको दिखाई नहीं पड़ता? आपको दिखाई नहीं देता कि क्यों कोई गीत बना रहा है, कोई संगीत, क्यों कोई लड्डू बना रहा है, क्यों कोई अगरबत्ती बना रहा है, कोई मूर्ति बना रहा है, तो कोई धनीमानी होते हुए भी श्रमदान कर रहा है। यहाँ अपनी आस्था के प्रदर्शन के लिए कोई किसी के मंदिरों को नष्ट नहीं कर रहा। न कोई बामियान के बुद्धों को उड़ा रहा है। यह राष्ट्र की ऊर्जा की सृजनात्मकता है।

क्यों देश भर के अलग अलग कोनों से लोग उमड़े आ रहे हैं? कभी कोई इनके लिए उत्तर से दक्षिण तक चला था तो क्या आश्चर्य कि उसी की कृतज्ञता स्वरूप आज लोग उसके लिए चलकर आ रहे हैं।

सिर्फ़ रोज़ा पार्क को बैठने की जगह देने से इनकार कर दिया था तो क्रांति हो गई थी, अब इतने सारे लोगों ने कहा है कि राम की सीट किसी को नहीं दी जायेगी तो आप उसे प्रतिगामी कहेंगे?

यदि जेरूसलम दो बार नष्ट किया गया, 23 बार उस पर घेरा डाला गया, 44 बार उसे कब्जाया गया या फिर से कब्जा किया गया, और कितनी ही बार कत्लेआम हुआ, यदि यहूदियों ने शताब्दियों तक जेरूसलम की तरफ़ मुँह करकर प्रार्थना करना, हर विवाह में जेरूसलम को याद रखना जारी रखा तो भारतीयों ने भी अयोध्या में पाँच शताब्दियों तक अपने राम की सीट को पुन: प्राप्त करने के लिए प्राण दिये हैं, वे कभी नहीं भूले उसे जिसे आप इतिहास से ही बाहर कर दिये थे। यह स्मृति की इतिहास पर विजय का प्रसंग है।

वैसे सच तो यह है कि ये कॉमरेड भी नहीं भूले तभी तो देखिए कि मीटर और सेंटीमीटर के हिसाब से ये यह बताने में जुटे हैं कि यह मंदिर 'वहीं' नहीं बन रहा है।

जैसे यहूदियों के लिए कौल था कि यानी यदि मैं जेरूसलम को भूलता हूँ तो मेरा दाहिना हाथ अपना कौशल भूल जाये– तो क्या वैसा कुछ हिन्दुओं के लिए असंभव था? वे हाथ अपना कौशल नहीं भूले। उन कारीगरों से पूछें जो अपनी छेनी हथौड़ी से मंदिर बना रहे हैं।

और वेंडी डोनिगरों से पूछें कि यदि जेरूसलम का संघर्ष उन्हें वैध नज़र आता है, तो अयोध्या के संघर्ष का सांप्रदायिकीकरण वे कैसे करतीं हैं? यानी दामिनिक लैपियर और लैरी कॉलिन्स ओ जेरूसलम लिखें तो हमारे बुद्धिजीवी मुग्ध और यहाँ कोई 'ओह अयोध्या' कहे भी तो सांप्रदायिक।

अयोध्या वह स्थान है जहां भारत का मर्त्य मनुष्य अपने आपको अमरता की बाँहों में महसूस करता है। उसके सामने इतिहास वैसे ही कितना क्षुद्र नज़र आता है, उस पर इन सांप्रदायिक इतिहासकलाकारों का टुच्चापन।

जिस तरह से अयोध्या ने इस समय कलाकारों, आम आदमियों, धर्मज्ञों, राजनीतिज्ञों, विशेषज्ञों की कल्पना को केन्द्रित किया हुआ है, क्या वह इस बात की ऐतिहासिक क्षतिपूर्ति है कि इतने समय तक उसे हाशिये पर डाला हुआ था?

जब जब भी उस पर चर्चा होती तो उसका अवैधीकरण यों कहकर करने की कोशिश होती कि और भी ग़म हैं जमाने में। तो ये जो और भी ग़म हैं, इन्हें एक कवच की तरह पाँच सौ वर्षों तक इस्तेमाल किया जाता रहा उस चीज़ को स्थायित्व देने में जो सिर्फ़ आक्रामक तरीक़े का नैरंतर्य निश्चित करती थी।

लेकिन तब वे ग़म ख़त्म क्यों नहीं किये जा सके जिनका रोना आज रो रहे हैं। वो बेरोज़गारी, वो महँगाई–वो ख़त्म क्यों न हो

पाईं। कितनी शताब्दियाँ चाहिए थीं? अमेरिका तो स्वतंत्र होने के चालीस वर्षों में विश्व की सबसे बड़ी शक्ति बन गया था। और जिन्होंने बंगाल और केरल के औद्योगीकरण का नाश कर दिया, जिन्होंने मिलों में आग लगाकर काम करने वालों को जिंदा जला दिया वे बेरोज़गारी की बात करते हैं?

क्या धर्म और बेरोज़गारी में कोई द्वैत है या परस्पर एक दूसरे को खारिज करने की कोई अपरिहार्य स्थिति है? यदि है तो उसके कोई प्रमाण, साक्ष्य, सांख्यिकी क्यों नहीं प्रस्तुत किये जाते? एक संस्कृति थी जिसके भीतर यह द्वैत नहीं था। आज भी जहां जहां इस संस्कृति का पुनर्जीवन किया जा रहा है वहाँ वहाँ यह नये आर्थिक अवसर निर्मित कर रही है, संपदाओं का सृजन कर रही है। यह तो वह संस्कृति है जो कर्म को पूजा मानती है। उस राम के चिन्ह को मिटाने का क्या अर्थ था जिसने कर्म से स्वयं को परिभाषित किया?

जिन्होंने भवनों का धर्मान्तरण कर लिया वे क्या भावना का धर्मान्तरण कर सके?

और स्वयं आप चूँकि एक विचार को भाव की तरह पाले हुए हैं तो आपको यह अधिकार कैसे मिल गया कि दूसरे की भावना पर विचार न हो? दूसरों की अभीप्सा और लगन का निरादर कर दिया जाये? आपके लिए संभव होगा कि वह कोई पाँच शताब्दी पूर्व का कोई गड़ा मुर्दा है, कि एक मंदिर था-ख़त्म हुआ पर क्या इस बात का कोई प्रमाण है कि वह देवता वहाँ से बेदख़ल हुआ और भावनाओं का वह संघनन निर्मूल हुआ।

जो जगत् का पिता था, उसे आपने अपनी औपनिवेशिक व्यवस्था में सतत् शिशु कहा। सतत शिशु। तब वह व्यवस्था रामलला के साथ अन्याय कैसे करती रही? सतत् शिशु तो जैसे अयोध्या के रामलला हैं, वैसे ही मथुरा के कृष्ण हैं। दोनों का शिशुत्व-शब्दश: वैसे तो सतत शिशु का विधिक अभिकल्प सभी देवी-देवताओं के लिए था, लेकिन ये तो वाक़ई शिशु हैं-रामलला और बालगुपाल।

और यह विधिक व्यक्ति जिसे अंग्रेज़ी क़ानून ने एक सर्वदा-शिशु का दर्जा दिया, इसके बारे में न्यायालयीन नीति अयोध्या विवाद से बहुत पहले से ही यह थी कि 'देवता के हितों का रक्षण करना राज्य के सभी विभागों / अंगों का काम है और स्वयं अदालतें इस जिम्मेदारी से बरी नहीं हैं।'

तब रामलला के हित-संरक्षण में वे ही न्यायालय कैसे विलंब कर रहे थे जिन पर इसी हित-संरक्षण की जिम्मेदारी स्वयं इन्हीं के निर्णयों में पूर्व से ही आयद थी।

आज भी क्या दूसरे देवता उनके भवनों के धर्मांतरण के बाद नष्ट हो गये कि वे रामलला विराजमान की तरह विराजमान हैं? जो हमें व्यतीतग्रस्तता के ताने देते थे, वे 'विराजमान' की सनातनता के विधिक सिद्धांत की कभी चर्चा क्यों न किये?

क्या भवनों का धर्मांतरण संभव भी है?

जो लोग मूर्ति को बेजान समझते थे वे मंदिरों को कभी चर्चों में तो कभी मस्जिदों में कैसे धर्मांतरित करते थे? धर्म तो किसी जीवित पर ही धारित किया जा सकता था न?

अब मंदिर और चर्च को तोड़कर मस्जिद बनाने में किंचित् भी जिन्हें भय न लगा कि ये क़ुरान के उस निर्देश का उल्लंघन है जिसमें विवादास्पद स्थान पर मस्जिद नहीं हो सकती-वे कम से कम उस भवन के धर्मांतरण में ही मौलिकता का परिचय दे देते पर जैसे यूरोप में चर्च मध्यकाल में मस्जिद बनाये गये पर दीवारें आज तक चुग़ली खाती हैं वैसे ही भारत में जिन जगहों पर अंधा भी देखकर बता देगा कि यहाँ मंदिर था-वहाँ भी अदालत-अदालत का खेल खेला जाना क्या उस सतत शिशु के हितों के प्रति राज्य की सारी व्यवस्था जिनमें अदालतें भी शामिल हैं- द्वारा पर्याप्त सतर्कता का परिचय देना है?

क़ानूनन तो रामलला सप्राण हैं ही–न्यायिक व्यक्ति की हैसियत है ही उनकी। पर बात सिर्फ़ प्राण की ही नहीं है, प्रतिष्ठा की भी है। एक ध्वस्त हुए मंदिर से पाँच शती तक खोई हुई प्रतिष्ठा की अब वापसी हो रही है।

और बेचारे भारतद्वेषी। कितनी मेहनत करते थे। कभी भारत को जाति में बाँटने की। कभी उत्तर दक्षिण में बाँटने की। हर बार यह राम चुनौती सिद्ध हुआ। हर बार राम का नाम उभरता है और उनके किये–धरे पर फिर पानी फिर जाता है। अब भी उसे धर्मोन्माद कहे बग़ैर चारा नहीं है।

कहें–कहें। ये खीझ अच्छी है।

क्या भारत में धर्म की संकल्पना सांगठनिक है? क्या भारत में धर्म धारण किया जाता है या उसका संधारण किया जाता है? क्या सनातन में धर्म का कोई संघ है? क्या यहाँ धर्म का कोई खलीफा है? या कोई पोप है? क्या यहाँ धार्मिक होने का कोई प्रमाणन–निकाय है?

ये प्रथमवादिता और महत्तमवादिता के प्रादर्श कहीं से भी कभी भारत में अपनाये न गये। फिर यही नक़ल जारी रही तो पोप की त्रुटिहीनता के सिद्धांत की तर्ज पर यहाँ भी लोग स्वयं को त्रुटिहीन मानने लगेंगे। मैं किसी का अंत कर दूँगा, नाश कर दूँगा जैसे शब्द मध्यकालीन पोप की याद दिलाते हैं जो राजाओं के मुकुटभंग करने की शक्ति भी अपने पास रखते थे।

भारत की धर्म संकल्पना इसी अर्थ में तो विशिष्ट है कि यहाँ कोई एकमात्र Holy See नहीं है। फिर भी हमारे यहाँ उनके प्रारूप और प्रादर्श में अपने यहाँ भी अपने लिए भी कुछ विद्वान प्राधिकार–परिकल्पना करते हैं। जबकि हमारे धर्मग्रंथ भरे पड़े हैं ऐसे विवरणों से जहाँ ऐसे कर्मकांडी अहं आम आदमियों द्वारा खंडित हुए हैं। महाभारत में वन पर्व में कौशिक पंडित की कथा याद करें जिसकी क्रूर दृष्टि से एक पक्षी के भस्म हो जाने पर उसे अपने पांडित्य पर और धर्म के सम्बन्ध में विशेष सत्ता का गर्व हो आया था और एक साधारण सी गृहिणी ने उसका अभिमान तोड़ दिया था और एक धर्मव्याध ने भी। तब उस गृहिणी ने क्या कहा था? कि 'ज्ञान पर किसी का एकाधिकार नहीं है। वह शूद्र के पास भी हो सकता है और एक ब्राह्मण भी उससे वंचित रह सकता है। यदि आपको धर्म तत्त्व को मूल में जानना है तो धर्म व्याध के पास जाना ही होगा। उन्हें गुरु बनाना ही होगा तभी आप धर्म को तत्त्व से जान सकते हैं।'
और उस धर्मव्याध ने क्या कहा था? 'हे द्विज श्रेष्ठ! यज्ञ, दान, तपस्या, वेदों का अध्ययन और सत्यभाषण ये पांच तत्त्व शिष्टाचार के अंग हैं। काम, क्रोध, लोभ, दंभ, कुटिलता को वश में करके जो केवल धर्म को अपनाते हैं वे शिष्ट पुरुष कहलाते हैं। एक शिष्ट व्यक्ति में बुद्धियोगमय महान धर्म प्रकाशित होता है। अहिंसा, सत्य , सदाचार, अक्रोध, सरल, मनोनिग्रही व्यक्ति अहंकार और ईर्ष्या–द्वेष से परे रहकर शिष्ट बन जाता है। शिष्टाचारी सत्त्वगुण से संपन्न होता है।'

धर्म के संदर्भ में यह कहना कि मैं तुमसे अधिक धार्मिक हूँ– अशिष्टता है। धर्म के प्रति अधिकार भाव होने का स्वागत है, पर धर्म के प्रति मालिक मूलक तो न हों।

क्या बृहद्धर्मपुराण के तुलाधार व्याध की कथा भी ऐसी ही नहीं है जहाँ कृतबोध ब्राह्मण को अपने ब्रह्मबल पर गर्व हो आता है तो लौकिक व्यवहार में लगा वह व्याध ही उनके गर्व का निराकरण कर उन्हें बताता है कि–निःसृते तपसि ह्युग्रे साहंकारोऽभवद् भवान्–कि तपस्या आगे बढ़ने पर आप अहंकारी हो गये।

क्रोध में आकर वेदव्यास जी ने एक बार काशी नगरी को शाप दे दिया था कि तीन पीढ़ियों तक वह नगर विद्या, संपत्ति और मुक्ति से वंचित हो जाये तब एक साधारण गृहिणी ने ही उन्हें उनकी सीमा बताई थी। विशिष्ट होने से पहले जरूरी है कि हम शिष्ट हों।

यह अयोध्या भी उतनी ही पवित्र है और कुछ लोग उतने वेदव्यास भी नहीं।

तो भारत में धर्म कोई अधिक्रम स्थापित नहीं करता। कोई केंद्रीय सत्ता नहीं। कोई सीमान्ती सत्ता भी नहीं। धर्म किसी को कोई विशेषाधिकृत प्रास्थिति नहीं देता। भारत में पवित्र दृष्टा वे ऋषितुल्य लोग हैं और उस नाते उनका सम्मान भी है, पर वे Holy See जैसे नहीं हैं और न उन्हें ऐसा बनना चाहिए। भारत में कभी कोई पोपाज्ञाएँ नहीं निकली गई हैं और न फ़तवों की कोई प्रथा यहाँ रही है। Vicarius Christi जैसा कोई लैटिन सिद्धांत कि कोई आम्नाय या आस्पद ही एकमात्र ईश-प्रतिनिधि है, भारत में कभी नहीं रहा। यहाँ कभी कोई किरात कभी कोई चांडाल भी यह अहसास करा जाता है कि वह शिव है, कि कोई गृहिणी भी अन्नपूर्णा है। इस साधारण जन की श्रद्धा और उत्साह की अवमानना नहीं होनी चाहिए। राम का संघर्ष भी जनसंघर्ष था और राममंदिर का संघर्ष भी जनसंघर्ष है। उस जनभावना की सफलता के समय पौरोहित्य को प्रतिपक्ष की तरह खड़ा करने की चालाकी से बचें।

क्या किन्हीं को लगता है कि अभी जो हो रहा है, उससे उनके प्राधिकार में कमी आयेगी? यह भाव आना ही मानसिक पाप है। चतुर लोग कुछ भले और भोले लोगों के दर्प के साथ खेल रहे हैं पर ईश्वर के समक्ष विनय का सम्मान है। दर्प के दर्पण टूट जाते हैं। बात रामलला की प्राणप्रतिष्ठा की है और इन भले लोगों को अपनी प्रतिष्ठा के वात्याचक्र में व्यस्त कर देने की चालें चली जा रहीं हैं। प्राणप्रतिष्ठा को प्रतिष्ठान की प्रतिद्वंद्विता में न रखें। राम सबके प्राणस्वरूप हैं। यह क्रांति और संक्रांति का समय है।

क्या उन्हें लगता है कि यह किसी सीजरोपेजिज्म का संकेत है? कि राजनीतिक और धार्मिक प्राधिकार का एकीकरण हो रहा है? लेकिन राम के समक्ष कोई दंडवत् होता है तो वह पुण्य का अर्जन करता है, प्राधिकार की चिन्ता नहीं करता। यही तो भारतीय जनमन की अभीप्सा है कि आधुनिक भारत की राजसत्ता सार्वजनिक रूप में राम के समक्ष प्रणत और दंडवत् हो। वही चिराकांक्षा पूरी हुई है।

ओह जल्दबाज़ी है! वाकई पाँच सौ वर्षों की प्रतीक्षा के बाद ऐसे शब्द क्या उन लोगों को शुभ हैं जो त्वरिताविद्या के प्रति आस्था रखते हैं? क्यों उसे हम ऐसी घटना का अनुवर्ती बनायें जिसके बाद के चरों पर हमारा अधिकार नहीं है। शुभस्य शीघ्रम् वाले देश में ये स्थगन की भाषा बोलने वाले लोग कैसे शास्त्रीय माने जा सकेंगे? ये राम हैं जो पूछ रहे हैं-अब बिलम्ब केहि कारन कीजे। राम तो कोई मुहूर्त-मंथन नहीं करते। कोई सगनौती कोई चौघड़िया नहीं। तुरत कपिन्ह कहु आयसु दीजे कहते हैं वे। और राम को भक्तों की वह आर्त पुकार भी पता है-अब बिलंब केहि कारन स्वामी/ कृपा करहु उर अंतरयामी।

कोई भी जो उस क्षण विशेष पर बहिर्याग में सम्मिलित नहीं हो रहा है, उसे इस अनुष्ठान के दुश्मन की तरह नहीं प्रचारित करना यदि वह उसी क्षण अन्तर्याग में दत्तचित्त हो। मनसा परिकल्पया उसमें सम्मिलित होना भी उतना ही शुभ था।

क्रियालोपजनित या मंत्रवैकल्पजनित दोष के प्रति कोई अवधान है तो उस दोष की शुद्धि स्वत: प्रेरणा से क्यों नहीं की जा सकती? राम के प्रति श्रद्धा है तो दृष्टि, स्पर्श और संभाषण से एक वृहत्तर विमर्श विवेक के साथ तीव्रा और तीव्रतरा शक्ति से पाश-नाश तब भी कर सकते हैं जब आप रामलला की प्रतिमा की सन्निधि में न हों। वे लोग निश्चित ही राम के शुभचिन्तक नहीं हैं जो ऐसे ऐतिहासिक अवसर पर खटास को बढ़ाना चाहते थे।

उपचार औपचारिक नहीं होते यह मानने के बावजूद आदिशंकराचार्य ने जो कहा था उसका ध्यान रखकर बाल की खाल निकालने से तो विरत रहा जा सकता है न : 'जो सबका आधार है, उसे आसन किस वस्तु का दें? जो स्वच्छ है, उसको पाद्य और अर्घ्य कैसे दें? और जो नित्य शुद्ध है,

उसको आचमन की क्या अपेक्षा? निर्मल को स्नान कैसा? निर्लेप की गंध कैसी? निर्वासनिक को पुष्पों से क्या? निराकार के लिए आभूषण क्या? निरंजन को धूप से क्या? सर्वसाक्षी को दीप कैसा? अनंत की परिक्रमा कैसी?'

'मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौजस्तेजः प्रभावबल- पौरूषबुद्धियोगाः/ नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो/ भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय/ विप्राद्विषर मन्यतादरविन्दनाभपादारविन्द सुखाच्छ पिच जरिवान मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः।'

आदिशंकराचार्य के इन प्रश्नों की उग्रता और ताप का अनुस्मरण और अनुचिंतन करेंगे तो सबकी उग्रता और ताप अपने आप कम हो जायेगा।भगवान तो भाव के भूखे हैं। वे शबरी से ये पूछने की धृष्टता नहीं करते कि उसके बेर थाली में रखकर लाये गये हैं या आँचल में। भाव ही उनका नैवेद्य है।

हमारे बाबा तुलसी दास कहते हैं : -
रिस तन जरइ होइ बल हानि।

याद कीजिए राम को प्रसंग है धनुर्भंग का। धनुष तोड़ दिया गया है। अब परशुराम जो आवेशावतार हैं वे आवेश में भरकर चले आये हैं धनुर्भंग की धरती पर। लक्ष्मण के रूप में उनके सामने आ गये हैं एक दूसरे आवेशावतार। आवेश से आवेश की टक्कर होती है। आवेश से आवेश और भड़कता है।

तब राम का हस्तक्षेप एक ऐसे व्यक्ति का हस्तक्षेप है जिसमें भावनात्मक परिपक्वताएँ हैं, जो भावनाओं को काबू में रखना जानता है, जो संयत रहता है। आख़िरकार जो आवेश में है वह भी नारायणावतार है। बस हुआ यही है कि उसका युग चला गया है।

राम वही हैं जो अपनी संवेगात्मकताओं का अपहरण (न्यूरल हाईजैकिंग नहीं होने देते। वे आत्म-प्रबंधन में कुशल हैं इसीलिए कौशलाधीश हैं।

उधर परशुराम जितना क्रोध करते जा रहे हैं उतनी उनकी बलहानि होती जा रही है। उनके लिए बेहतर यही है कि वे अपना धनुष राम को थमा दें अन्यथा धनुष खुद-ब-खुद खिंचकर राम के पास चला जायेगा।

यों ही नहीं राम धीरोदात्त नायक हैं। वे आवेश का उत्तर सौम्यता से देते हैं। वे धीरता भी रखते हैं, उदात्तता भी। राम आवेग के वेग को दिशा देना जानते हैं- हद में रहे बग़ैर गुज़ारा न हो सका/ पानी बग़ैर किनारों के दरिया न हो सका।राम ने आवेग के तटबंध तैयार किये हैं क्योंकि आगे जाकर उन्हें आवेग से सेतु भी तैयार करना है।

तुलसी तो कह चुके कि

जदपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता॥

राजनीति तो ईश्वर का, राम का कार्यक्षेत्र है। और यहाँ उनके अनन्य क्षेत्राधिकार पर अतिक्रमण की कितनी उत्कंठा दीख पड़ रही थी? इस हद तक कि राम तक को बुरा-भला कहा जाने लगा।

इसलिए मैं 'निराला' की राम की शक्ति पूजा को त्रिकालज्ञ- क्षण में सृजित रचना कहता हूँ। उनके राम भी यह कहने को बाध्य हो गये थे -
धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध

आप आज भी महसूस कर सकते हैं। कई लोग तो सीधे माँ बहन की गाली पर उतर आए।

पर इससे राम प्रभावित नहीं होते, यह भी 'निराला' कह गये थे-

वह एक और मन रहा राम का जो न थका,

जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय,
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युतगति हतचेतन

मायावरण भेदने की ऋतु है। जय तो प्राप्त होगी ही।
क्या यह कोई साधारण संघर्ष था?
राम का या राममंदिर का?

तुलसी के शब्द याद करें

अति संघरषन जौं कर कोई।
अनल प्रगट चंदन ते होई॥

राम ने अति संघर्ष ही किया है। तभी इस चंदन से अग्नि की तरह प्रकट हो रहे हैं। वैसे अवसर था लोगों के पास कि विरोध न करके प्रेम से बात मान लेते क्योंकि यह भी तो कहा गया था कि –

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। / प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

प्रेमत: प्राकट्य हो जाता, हो जाने देते। लेकिन नहीं, हर तरह की चालें चलेंगे। हर जगह काँटे बिछायेंगे।

इसीलिए राम का प्रकट होना बैरियों के हृदय में काँटे की तरह चुभेगा ही चुभेगा

राम प्रगट जबतें भए गए सकल अमङ्गल-मूल
मीत मुदित, हित उदित हैं, नित बैरिनके चित सूल।

राम मंदिर के लिए, राम लला के लिए लोग कितने नुस्खेबाज हुए जा रहे हैं जबकि राम स्वयं वानरों को सीता–शोध तक के लिए कोई नुस्खा नहीं देते।

ऐसा नहीं कि वे जानते नहीं हों। उनके ईश्वरत्व की एक ही झलक तो मिलती है तब जब वे उन लाखों वानरों में से सिर्फ़ हनुमान को अंगूठी देने के लिए चुनते हैं। उसी से वानरों में आत्मविश्वास पैदा होता है। सीतान्वेषण अपने भीतर छुपी हुई प्रतिभा और शक्ति का भी अन्वेषण बन जाता है।

पर उन्हीं रामलला के लिए देखिये क्या क्या नुस्ख़े न बता रहे लोग! क्या कभी इन लोगों को वह आरती याद आती है?
मैं मूरख खल कामी कृपा करहु भर्ता

ये हम भारतीयों की नित्य प्रार्थना है। उच्चतर लोग विनय–बोध से करते होंगे, हम लोग यथार्थ–बोध से।

पर उच्चतर लोग उच्चतर इसलिए हैं कि उनके पास विद्या है।
विद्यां ददाति विनयं, / विनयाद् याति पात्रताम्।

तो पात्रता का दावा नहीं किया जाता। पात्रता विनय की परिणति है। विनय विद्या की संतान।

विद्या से यदि विनय न आई तो कहीं जिसका अर्जन किया वह गहरे शास्त्रीय अर्थों में कही जाने वाली 'अविद्या' तो नहीं थी?

(मनोज श्रीवास्तव)
राम-रज, 3-पारिका-फेज 2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-9425150651
ईमेल-shrivastava_manoj@hotmail.com

अंक 227 फरवरी 2024

अनुक्रम

सम्पादकीय

साधो सबद साधना कीजै

'समय' की पहचान / **अजित वडनेरकर**/11

हिंदी एक विचार अनेक-2

मेरी हिंदी कैसी और क्यों / **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय**/13

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित समाज शास्त्र-11

धर्मशास्त्रों में वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम / **रामेश्वर मिश्र पंकज**/15

महाभारत में राजधर्म / **कुसुमलता केडिया**/19

अनुवाद

ऐसा काम ढूँढ़िए जिसे करने से आपको आनंद आता हो (**मूल : स्टीवन पॉल जॉब्स**) / **अनु. विभा खरे**/23

आलेख

ऐकेश्वरवाद का जनक भारत का गौरवशाली अशोक चिह्न / **चन्द्रप्रकाश त्रिवेदी**/27

भारतीय राज्य को शुद्ध भारतीय मूल्यों में संस्कारित करने वाले राष्ट्र-उन्नायक! / **शिवदयाल**/36

भक्ति और प्रेम का उदात्त संस्कार / **कृष्ण बिहारी पाठक**/41

सहस्रार्जुन / **चन्द्रप्रकाश जायसवाल**/44

वर्तमान विश्व और हिन्दी साहित्य / **उमराव सिंह चौधरी**/47

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में बाज़ारवाद / **कृष्ण कुमार मिश्र**/52

सपने न हुए अपने / **कैलाश मड़बैया**/55

नयी शिक्षा नीति 2020: हिन्दी और भारतीय भाषाएँ / **किरण खन्ना**/57

कुमाउँनी लोकसाहित्य में ज्ञान की परम्परा / **प्रभा पंत**/62

शोधालेख

प्रदीप कुमार शुक्ल के नवगीतों में भाव पक्ष/**सुभाष जाटव**/65

हिन्दी सिनेमा के गीतों में गंगा / **अमन वर्मा 'दीप अमन'**/68

भारतीय सिनेमा में चित्रित दिव्यांग / **मंजुल कुमार सिंह**/72

डायरी

संक्रमित करने वाली कुछ पंक्तियाँ / **जयप्रकाश मानस**/77

यात्रा वृत्तांत

धरोहर के दर्शन : सपरिवार / **ब्रज श्रीवास्तव**/83

ईश्वर के घर केरल का भयावह स्वरूप / **शिप्रा ओझा**/86

ललित निबंध
गुलमोहर के फूल / **आनन्द प्रकाश त्रिपाठी/89**
व्यंग्य
पहली पंक्ति के नेता/ **भूपेन्द्र भारतीय/93**
आत्मकथ्य
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन: / **रामवल्लभ आचार्य/94**
कहानी
लिहाज का लिहाफ / **मंगला रामचंद्रन/98**
हसरत / **संजय कुमार सिंह/102**
समय चक्र / **राजा सिंह/107**
दो दूना पाँच / **सुशांत सुप्रिय/113**
कविता
जीवन के सच का पता / **राजकुमार कुम्भज/118**
बहू-बेटियाँ / **ओम उपाध्याय/119**
चुनौती / **देवेन्द्र कुमार रावत/120**
दरवाजा/ **सुरेश नारायण कुसुंबीवाल/121**
गीत
बहती नदी हूँ / **मयंक श्रीवास्तव/122**
ग़ज़ल
झूठ का अवगुण छिपा है / **मनीष बादल/123**
समीक्षा
स्याही के रंग (अभिषेक सिंह) / **रमेश दवे/124**
सुषेण पर्व (देवेन्द्र दीपक) / **कृष्ण गोपाल मिश्र/126**
संघ और तिरंगे (लोकेन्द्र सिंह) / **कृष्णमुरारी त्रिपाठी अटल/130**
स्मृति शेष (प्रतिभू बनर्जी) / **राजेन्द्र सिंह गहलौत/132**
स्वप्नदर्शी (अश्विनी कुमार दुबे) / **विवेक रंजन श्रीवास्तव/134**
शहर दर शहर (राजेन्द्र राजन) / **जया केतकी/135**
पत्रांश

जानू और घुटना

– अजित वडनेरकर

जन्म – 1962।
शिक्षा – हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राजकमल प्रकाशन का विद्यानिवास मिश्र कृति पांडुलिपि सम्मान।

हुआ जब ग़म से यूँ बेहिस, तो ग़म क्या सर के कटने का
न होता गर जुदा तन से, तो ज़ानू पर धरा होता।

फ़ारसी में घुटने को ज़ानू कहते हैं। बॉलिवुडी हिन्दी में प्रिय की अभिव्यक्ति भी जानू है। किसी भी प्रिय के लिए जब लाड़ और प्रेम की चाशनी ज्यादा गाढ़ी हो जाती है तो 'उ' प्रत्यय लगा कर नया शब्द बना लिया जाता है–मसलन राम से रामू, किशन से किशनू, गोल से गोलू, जीजा से जीजू और जान से जानू। जानू उभयलिंगी है अर्थात् प्रियतम भी और प्रियतमा भी। मगर यहाँ हम घुटने वाले जानू की चर्चा कर रहे हैं जो फ़ारसी से आया है और शायरी में ही उसका प्रयोग होता है। अलबत्ता घुटनों के बल बैठने के लिए 'दोजानू' बैठना यानी घुटनों के बल बैठना हिन्दी में भी बोला–समझा जाता है।

अपना हाथ जगन्नाथ– हाथ के लिए 'कर' शब्द में विशालता का भाव भी है जो मूलत: वृद्धि अर्थात् समृद्धि से जुड़ा है। गौर करें शरीर से बाहर निकलती दो भुजाएँ वृद्धि का ही प्रतीक हैं। यूँ भी भुजाओं का लम्बा होना शुभकारी माना जाता है। शास्त्रों में असमान भुजाओं वाले व्यक्ति को चोर कहा गया है। छोटी भुजाओं वाला व्यक्ति दास होता है। घुटनों तक लम्बी भुजाओं वाला व्यक्ति दैवीय और राजसी गुणों से सम्पन्न होता है। इसी अर्थ में अपना हाथ, जगन्नाथ जैसी लोकोक्ति को भी समझना चाहिए।

लम्बे हाथ मारना–फ़ारसी का जानू दरअसल भारत–ईरानी परिवार का शब्द है। इसका संस्कृत समरूप जानु होता है जो हिन्दी में भी है मगर अल्पप्रचलित है। किन्हीं पदों के ज़रिए इसका प्रयोग होता है जैसे 'आजानुभुज' अर्थात् घुटनों तक पहुँचती भुजा, 'आजानुलम्बितकेश' यानी घुटनों तक झूलते बाल या 'आजानुसम' अर्थात् घुटनों की ऊँचाई जितना। ईश्वर को आजानुभुज कहा गया है क्योंकि उनकी भुजाएँ लम्बी होती हैं। कम समय में बड़ी कामयाबी के सन्दर्भ में 'लम्बा हाथ मारना' मुहावरा भी चर्चित है।

गति, चपलता, तीव्रता–गौर करें टाँग का जो हिस्सा कमर से नीचे और घुटनों से ऊपर होता है, जङ्घा कहलाता है। टखने से घुटने के बीच का हिस्सा जङ्घ कहलाता है। अब घुटने के लिए जानु शब्द पर गौर करें। ज वर्ण में गति, तीव्रता का भाव है। जङ्घ, जङ्घा के मूल में जंह् क्रिया है जिसमें गति और तीव्रता है। 'ज' के 'ग' में परस्पर रूपान्तरित होने के नियम को ध्यान में रखा जाना जाहिए। गम् में जाने का भाव है। इसका एक रूप जम् होता है। आशय जाना ही है। हिन्दी की जाना क्रिया का मूल भी यही है। स्पष्ट है कि पैर के तीनों विशिष्ट हिस्सों जाँघ, घुटना और टखना के जाङ्घ, जानु, जङ्घ नामकरण में गति, चपलता, तीव्रता सहज दिखती है। पर व्युत्पत्तिक नज़रिए से यह बहुत तार्किक नहीं है।

व्युत्पत्ति का झमेला–संस्कृत 'जानु' का अवेस्ताई समरूप ज़ानू है। डेविड नील मैकेन्जी के संक्षिप्त पहलवी कोश में इसका रूप 'ज़्नू' है। पहलवी में भी पिंडली या टखना और घुटने के लिए क्रमश: जंग और जानुग शब्द ही हैं। संस्कृत में जङ्घ यानी टखना का रूपान्तर जानु में हो रहा नज़र आता है और यही रूप हिन्दी में प्रचलित हो रहा है। इसी तरह पहलवी में जानुग और जंग दरअसल जङ्घ के समरूप जान पड़ते हैं।

फ़ारसी तक आते-आते यह जानू हो गया ऐसा लगता है। ध्यान रहे, संस्कृत में भी जानु बनते हुए 'ग' का लोप हुआ इसी तरह फ़ारसी में भी 'ग' का लोप होकर सिर्फ जानु बचा, इसका पता पहलवी रूप ज़ानुग से चलता है। किन्तु व्युत्पत्तिक आधार मज़बूत नहीं है।

बात बन्धन, जोड़ की-अंग्रेजी में घुटने को Knee अर्थात् 'नी' कहते हैं। यह भी इसी कड़ी का शब्द है। ज=ग के आपसी रूपान्तर भारोपीय भाषाओं में भी हैं। ज > ग > क जैसे रूपान्तर हैं। संस्कृत जानु का लैटिन समरूप Genu अर्थात् जेन्यू/जीनू/जेनू है। इसका गोथिक रूप Kenu न्यू और जर्मनिक समरूप Knie नी/नाई है। इसका अंग्रेजी समरूप Knee है। भारतीय जाङ्घ, जानु, जङ्घ और यूरोपीय Knie में दरअसल बन्ध, जोड़, गाँठ आदि का व्युत्पत्तिक आधार है। कंधा, जाँघ, घुटना या पिंडली, ऐड़ी दरअसल ये सब जोड़ हैं और प्रकारान्तर से इनका उपयोग गति के लिए होता है।

रोशनी की किरण-इंडो-यूरोपीय भाषाओं में युग्म, संधि, जोड़, ऐक्य, जुटाव, मेल, गठन, युक्त, संग या सटाव के अर्थ में '-घ' और '-ध' अन्त्य वर्णी शब्द हैं जैसे संघ या संध। दोनों का अर्थ समान है। जैसे जङ्घ में ङ्घ नज़र आ रहा है। कन्धा, स्कन्ध से बना है। बन्ध, बन्धन और अंग्रेजी का बेंड स्पष्ट है। युद्ध में -ध स्पष्ट है। संनद्ध को देखें। समस्या यह है कि अंग्रेजी के Knee में 'क' ध्वनि मूक है। इस सम्बन्ध में भी 'ज' और 'ग' के आपसी रूपान्तर को ध्यान रखा जाना चाहिए। जिस तरह 'ज्ञान' अर्थात् ज्न्यान का रूपान्तर मराठी में द्न्यान/ग्न्यान हुआ वैसे ही अंग्रेजी में Known को समझना चाहिए। नॉलेज का अर्थ ज्ञान होता है और इसका 'Kno-' ज्ञान के 'ज्ञा' का रूपान्तर ही है। यहाँ भी क मूक है।

अभिज्ञ, मलज्ञ, ज्ञुबाध्-संस्कृत में अभिज्ञ, मलज्ञ, ज्ञुबाध्, अनुर्ध्वज्ञु जैसे शब्द हैं जिनका अर्थ क्रमशः घुटनों पर, मलिन घुटने, घुटनों के बल व घुटना ऊपर न उठाना आदि हैं। ऐसा लगता है, यहाँ 'ज्ञु' अर्थात् ग्न्यू या ज्न्यू का अर्थ घुटना है। जिसका तार्किक रूपान्तर अंग्रेजी Knee में होता नज़र आ रहा है। मगर भाषा विकास और शब्दव्युत्पत्ति की गुत्थियाँ 1+1=2 जितनी आसान नहीं होतीं। हालाँकि जॉन प्लैट्स और मैकेंजी के कोशों में जानु का अवेस्ताई रूप ज़्नू मिलता है। मोनियर विलियम्स भी 'ज्ञु' का रिश्ता 'जानु' से जोड़ते हैं, मगर स्पष्ट रूप से नहीं। यह ध्यान रखते हुए कि वैदिक संस्कृत में एक ही शब्द के कई रूप मौजूद हैं, 'ज्ञु' से जनु या जानु रूप की कल्पना असम्भव नहीं।

जी-37, फेज-1, ग्रीन मीडोज
भोजपुर रोड, पी.ओ. मिसरोद,
भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो.- 6265739044

सूचना

अक्षरा के सम्माननीय पाठकों, सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि पते के साथ अपना मोबाइल नंबर भी अवश्य भेजें। ताकि पत्रिका आपको पहुँचने में विलंब न हो।

मेरी हिंदी कैसी और क्यों

- नर्मदा प्रसाद उपाध्यय

जन्म - 30 जनवरी 1952।
जन्म स्थान - हरदा (म.प्र.)
रचनाएँ - भारतीय चित्रांकन परम्परा सहित ललित निबंध लेखन के लिए चर्चित।
सम्मान - नरेश मेहता स्मृति वाङ्मय सम्मान सहित अनेक सम्मान।

भाषा की भंगिमा तो भाव के अनुरूप होती है लेकिन इस भंगिमा के तेवर बदलते रहते हैं इसलिए कि भंगिमा को व्यक्त करने वालों के स्वभाव में एकरूपता नहीं होती। इसीलिए यह भंगिमा लक्षणा नहीं होती व्यंजना होती है। हिंदी के अप्रतिम ललित निबंधकार कुबेरनाथ राय का भाषा को लेकर कहा गया यह कथन सहसा कौंध उठता है। वे लिखते हैं अपनी भाषा के बारे में मुझे दरकार है भाषा की। मुझे धातु जैसी ठन -ठन गोपाल टकसाली भाषा नहीं चाहिए। मुझे चाहिए नदी जैसी निर्मल झिरमिर भाषा, मुझे चाहिए हवा जैसी अरूप भाषा। मुझे चाहिए उड़ते डैनो जैसी साहसी भाषा, मुझे चाहिए काक चक्षु जैसी सजग भाषा, मुझे चाहिए गोली खाकर चट्टान पर गिरे गुर्राते हुए शेर जैसी भाषा, मुझे चाहिए भागते हुए चकित भीत मृग जैसी ताल प्रमाण झंप लेती हुई भाषा, मुझे चाहिए वृषभ के हुंकार जैसी गर्वोन्नत भाषा, मुझे चाहिए भैंसे की हँकड़ती डकार जैसी भाषा, मुझे चाहिए शरदकालीन ज्योत्सना में जंबूकों के मंत्र पाठ जैसी बिफरती हुई भाषा, मुझे चाहिए सूर के भ्रमर गीत, गोसाईं के अयोध्या काण्ड और कबीर की साखी जैसी भाषा, मुझे चाहिए गंगा, जमुना, सरस्वती जैसी त्रिगुणात्मक भाषा, मुझे चाहिए कण्ठ लग्न यज्ञोपवीत की प्रतीक हविर भुजा सावित्री जैसी भाषा। कुबेर जी ने अपने इस कथन में भाषा की सभी मुखर भंगिमाओं को प्रत्यक्ष कर दिया है।

अपनी भाषा की कहूँ तो मेरे लेखन के दो छोर हैं। मैं हिंदी में ललित निबंध और व्यक्तिव्यंजक निबंध लिखता हूँ साथ ही भारतीय चित्रांकन परंपरा में मध्यकाल में विभिन्न शैलियों में रचे गए लघुचित्रों की समीक्षा करता हूँ, भारतीय सौंदर्यशास्त्र और कला के अन्य अनुशासनों से अंतर्संबंधों की समीक्षा से लेकर हमारे भित्तिचित्रों के दस्तावेजीकरण तक का कार्य करता हूँ। विदेशों में संग्रहीत हमारी दृश्य विरासत पर लिखता हूँ। कला विषयक यह कार्य अंग्रेज़ी में भी करता हूँ।

इसलिए जहाँ तक मेरी हिंदी की भंगिमा का प्रश्न है, मैं विनम्रता से कहूँ तो वह पारंपरिक हिंदी लेखन से भिन्न है क्योंकि इसमें अंतरानुशासन की झिलमिल है। यह हिंदी उस आमफहम हिंदी से भी भिन्न है जो सामान्य तौर पर प्रयुक्त की जाती है और जिसके बारे में दावा किया जाता है कि वह सामान्य पाठक को समझ में आने वाली हिंदी है। यह हिंदी उस संस्कृतनिष्ठ हिंदी से भी भिन्न है जिसमें विद्वत्ता का आभिजात्य है, उस हिन्दी से भी भिन्न है जिसमें अंग्रेजी के उद्धरण होते हैं, उस हिंग्लिश से भी अलग है जिसने हिंदी की मौलिक अस्मिता को नष्ट करने में कसर नहीं छोड़ी, यह उस अकादमिक हिंदी से भी भिन्न है जिसे शिक्षाविद प्रयुक्त करते हैं और उस प्राध्यापकीय हिंदी से तो बिलकुल अलग है जिसने अपनी बोझिलता से आक्रांत करने की गरज से हिंदी का बड़ी सीमा तक अहित किया है। तो फिर यह कौन सी हिंदी है? यह हिंदी प्रवाह और संवाद की हिंदी है जिसका स्वभाव बंधनजयी है, मुक्त है और हिन्दी की मूल अस्मिता को अपने में समेटती कला की देशज गंध को आत्मसात करती है। हिंदी का यही स्वरूप मेरे ललित और व्यक्तिव्यंजक निबंधों में है। भारतीय

कला, सौंदर्य और उससे जुड़े अनुशासनों की व्याख्या करते हिन्दी का यही स्वरूप प्रकट होता है।

मैं यह फिर पूरी विनम्रता से कहूँ कि यह विशेष रूप से भारतीय कला के लेखन के संदर्भ में पहिला मौलिक प्रयोग है क्योंकि इसके पहिले विशेषकर मध्यकालीन विभिन्न चित्र शैलियों के इन चित्रों का इस प्रकार विश्लेषण नहीं किया गया जो मैं कर रहा हूँ। मेरा अनुरोध जैसी कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से जो मेरी कृति भारतीय कला के अंतर्संबंध प्रकाशित हुई है उसके आलेखों और निबंधों को पढ़ना चाहिए और श्री भँवरलाल श्रीवास के संपादन में निकलने वाली पत्रिका कला समय में प्रकाशित निबंधों को पढ़ना चाहिए। हाल ही में आईसेक्ट से निकली मेरी कृति भारतीय लोक कला और संस्कृति के निबंधों से भी मेरी कला विषयक निबंधों और आलेखों के संबंध में स्थिति स्पष्ट होगी।

मैंने यही प्रयास किया है कि मेरे ललितनिबंधों, व्यक्तिव्यंजक निबंधों और अन्य आलेखों की हिंदी उस हिंदी से भिन्न न हो जिसे मैं अपने कला लेखन में प्रयुक्त करता हूँ। इसलिए हिंदी में कला पर लिखने वाले आधुनिक समय के प्रख्यात कला विशेषज्ञ स्वर्गीय डॉक्टर रमेश कुंतल मेघ की भाषा से मेरी भाषा भिन्न है। कला इतिहासकार डॉक्टर विजय शर्मा के लेखन के निकट है। इसके बारे में बहुत विस्तार से बात की जा सकती है।

मेरे ललित और व्यक्तिव्यंजक निबंधों की भाषा मेरे पुरखों स्वर्गीय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पंडित विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय की हिंदी से भिन्न है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि मैं उनके जितना बहुश्रुत और बहुपठित नहीं हूँ और दूसरे यह कि में कला और विशेष रूप से भारतीय कला को एक विशेषज्ञ के रूप में देखता-परखता हूँ। यह कार्य मेरे इन पुरखों ने नहीं किया।

इन ललित और व्यक्तिव्यंजक निबंधों के मर्म में कला और केवल कला है। हमारे इन तीनों महान पुरखों के निबंध इसी कला के मर्म को आधार शिला पर खड़े हैं और यह भी कि इनकी कला दृष्टि अलग-अलग आयामों पर केंद्रित है। आचार्य दिवेदी कालिदास को केंद्र में रखते हैं जब वे भारतीय कला का आख्यान करते हैं, कालिदास की लालित्य योजना में यह आख्यान है। विद्यानिवास जी डॉक्टर आनंद कुमार स्वामी के कला चिंतन, लोक की कला और भारतीय स्वरूप को अपने आख्यान का आधार बनाते हैं और कुबेर जी हमारी मिथक परंपरा, आनंद कुमार स्वामी के कला दर्शन और पूर्वोत्तर सांस्कृतिक दृष्टि को आधार बनाते हैं। शंकर देव और माधव कंदली उनके चिंतन के केंद्र में हैं। सार रूप में कहूँ तो ललित निबंध का लेखन निर्जीव भाषा की अठखेली नहीं है। यह मनुष्य की विकास यात्रा के पथ को प्रशस्त करने का माध्यम है। मुझे यह कहते हुए बहुत पीड़ा है कि कतिपय स्वनाम धन्यों ने अपनी अपनी परिभाषाएँ गढ़ कर यह उद्घोष कर दिया है कि उन्होंने जो अवधारणा स्थापित की वही अंतिम है। इस संबंध में इस मैंने अपनी इसी विषय पर आ रही कृति में विस्तार से प्रकाश डाला है। बेहतर हो अगर संपादक महोदय उसके चुने हुए अंश प्रकाशित करें ताकि इस महत्त्वपूर्ण विधा के संबंध में दशकों से फैलाई जा रही भ्रांतियों का अंत हो।

हिंदी संवाद की भाषा है। इसलिए मैंने प्रयास किया है कि मेरे दोनों प्रकार के लेखन में हिंदी का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रतीत न हो अपितु उसकी प्रस्तुति संवाद के रूप में हो। यह लगे ही नहीं कि यह बोझिल विमर्श है बल्कि लगे कि जो कुछ साहित्य और कला की सूत्रबद्धता है, हमारे आज के जो सरोकार हैं, यह उन्हें अभिव्यक्त करने का ऐसा सहज प्रयास है जो सायास नहीं है। यह ऐसी हिंदी है जो अपनी है और जो हर तरह के पराएपन से बहुत दूर है।

85, इन्दिरा गाँधी नगर,
आर.टी.ओ. कार्यालय के पास,
केसरबाग़ रोड, इन्दौर-9 (म.प्र.)
मो. 9425092893

धर्मशास्त्रों में वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम

- रामेश्वर मिश्र पंकज

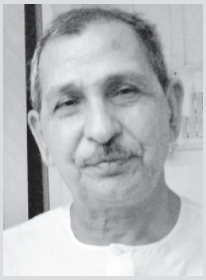

वर्तमान में निरंतर सृजनरत, रीवा मध्य प्रदेश में जन्मे ख्यातिलब्ध दार्शनिक, समाजवैज्ञानिक एवं इतिहासविद, समाजवादी एवं गाँधीवादी आंदोलनों में सक्रियता से सहभागिता कर विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों से सेवा निवृत्त। आपकी बाइस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ आश्रम पर धर्मशास्त्रों के प्रकाश में हमने पिछले अंक में विमर्श किया है। अब प्रस्तुत अंक में वानप्रस्थ एवं संन्यास पर विचार उचित होगा। इस विषय में शास्त्रों के प्रतिपादन ध्यान में रखने पर वर्तमान स्थिति से उनकी तुलना सहज हो सकेगी।

वानप्रस्थ आश्रम-तीसरा आश्रम वानप्रस्थ है। वानप्रस्थ आश्रम के विषय में भी धर्मशास्त्रों में विस्तार से विचार किया गया है। जाबालोपनिषद् के मत से कुछ लोग ब्रह्मचर्य के बाद ही वानप्रस्थी हो सकते हैं, परन्तु सामान्यत: गृहस्थ आश्रम सम्पन्न करके ही वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहिए। मनु का कहना है कि नाती- पोते होने के बाद तो वानप्रस्थ अवश्य ही ग्रहण करना चाहिए। कुल्लूक भट्ट ने इसकी टीका करते हुए कहा है कि 50 वर्ष की आयु के बाद वानप्रस्थ उचित है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, वशिष्ठधर्मसूत्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, विष्णुधर्मसूत्र, महाभारत आदि में और कूर्मपुराण में भी वानप्रस्थ के नियम बताए गए हैं। वानप्रस्थ में यदि पत्नी पति के साथ जाना चाहे तो उसकी भी अनुमति शास्त्र देते हैं और यदि पत्नी न जाना चाहे तो वह अपने बेटों के साथ रह सकती है। पत्नी के लिए साथ वन में जाने की कोई भी व्यवस्था धर्मशास्त्रों में अनिवार्य कर्तव्य के अन्तर्गत नहीं रखी गई है। सामान्यत: रानियाँ और गुरुपत्नियाँ ही वानप्रस्थ आश्रम का जीवन यथासमय अपनाती हैं। शेष सामान्य परिवारों की स्त्रियों को सन्तान के साथ ही रहते हुए भगवद्भजन एवं स्वाध्याय का विधान है।

मनुस्मृति और गौतम धर्मसूत्र के अनुसार वानप्रस्थी को उस भोजन का आग्रह नहीं रखना चाहिए। जो वह गृहस्थ आश्रम में रहते हुए करता है और साथ ही उसे गृहस्थी के सामानों का भी आग्रह नहीं रखना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम में उसे अधिक संग्रह अन्न और भोजन का भी नहीं करना चाहिए। अन्य वस्तुओं का संग्रह तो वर्जित ही है। वानप्रस्थी को शरीर की पवित्रता और ज्ञान की वृद्धि के लिए निरंतर प्रयास करना चाहिए तथा उपनिषदों का अध्ययन करना चाहिए।

महाभारत में शांति पर्व में प्रत्येक राजा और राजन्य के लिए वानप्रस्थ अनिवार्य बताया गया है। महाभारत में अनेक महान राजाओं के वानप्रस्थ ग्रहण का विवरण दिया गया है।

वर्तमान में वानप्रस्थ आश्रम का हिन्दू समाज में लगभग लोप है। उसके स्थान पर वृद्धाश्रम आदि बन रहे हैं क्योंकि पुत्र गृहस्थ आश्रम के नियमों और कर्तव्यों का पालन नहीं करते और माता-पिता के प्रति वैसे भाव भी नहीं रखते जो गृहस्थ पुत्र के लिए धर्म कर्तव्य है। यद्यपि कतिपय संगठनों ने समाज के बहुत से लोगों को वानप्रस्थ जीवन जीते हुए समाज में पूर्त कर्म करने अथवा समाज के किसी अभाव की पूर्ति के लिए कार्य करने में संलग्न रहने की प्रेरणा को व्यापक बनाया है। उसके शुभ परिणाम भी निकल रहे हैं। परंतु यह एक सामान्य नियम के रूप में प्रचलित नहीं हो पाया है।

संन्यास आश्रम-संन्यास धर्म अत्यंत कठिन और विरल है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए संन्यास का न तो कोई प्रावधान है और न ही धर्मशास्त्रों में इसकी व्यवस्था है। आजकल भ्रमवश यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक धर्मनिष्ठ हिन्दू का कर्तव्य है चौथेपन में संन्यास आश्रम में प्रवेश करना। परन्तु धर्मशास्त्रों में ऐसा कोई भी प्रावधान नहीं है।

छान्दोग्योपनिषद् में अध्याय 2 खण्ड 23 में पहला ही मंत्र है -
त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्य कुलवासी।
तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति।

(धर्म के तीन स्कन्ध हैं-प्रथम है-यज्ञ, अध्ययन और दान। दूसरा है-तप जो कि आचार्य कुल में रहने वाले ब्रह्मचारी के द्वारा विशिष्ट तप के रूप में किया जाता है। तीसरा है-जीवन भर आचार्य कुल में रहते हुये ब्रह्मसंस्थ होकर शरीर को क्षीण कर देना। ये तीनों ही पुण्य लोक के भागी होते हैं।)

यद्यपि आदि शंकराचार्य ने ब्रह्मसंस्थ होने को संन्यास का पर्याय बताया है। परंतु तथ्य यह है कि उपनिषद् में स्पष्ट रूप से धर्म के तीन ही स्कंध कहे गए हैं। अन्य अनेक विद्वानों ने इसे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ–इन तीन आश्रमों की ओर संकेत माना है। क्योंकि दान आदि गृहस्थ आश्रम के ही कर्म हैं और ब्रह्मसंस्थ होना वानप्रस्थ आश्रम का कर्म मान लिया गया है। प्राचीन काल में बड़े–बड़े सम्राट और राजा वन को जाते थे तो वह वानप्रस्थ आश्रम का ही जीवन था। संन्यास लेने वाले राजाओं का वर्णन सनातन धर्म की मुख्य परंपरा में प्राचीन काल में नहीं मिलता। अपवाद रूप में ही कोई राजा संन्यासी होते थे।

वृहदारण्यक उपनिषद में अध्याय 2 ब्राह्मण 4 का पहला मंत्र है– **मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि हस्त तेऽनया कात्यायन्यान्तं करवाणीति।।**

अर्थात् 'अरी मैत्रेयी, मैं इस गृहस्थ आश्रम से ऊपर (वानप्रस्थ आश्रम) जाने वाला हूँ। इसलिए यहाँ की समस्त सम्पत्ति का तुममें और कात्यायनी में बँटवारा कर दूँ।'

इससे यह ज्ञात होता है कि जब वानप्रस्थ आश्रम के लिए कोई विद्वान जाते थे तो वे घर–द्वार, पत्नी और समस्त सम्पत्ति का परित्याग कर देते थे। यहाँ वानप्रस्थ आश्रम में पति और पत्नी दोनों के जाने का संकेत नहीं है। इसी उपनिषद में अध्याय 3 ब्राह्मण 5 का पहला मंत्र है – **'एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकेषणायाच्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकेषणोभे ह्येते एषणे एव भवतः। तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्। बाल्यं च पाण्डित्यं च निर्विद्याथ मुनिरमौनं च मौनं च निर्विद्याथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्याद् येन स्यात् तेनेदृश एवातोऽन्यदार्तं ततो ह कहोलः कौषीतकेय उपरराम।।'**

अर्थात् हे कहोल (मुनि का नाम), आत्मा को जानकर ब्राह्मण पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा से ऊपर उठकर (व्युत्थाय) भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करते हुए विचरते हैं। ये सभी एषणायें त्याज्य हैं। ब्राह्मण को चाहिए कि वह सम्पूर्ण पांडित्य से सम्पन्न होकर (निर्विद्य अर्थात् निःशेषं विदित्वा–समग्र ज्ञान से सम्पन्न होकर) बालक की तरह बना रहे। इसके उपरांत मौन या अमौन दोनों स्थितियों से ऊपर उठकर ब्रह्म की अनुभूति में रमना चाहिए। जो ऐसा हो, वही ब्राह्मण है। शेष सब आर्तजन हैं।

यहाँ वानप्रस्थ अवस्था का ही वर्णन है। इसमें संन्यास से संबंधित किसी भी कर्मकांड का निर्देश नहीं है। अपितु ज्ञान साधना का ही निर्देश है। संन्यास आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रमों की तरह सभी के द्वारा प्रवेश के योग्य नहीं है। उसके लिए विशेष अहर्ता चाहिए। क्योंकि संन्यास का अर्थ है समस्त सांसारिक दायित्वों से मुक्त होकर तथा समस्त सांसारिक कामनाओं का संकल्पपूर्वक त्याग करके परमज्ञान, परमसत् या परमसत्ता और परमानंद की बोधदशा में रहना। इसीलिए सभी के लिए संन्यास विहित नहीं है और सभी के द्वारा संन्यास की परम्परा भी नहीं रही है।

महाभारत के शांतिपर्व में भगवान वेदव्यास कहते हैं–बेटे, जब गृहस्थ पुरुष के बाल सफेद हो जाएँ, शरीर में झुर्रियाँ पड़ जाएँ और पौत्र की प्राप्ति हो जाए तब अपनी आयु का तृतीय भाग व्यतीत करने के लिए वन में जाकर वानप्रस्थ आश्रम में रहना चाहिए। वहाँ बिना जुती हुई जमीन से उत्पन्न धान, जौ, नीवार आदि से जीवन निर्वाह करे या कंदमूल से ही जीवन चलाए। वानप्रस्थ की अवधि पूरी कर लेने के उपरांत जब शरीर अत्यंत दुर्बल हो जाए, तब एक ही दिन में पूर्ण हो सकने वाला यज्ञ करके अपना सर्वस्व दक्षिणा में दे डाले। **(शांतिपर्व अध्याय 244 श्लोक 4, 5, 6 एवं 24)।**

फिर आत्मा का ही यजन करे। आत्मा में ही रति रखे और आत्मक्रीड़ा करे। सब प्रकार से आत्मा का ही आश्रय ले। यज्ञ आदि भी आत्मा के स्तर पर ही करे अर्थात् द्रव्य यज्ञ नहीं करे। फिर जब मन और उन्नत हो जाए तो केवल आत्मयज्ञ करे। प्राणाग्निहोत्र करे, मौन भोजन करे, समस्त प्राणियों को अभयदान देकर ब्रह्म में ही रमे। ऐसा ब्राह्मण तेजोमय लोक में जाता है और फिर मोक्ष प्राप्त करता है। वह न तो इहलोक के लिए कोई कर्म करता है और न ही परलोक के लिए। वह अहिंसा आदि सार्वभौम यमों का सहज पालन करता है और संयम में जीवन जीता है। **(वही अध्याय 244, श्लोक 24 से 31)**

अगले अध्याय में भगवान वेदव्यास पुत्र शुकदेव को समझाते हैं – तीनों आश्रमों के कर्तव्यों से निवृत्त होकर अकेले ही संन्यास धर्म में प्रवृत्त होना चाहिए। कभी किसी की निंदा न तो करे और न ही सुने। ब्राह्मणों के प्रति कोई भी अनुचित बात कदापि नहीं सुने। अपनी निंदा सुनकर भी चुप रह जाए। जो भी वस्त्र मिल जाएँ, उनसे ही शरीर को ढकें और जो भी भोजन योग्य वस्तु समय पर मिल जाए उससे ही भूख मिटाए और जहाँ कहीं भी स्थान मिले, वहीं सो जाए। न तो जीवन का अभिनन्दन करे और न ही मृत्यु का। काल की प्रतीक्षा करता रहे, जैसे सेवक स्वामी के आदेश की प्रतीक्षा करता है।

संन्यास आश्रम वैदिक काल से है–स्पष्ट है कि यह स्थिति अत्यंत विरल है और इसका सामान्य लोकजीवन से कोई संबंध नहीं है। यद्यपि संन्यासी की उपस्थिति मात्र से लोकजीवन पवित्र और धन्य हो जाता है

परन्तु स्वयं संन्यासी को लोकजीवन से कोई भी रति नहीं होती। यह अत्यंत दुर्लभ स्थिति है। इसीलिए संन्यास आश्रम सबके लिए अनिवार्य नहीं है।

मनु ने भी कहा है कि–**'ऋणानि त्रीणि अपाकृत्वा ततो मोक्षे निवेशयेत्'।** अर्थात् पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण–तीनों से मुक्त होने के बाद ही सन्यास ग्रहण करना चाहिए।

परंतु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि संन्यास आश्रम वैदिक काल के बाद का विकास है, जैसा कि यूरो–ईसाई लोग कहते रहते हैं। क्योंकि प्राचीनतम धर्मसूत्रों और धर्मशास्त्रों में संन्यास का विस्तार से वर्णन है। अंतर केवल यह है कि वह सबके लिये नहीं है, केवल ऐसे समर्थ व्यक्ति के लिए है जो सभी प्रकार की ऐषणाओं से मुक्त होकर परमसत्ता और परमआनंद की साधना का इच्छुक हो।

गौतम धर्मसूत्र, आपस्तम्बधर्मसूत्र, बौधायनधर्मसूत्र, वशिष्ठ धर्मसूत्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, वैखानस स्मृति, विष्णु धर्मसूत्र, अग्निपुराण, कूर्मपुराण तथा महाभारत में संन्यास के लक्षणों और कर्तव्यों की विस्तार से विवेचना है।

संन्यास आश्रम में प्रवेश करने के लिए व्यक्ति को प्रजापति के लिए यज्ञ करना पड़ता है और अपनी समस्त सम्पत्ति ब्राह्मणों, दरिद्रों और असहायों में बाँटनी होती है। नृसिंहपुराण के अनुसार संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होने के पहले आठ प्रकार के श्राद्ध करने चाहिए। वे हैं दैव, आर्ष, दिव्य, मानुष, भौतिक, पैतृक, मातृश्राद्ध और आत्मश्राद्ध। नृसिंहपुराण में यह भी लिखा है कि जो व्यक्ति भूख में संयम रख सके, जिह्व पर संयम रख सके, स्वाद से ऊपर उठ सके और अत्यंत अनिवार्य होने पर ही बोले तथा कामसंवेग पर पूर्ण संयम रख सके, केवल उसे ही संन्यासी होने का अधिकार है।

घर, पत्नी, पुत्रों एवं सम्पत्ति का त्याग करके संन्यासी को गाँव के बाहर रहना चाहिए, उसे बेघर का होना चाहिए, जब सूर्यास्त हो जाए तो पेड़ों के नीचे या परित्यक्त घर में रहना चाहिए और सदा एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलते रहना चाहिए। वह केवल वर्षा के मौसम में एक स्थान पर ठहर सकता है **(मनुस्मृति अध्याय 6, श्लोक 41 एवं 43-44, वसिष्ठ धर्मसूत्र अध्याय 10 श्लोक 12-15, शंखस्मृति अध्याय 7 श्लोक 6)** तथा मिताक्षरा टीका **(याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय 3 श्लोक 58)** द्वारा उद्धृत शंख के वचन से पता चलता है कि संन्यासी वर्षा ऋतु में एक स्थान पर केवल दो मास तक रुक सकता है। कण्व का कहना है कि वह एक रात्रि गाँव में, या पाँच दिन कस्बे में (वर्षा ऋतु को छोड़कर) रह सकता है। आषाढ़ की पूर्णिमा से लेकर चार या दो महीनों तक वर्षा ऋतु में एक स्थान पर रुका जा सकता है। संन्यासी यदि चाहे तो गंगा के तट पर सदा रह सकता है।

संन्यासी को सदा अकेले घूमना चाहिए। यह दक्ष स्मृति (7/34 से 38) का कथन है।(24) दक्ष ने तो कहा है कि वास्तविक संन्यासी वही है, जो अकेला रहे। जब दो संन्यासी एक साथ कहीं रहे तो यह संन्यासी की मर्यादा का उल्लंघन है और यदि तीन संन्यासी एक साथ रहें तब तो वे एक गाँव के समान ही मान लेना चाहिए और इससे ज्यादा हों तो उन्हें नगर बसाने वाला मान लेना चाहिए। ऐसा करना धर्मच्युत होना है। दो संन्यासी साथ रहते हैं तो लोकवार्ता करने लगते हैं और कई बार उनमें परस्पर स्नेह अथवा ईर्ष्या द्वेष भी देखा जाता है। इससे तपस्या भंग होती है। अगर धन के लिये या आदरमान के लिए संन्यासी व्याख्यान आदि देने लगें और शिष्यों का बड़ा समूह एकत्रित करने लगें, तो वे कुतपस्वी कहे जाएँगे। क्योंकि तपस्वी के केवल शौच, भिक्षा, एकांतवास और ध्यान ही करना चाहिए। अन्यथा फिर वह संन्यासी नहीं कहा जाएगा। नारद ने इन चार कर्मों में जप और देवार्चन को भी जोड़ दिया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अध्याय 3 के 58 वें श्लोक की मिताक्षरा टीका में विज्ञानेश्वर (11 वीं शताब्दी ईस्वी) ने लिखा है –

एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ भिक्षू मिथुनं स्मृतम्।
त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते।।
नगरं हि न कर्तव्यं ग्रामो वा मिथुनं तथा।
एतत्त्रयं प्रकुर्वाणः स्वधर्माच्च्यवते यतिः।।
राजवार्ता ततस्तेषां भिक्षावार्ता परस्परम्।
स्नेहपैशुन्यमात्सर्य संनिकर्षान्न संशयः।।
लाभपूजानिमित्तं तु व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः।
एते चान्ये च बहवः प्रपन्चाः कुतपस्विनाम्।।
ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तशीलता।
भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पन्चमं नोपपद्यते।।
दक्ष 7/34-38

(अपरार्क पृ. 952 में तथा मिताक्षरा, याज्ञ. 3/58 में उद्धृत)।

मनु का कहना है कि –

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः।।
अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्ति तो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्।।
अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा प्रजाम्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः।।
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात्।।

यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः।।

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम्।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन।।
एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थम् असहायवान्।
सिद्धिमेकस्य सम्पश्यन्न जहानि न ह्रीयते।।

(मनुस्मृति, अध्याय 6 श्लोक 35 से 40 तथा 42)

अर्थात् पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण इन तीनों ऋणों को चुकाने के उपरांत ही यानी गृहस्थ आश्रम में प्रजा उत्पादन, शिक्षा का प्रसार, ज्ञान का विस्तार तथा देवपूजन–यजन आदि को निर्धारित अवधि तक सम्पन्न करने के उपरांत ही संन्यास आश्रम में (मोक्ष साधना में) प्रवृत्त होना चाहिए। जो तीनों ही ऋणों को चुकाए बिना मोक्ष की कामना और प्रवृत्ति करता है, उसका अध:पतन होता है। विधि पूर्वक वेदों का अध्ययन करके, विवाह से धर्मपूर्वक संतान उत्पन्न करके और अपनी शक्ति भर इष्ट कर्म संपादित करके ही व्यक्ति को मोक्ष में चित्त का निवेश करना चाहिए। वेदों का स्वाध्याय किए बिना, संतान उत्पन्न किए बिना और इष्ट कर्मों का संपादन किए बिना मोक्ष की इच्छा करने वाला अधो लोकों में जाता है।

प्राजापत्य यज्ञ का अनुष्ठान करके और सर्वस्व का दान करके आत्मज्ञान की ज्योति को प्रज्जवलित करके ब्राह्मण को संन्यास लेना चाहिए। समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करके जो व्यक्ति सन्यास में प्रवेश करता है, उस ब्रह्मवादी को तेजोमय लोक की प्राप्ति होती है। जिससे जीवन में किसी भी जीव को अणुमात्र भी भय नहीं हो, उसके आगे के मार्ग भयरहित हो जाते हैं। देहयात्रा की समाप्ति के उपरांत उसे किसी प्रकार का भय नहीं रहता। बिना किसी की सहायता लिए, नितांत असहाय रहकर, एकाकी विचरण करने वाले को ही मोक्ष की सिद्धि होती है। उसे सदा यह बोध रहना चाहिए कि वह न तो कुछ छोड़ रहा है और न ही उससे कुछ छूट रहा है। अपितु वह महान आत्मबोध का लाभ प्राप्त कर रहा है।

इसीलिए संन्यासी ही व्यापक अर्थ में अहिंसक होता है। वह किसी भी जीव को कष्ट नहीं देता और अपने अपमान के प्रति भी उदासीन रहता है तथा अपने ऊपर प्रहार के प्रति भी उदासीन रहता है। उसे कभी भी क्रोधावेश नहीं आता। वह कभी भी असत्य भाषण नहीं करता, भले सत्य बोलने में प्राणों पर संकट ही आ रहा हो। इस तरह का महान अहिंसा धर्म केवल संन्यासी के लिए है, ब्रह्मचारी, गृहस्थ या वानप्रस्थ के लिए नहीं है।

संन्यासी को केवल भिक्षा से प्राप्त भोजन ही करना चाहिए। भिक्षाटन के लिए भी केवल एक बार ही जाना चाहिए और वर्षा की स्थिति के सिवाय और कभी भी किसी गाँव या नगर के किसी भी घर में एक रात भी नहीं रुकना चाहिए। वर्षा की स्थिति हो तो भी एक जगह एक दिन से अधिक नहीं रुकें। बिना किसी पूर्व योजना के अथवा बिना अपने मन से कोई घरों का चयन किए, सात घरों से ही भिक्षा माँगना चाहिए। एक घर के सामने अधिक से अधिक इतनी देर ही रुका जा सकता है, जितने में एक गाय दुह ली जाती है। संन्यासी भिक्षा तो सभी वर्णों के घर से माँग सकता है परंतु भोजन वह केवल द्विजों के यहाँ ही कर सकता है। वायुपुराण के अनुसार संन्यासी को एक ही घर से माँगकर एक दिन का भोजन नहीं लेना चाहिए अपितु थोड़ा–थोड़ा कई घरों से लेने के बाद भोजन करना चाहिए। भोजन में नमक कम हो या ज्यादा, अलग से नमक नहीं लेना चाहिए। मधु का सेवन नहीं करना चाहिए और माँस भक्षण तो सर्वथा वर्जित है ही।

शुक्राचार्य का मत है कि संन्यासी केवल इन पाँच प्रकारों से भोजन ग्रहण कर सकता है–

1 किन्हीं तीन या पाँच या सात घरों से प्राप्त भिक्षा से। इसे मधुकरी वृत्ति कहते हैं।

2 जब रात्रि में शयन का समय होने के पूर्व कोई भक्त भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना करे।

3 भिक्षा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व ही यदि कोई भक्त भोजन के लिए अनुरोध करे।

4 किसी ब्राह्मण के द्वार पहुँचने पर यदि वह ब्राह्मण बिना पूर्व योजना के भोजन करने का अनुरोध करे।

5 भक्तों या शिष्यों द्वारा मठ में लाया गया पका हुआ भोजन।

याज्ञवल्क्य स्मृति पर सम्राट शिलाहार द्वारा लिखित अपरार्क टीका (12वीं शताब्दी ईस्वी) के अनुसार संन्यासी को सर्वप्रथम ब्राह्मण घर में भिक्षा माँगनी चाहिए। यदि ब्राह्मण भोजन के लिये अनुरोध करे, तो स्वीकार कर लेना चाहिए। ऐसा न होने पर क्षत्रिय एवं वैश्य के यहाँ भोजन किया जा सकता है। दूसरी ओर वशिष्ठ धर्मसूत्र का कहना है कि संन्यासी को शूद्र के घर में भोजन नहीं करना चाहिए। परंतु पराशर स्मृति में विशेषकर वृद्ध एवं रोगी संन्यासी को इसकी छूट है।

रसोई घरों से भोजन पकाने वाली आग का धुआँ जब तक निकल रहा हो, केवल तभी तक संध्या के समय भिक्षा माँगनी चाहिए। उसके बाद नहीं। संन्यासी को कभी भी प्रवचन आदि के द्वारा अथवा विद्यादान करके अथवा ज्योतिष का प्रयोग करके अथवा भविष्य वाणी करके किसी भी प्रकार का भोजन आदि कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। **(क्रमशः)**

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर–फंदा, भोपाल–462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

महाभारत में राजधर्म

- कुसुमलता केडिया

इतिहास, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र की गहरी अध्येता और तर्कपूर्ण विवेचना में सिद्धहस्त विदुषी प्रो. कुसुमलता केडिया के वैचारिक आलेखों का शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशन किया जा रहा है ताकि हमारे पाठकों में बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न हो और वे हमारी ज्ञान परंपरा को तार्किक ढंग से आत्मसात कर मौलिक लेखन की ओर प्रवृत्त हों। प्रस्तुत है इस लेखमाला की अगली किश्त 'महाभारत में राजधर्म' पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।

- सम्पादक

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।

जन्म - 2 जुलाई 1954।

जन्म स्थान - पडरौना (उ.प्र.)।

शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।

रचनाएँ - अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

महाभारत में राजधर्म का प्रतिपादन विस्तार से हुआ है। महाराज युधिष्ठिर को वन में जो मनीषी महर्षिगण मिलते हैं, वे सब भी मुख्यत: राजधर्म का ही उपदेश देते हैं और युद्ध की तैयारी करने का निर्देश देते हैं। इसके साथ ही जब इन्द्रप्रस्थ की राजसभा में युधिष्ठिर समस्त धर्मात्मा और जितेन्द्रिय मुनियों के साथ विमर्श कर रहे होते हैं, तब ब्रह्मर्षि नारद वहाँ पहुँचते हैं और वे भी विस्तार से युधिष्ठिर को राजधर्म का ही उपदेश देते हैं। यह उपदेश वे प्रश्नात्मक ढंग से देते हैं। इसी प्रकार वन में तथा तीर्थयात्रा के समय ऋषियों और मुनियों द्वारा बारम्बार राजधर्म का ही उपदेश दिया जाता है। अंत में शांतिपर्व के अन्तर्गत राजधर्मानुशासन पर्व तो पूर्णत: राजधर्म के प्रतिपादन पर ही केन्द्रित है। राज्याभिषेक के उपरांत सम्राट युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण से जब कृतज्ञता प्रकाशन के उपरांत राजधर्मविषयक जिज्ञासा करते हैं तो भगवान श्रीकृष्ण उनसे भीष्म पितामह से ही यह ज्ञान प्राप्त करने कहते हैं। शांतिपर्व के 47वें अध्याय में भीष्म पितामह द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की गई वर्णित है जो 'भीष्मस्तवराज' के नाम से विश्वविख्यात है। इसके उपरांत भीष्म पितामह से आश्वासन पाकर भगवान श्रीकृष्ण के निर्देशानुसार युधिष्ठिर राजधर्मविषयक प्रश्न करते हैं और तब शांतिपर्व के अन्तर्गत राजधर्मानुशासन पर्व के 56 वें अध्याय से भीष्म पितामह द्वारा राजधर्म का प्रतिपादन शुरू होता है जो 130वें अध्याय तक चलता है। इस प्रकार 75 अध्यायों में राजधर्म का विस्तार से प्रतिपादन हुआ है और राजधर्म के अन्तर्गत ही आपातकाल आने पर आपद धर्म की भी विवेचना आगे की गई है जो 40 अध्यायों में वर्णित है। इससे पता चलता है कि महाभारत की दृष्टि में राजधर्म का कितना अधिक महत्व है। उस विस्तृत प्रतिपादन का सार यहाँ स्मरण करना उचित होगा।

56वें अध्याय में महाराज युधिष्ठिर के प्रश्न में ही राजधर्म का महत्व रेखांकित है। इस अध्याय के दूसरे और तीसरे श्लोक में वे कहते हैं -

राज्ञां वै परमो धर्म इति धर्मविदो विदुः।
महान्तमेतं भारं च मन्ये तद् ब्रूहि पार्थिव।।
राजधर्मान् विशेषेण कथयस्व पितामह।
सर्वस्य जीवलोकस्य राजधर्मः परायणम्।।

अर्थात् हे पितामह, धर्मविद विद्वानों का कहना है कि राजधर्म ही परमधर्म है। अत: मुझ पर यह बहुत बड़ा भार है कि मैं राजधर्म को जानूँ। अत: कृपाकर मुझे उसका उपदेश दीजिए। क्योंकि राजधर्म ही समस्त जीवजगत का परम आश्रय है। इसलिए राजधर्म का ही विशेष वर्णन करने की कृपा करें।

इसका उत्तर भीष्म पितामह इस श्लोक **(श्लोक 10, अध्याय 56)** से प्रारंभ करते हैं -

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान्।।

अर्थात् धर्म महान है। उस महान धर्म को नमस्कार है। धर्म के स्रोत भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम है और समस्त ब्राह्मणों को प्रणाम करके मैं शाश्वत सनातन धर्म का वर्णन करूँगा।

इसके आगे वे कहते हैं कि राजा को सबसे पहले प्रजा का रंजन करना चाहिए। प्रजा के रंजन की विधि यह है कि देवताओं का और धर्मज्ञ विद्वानों का शास्त्रीय विधि के अनुसार पूजन एवं आदर-सत्कार करें। क्योंकि तभी राजा धर्म के ऋण से मुक्त होता है और प्रजा भी प्रसन्न रहती है तथा समस्त जगत राजा का सम्मान करता है। वे कहते हैं-'हे राजन! तुम सदा पुरुषार्थ के लिये उत्थित रहो। अर्थात् प्रयत्नशील रहो। क्योंकि पुरुषार्थ के बिना शासक का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों का महत्व है परन्तु प्रारब्ध पूर्व निश्चित है। अतः शासक के वश में केवल पुरुषार्थ ही है। इसलिये पुरुषार्थ में कभी भी तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिए और पुरुषार्थ के उपरांत भी यदि प्रयोजन सिद्ध नहीं हो तो उसे प्रारब्ध मान लेना चाहिए।' पितामह भीष्म ने कहा –

न हि सत्यादृते किंचिद् राज्ञां वै सिद्धिकारकम्।
सत्ये हि राजा निरतः प्रेत्य चेह च नन्दति।।17।।
ऋषीणामपि राजेन्द्र सत्यमेव परं धनम्।
तथा राज्ञां परं सत्यान्नान्यद् विश्वासकारणम्।।18।।

अर्थात् राजाओं के लिए सत्य ही सर्वश्रेष्ठ सिद्धिकारक है। सत्यपरायण राजा को इस लोक में तो सुख मिलता ही है, मृत्यु के बाद भी सुख मिलता है। राजाओं और ऋषियों दोनों के लिये सत्य ही परम धर्म है और राजा के प्रति प्रजा का विश्वास सत्य के आधार पर ही उत्पन्न होता है अन्यथा नहीं। अतः तुम सभी कार्यों में ऋजुता रखना और नृशंसता से दूर रहना। परंतु अपनी गोपनीय बातों अथवा गोपनीय नीतियों को एवं कार्यकौशल को सदा गुप्त रखना। साथ ही ब्राह्मणों को कभी भी दंड नहीं देना। क्योंकि वे अदण्ड्य हैं। आगे उन्होंने कहा कि महाराज मनु ने दो श्लोक कहे हैं जिनका सदा ध्यान रखना –

अद्भ्यो अग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति।।24।।
अयो हन्ति यदाश्मानं अग्निना वारि हन्यते।
ब्रह्म च क्षत्रियो द्वेष्टि तदा सीदन्ति ते त्रयः।।25।।

अर्थात् अग्नि जल से उत्पन्न है, क्षत्रिय ब्राह्मण से और लोहा पत्थर से प्रकट हुआ है। इसलिए इन तीनों का तेज अन्यत्र तो प्रकट होता है परन्तु अपने को उत्पन्न करने वाले कारण के समक्ष इनका तेज शांत रहता है। अतः जल के सामने अग्नि का तेज शांत हो जाता है। ब्राह्मण के सामने क्षत्रिय का तेज शांत हो जाता है और पत्थर पर लोहे की चोट नहीं सफल होती, वहाँ लोहे का तेज शांत हो जाता है।

आगे पितामह मनु और शुक्राचार्य दोनों का संदर्भ देकर बताते हैं कि अगर कोई ब्राह्मण धर्म को नष्ट करने का प्रयास करे तो फिर उसे दंडित करना चाहिए। उस स्थिति में उसे देश से निकाल देना चाहिए। परंतु प्राणदण्ड नहीं देना चाहिए।

इसके आगे भीष्म कहते हैं कि राजा को समस्त प्रजा पर दयाभाव रखना चाहिए। परन्तु दुष्ट और नीच लोगों के प्रति कठोर होना चाहिए। धैर्य का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए तथा अनुशासन और मर्यादा का पालन राज्य में सदा होता रहे यह सुनिश्चित करना चाहिए। इससे आगे के अध्याय में भीष्म महात्मा भार्गव का एक श्लोक (अध्याय 57, श्लोक 41) उद्धृत करते हैं, जो बहुत महत्त्वपूर्ण है –

राजनं प्रथमं विन्देत् ततो भार्यां ततो धनम्।
राजन्यसति लोकस्य कुतो भार्या कुतो धनम्।।

अर्थात् प्रजाजनों को चाहिए कि वे सर्वप्रथम एक धर्मनिष्ठ राजा को प्राप्त करें। उसके बाद ही ब्रह्मचारियों को विवाह कर गृहस्थ धर्म में प्रवेश करना चाहिए और धन कमाना चाहिए। क्योंकि यदि शासक धर्ममय नहीं हुआ तो न तो भार्या की रक्षा हो पाती और न ही धन की।

वस्तुतः महाभारत से भी यह साक्ष्य मिलता है कि भारतवर्ष में प्राचीनतम समय से राजशास्त्र और दण्डनीति के शास्त्र विद्यमान रहे हैं। इन्हें ही अर्थशास्त्र भी कहा गया है। समस्त धर्मशास्त्रकारों ने राजधर्म का सांगोपांग विवेचन किया है। शांतिपर्व के अध्याय 59 में पितामह भीष्म श्लोक 22 से 79 तक संक्षेप में इसका वर्णन करते हैं कि ब्रह्माजी ने देवताओं की प्रार्थना पर 1 लाख अध्यायों का एक विराट नीतिशास्त्र रचा था जिसमें धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थों का विस्तारपूर्वक विवेचन था।

ब्रह्माजी ने उक्त शास्त्र में चारों पुरुषार्थों की विवेचना की और दंडजनित त्रिवर्ग की भी विवेचना की। दंड का त्रिवर्ग है–स्थान, वृद्धि और क्षय। अर्थात् धनियों की स्थिति की रक्षा, धर्मात्मा धनियों की वृद्धि और दुरात्मा धनियों का विनाश। इसी प्रकार मोक्ष के त्रिवर्ग में सत्व गुण, रजो गुण और तमो गुण की गहरी मीमांसा की गई। फिर आत्मा, देश, काल, उपाय, कार्य और सहायक आदि के प्रति कैसी नीति राज्य द्वारा अपनाई जाए, यह लिखा फिर वेदत्रयी, आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति की विपुल विद्याओं का वर्णन किया। फिर राज्य द्वारा आत्मरक्षा, राजपुत्रों के लक्षण, राजदूतों की नियुक्ति, गुप्तचर व्यवस्था और साम, दाम, भेद, दण्ड और उपेक्षा इन पाँच उपायों का प्रतिपादन किया। साथ ही मंत्रणा, भेदनीति के प्रयोग के प्रयोजन, मंत्रणा की सिद्धि और असिद्धि के फलों का प्रतिपादन किया। उत्तम, मध्यम और अधम इन तीन संधियों की मीमांसा की और वित्त संधि, सत्कार संधि तथा भय संधि के प्रकारों का वर्णन किया। अपने मित्रों की वृद्धि, कोश के भरपूर संग्रह, शत्रु के मित्रों का नाश और शत्रु के कोश की हानि इन चार प्रयोजनों से शत्रु पर चढ़ाई के अवसरों की मीमांसा की और धर्मविजय, अर्थविजय तथा आसुरविजय के भेद बताए।

मंत्री, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और कोश इनके लक्षणों का और उत्तम, मध्यम तथा अधम भेदों का वर्णन किया। प्रकट और गुप्त सेनाओं का वर्णन किया। जिनके अनेक भेद हैं। हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, विष्टि, नौकारोही, गुप्तचर और गुरु–इन आठ सैन्य अंगों की विवेचना की तथा जंगम और अजंगम विषों के प्रयोग का और चूर्ण योग आदि विनाशकारक औषधियों का ज्ञान दिया। शत्रु, मित्र और उदासीन की विवेचना की। मार्ग और भूमि के गुण और लक्षण बताए तथा आत्मरक्षा के उपाय बताए और सेना की पुष्टि करने वाली विविध युक्तियाँ बताईं। व्यूह रचना और रण कौशल के नाना प्रकार बताए तथा युद्ध करने और आवश्यकता पड़ने पर भली–भाँति पलायन करने के भी उपाय बताए। शस्त्रों के संरक्षण और प्रयोग का ज्ञान दिया। सेनाओं की विपत्ति से रक्षा करने और सेना का हर्ष और उत्साह निरंतर बढ़ाने तथा समय–समय पर पैदल सैनिकों की स्वामीभक्ति की परीक्षा करने आदि के भी उपाय उस शास्त्र में थे। दुर्ग के चारों ओर खाई खुदवाना, सेना का युद्ध के लिए तैयार होना और रणयात्रा करना, शत्रु के राज्य को चोरों और जंगली लुटेरों द्वारा पीड़ा देना, गुप्तचरों द्वारा शत्रु को हानि पहुँचाना, शत्रु के प्रधान लोगों में भेद डालना, आवश्यकता पड़ने पर उनकी फसल नष्ट कर देना, हाथियों को भड़काना और लोगों में आतंक पैदा करना तथा शत्रु पक्ष के लोगों में अपने प्रति विश्वास जगाना आदि उपायों का भी ब्रह्मा जी ने वर्णन किया। फिर सात अंगों से युक्त राज्य की वृद्धि कैसे होती है और ह्रास किन कारणों से होता है, इसे विस्तार से बताया और राष्ट्र की वृद्धि के उपाय बताए तथा बलवान शत्रुओं को कुचल डालने या समयानुसार व्यवहार की भी विधि बताई। इसके साथ ही उक्त ग्रंथ में और भी अनेक वर्णन बड़े ही विस्तार से थे, विशेषत: कोश की वृद्धि और माया के प्रयोगों की भी विधि बताई।

इसके आगे के श्लोकों में वे बताते हैं कि बाद में भगवान शंकर ने इस नीतिशास्त्र को कुछ संक्षिप्त किया। उसके बाद इंद्र ने उसे और संक्षेप करके देवताओं के शासन की विधि प्रतिपादित की तथा राजाओं के लिए भी निर्देश दिए। इस प्रकार राजशास्त्र प्रणेताओं की बहुत विस्तृत सूची हमारे धर्मशास्त्रों में है जो अत्यन्त प्राचीनकाल से दंडनीति और राजशास्त्र के भारत में प्रतिष्ठित होने का प्रमाण है।

भगवान शिव के बाद उस महान राजशास्त्र को देवराज इन्द्र ने ग्रहण किया। फिर उन्होंने उसे और संक्षेप कर 5000 अध्यायों का ग्रंथ कर दिया जिसे बाहुदन्तक राजशास्त्र नाम दिया गया। फिर महान सामर्थ्यशाली बुद्धिवाले देवगुरु ब्रहस्पति ने उसे और संक्षिप्त कर 3000 अध्यायों का ब्रार्हस्पत्य राजशास्त्र रचा। तदुपरान्त महायोगी शुक्राचार्य ने अपनी अमित प्रज्ञा से उसे 1000 अध्यायों में संक्षिप्त कर दिया। तब से इसका नाम शुक्रनीति हुआ। देवताओं ने भगवान विष्णु से अनुरोध किया कि कोई एक श्रेष्ठ राजपुरुष दीजिए जो राजा बनने का अधिकारी हो भगवान ने अपने मानस पुत्र 'विरजा' की सृष्टि की। परंतु विरजा ने संन्यास का निश्चय किया। तब उसके पहले भगवान की आज्ञा से विरजा का पुत्र कीर्तिमान हुआ और फिर कीर्तिमान के पुत्र कर्दम हुए।

ये दोनों ही संन्यास मार्ग में आगे बढ़ गए तब कर्दम के पुत्र अनंग को राजपद दिया गया। वहाँ से राजपद की परंपरा चली। अनंग महान दंडनीति विशारद थे। उनके पुत्र अतिबल भी दंडनीति के महान ज्ञाता हुए। परंतु दंडबल से राज्यश्री को भोगते हुये वे इंद्रियों के वश में हो गए। तब उनकी पुत्री के पुत्र वेन को

राजपद दिया गया परंतु वह राग और द्वेष के वश होकर स्वधर्म से विचलित हो गया। जिसे वेदज्ञ ऋषियों ने प्रजा की रक्षा का ध्यान कर, हाहाकार कर रही प्रजा को उसके अत्याचार से बचाने के लिए उसे मार डाला। शास्त्र की दृष्टि से यज्ञ परम अहिंसा कर्म था। ऋषियों ने व्हेन की दक्षिण जंघा का मंथन कर निषाद नामक एक व्यक्ति को उत्पन्न किया। उसे विंधगिरि में रहने भेज दिया जिसके वंशज निषाद तथा अन्य जातियाँ हुईं। तदुपरान्त ऋषियों ने एक और पुरुष को व्हेन की दाहिनी भुजा से मथ कर प्रगट किया। वे पृथु नाम से प्रसिद्ध हुए और वे पूर्णतः धर्मनिष्ठ राजा हुए। उन्होंने समस्त पृथ्वी का पालन किया और उनके द्वारा पालित होने से ही यह भूमि पृथ्वी कहलाने लगी। सभी देवताओं और ऋषियों ने राजपथ पर पृथु का अभिषेक किया और समस्त पृथ्वी पर पृथु ने शासन किया। संम्पूर्ण जगत में धर्म की प्रधानता स्थापित करने के कारण महाराज पृथु को महात्मा कहा गया और प्रजा को प्रसन्न करने वाले तथा आनन्द का वर्धन करने वाले होने के कारण उन्हें राजा कहा गया। ब्राह्मणों को क्षति से बचाने के कारण वे क्षत्रिय कहे गए। इस प्रकार क्षत्रिय शिरोमणि महात्मा राजा पृथु लोक में पूजित हुए। भगवान विष्णु ने उन्हें आदेश दिया कि हे नरेश्वर तुम चारों ओर गुप्तचर नियुक्त करके राज्य की रक्षा करो जिससे कि कोई भी आसुरी शक्तियाँ इसका धर्षण न कर सकें।

पितामह भीष्म ने महाराज युधिष्ठिर को बताया कि राजशास्त्र में इन विषयों का समावेश है–इतिहास, वेद, न्याय, तप, ज्ञान, अहिंसा, सत्य और असत्य तथा दोनों से परे का तत्व, वृद्धजनों की सेवा, दान, आंतरिक और बाहरी पवित्रता, उत्कर्ष, समस्त प्राणियों पर दया, पुराणशास्त्र, चारों आश्रमों और चारों वर्णों तथा चारों विद्याओं का शास्त्र एवं नक्षत्रों आदि का ज्ञान और तीर्थों का ज्ञान एवं यज्ञ कर्मों का विशद ज्ञान।

स्पष्ट है कि इन सब विद्याओं का ज्ञाता ही भारतीय शास्त्रों के अनुसार सुयोग्य राजा और महात्मा राजा कहे जाने का अधिकारी है। आगे 60 वें अध्याय में पितामह बताते हैं कि सामान्यतः किसी पर क्रोध न करना, सत्य वचन बोलना, सम्पत्ति का धर्मशास्त्रों के अनुसार उचित वितरण, क्षमाभाव रखना, अपनी पत्नी से संतान की उत्पत्ति, बाहरी और भीतरी पवित्रता तथा प्राणियों के प्रति द्रोह का अभाव एवं मन की सरलता तथा भरण–पोषण योग्य लोगों का पालन–पोषण करना–ये नौ सभी मनुष्यों के द्वारा पालनीय धर्म हैं। इसीलिए ये सार्ववर्णिक धर्म, सामान्य धर्म, साधारण धर्म और मानव धर्म–इन नामों से वर्णित किये जाते हैं। राजा को यह देखना चाहिए और दंडनीति के द्वारा यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी मनुष्य इन मानवधर्म, सामान्य धर्म, साधारण धर्म या सार्ववर्णिक धर्म का पालन अवश्य करें। **(क्रमशः)**

ए–142, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल–462036 (म.प्र.)
मो.–8349350267

वीर नारी सम्मान में सम्मानीय वीर वधु सविता देवी

ऐसा काम ढूँढ़िए जिसे करने से आपको आनंद आता हो

मूल – स्टीवन पॉल जॉब्स
अनु. – विभा खरे

शिक्षा – एम.एच.एस.सी., एम.ए.।

रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।

विशेष – अनुवाद में विशेष कार्य।

(स्टीवन पॉल जॉब्स (जन्म 24 फरवरी 1955–मृत्यु 5 अक्टूबर 2011) एक अमेरिकी व्यवसायी, आविष्कारक और निवेशक थे। प्रौद्योगिकी की दुनिया के चिरपरिचित, दिग्गज कंपनी एप्पल इंक के सह-संस्थापक के रूप में विश्वप्रसिद्ध हुए। जॉब्स 'नेक्स्ट' के संस्थापक और 'पिक्सर' कंपनी के अध्यक्ष और बहुसंख्यक शेयरधारक भी थे। वह अपने शुरुआती बिजनेस पार्टनर और साथी एप्पल के सह-संस्थापक स्टीव वोज्नियाक के साथ 1970 और 1980 के दशक की पर्सनल कंप्यूटर क्रांति के अग्रदूत थे। 1974 में उन्होंने जैन बौद्ध धर्म का अध्ययन करने से पहले ज्ञान की तलाश में भारत की यात्रा की। 2003 में उन्हें अग्नाशय के ट्यूमर का पता चला तथा 2011 में इसी रोग की जटिलता से उनका निधन हो गया। 2022 में उन्हें मरणोपरांत राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह प्रेरणा दायक भाषण स्टीव जॉब्स द्वारा स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के दीक्षांत समारोह में 2005 में दिया गया।)

दुनिया के बेहतरीन विश्वविद्यालयों में से एक से स्नातक होने के अवसर पर आज आपके साथ होना मेरे लिए सम्मान की बात है। मुझे कॉलेज से कभी स्नातक की उपाधि नहीं मिली। सच कहा जाए तो, यह आमंत्रण किसी कॉलेज ग्रेजुएशन में जाने का मेरा पहला अवसर है। आज मैं आपको अपने जीवन की तीन कहानियाँ बताना चाहता हूँ, इतना ही। कोई बड़ी बात नहीं। बस तीन कहानियाँ। पहली कहानी जीवन के अलग अलग बिंदुओं के जोड़ने के बारे में है।

पहले 6 महीनों के बाद मैंने रीड कॉलेज [1] छोड़ दिया, लेकिन फिर वास्तव में छोड़ने से पहले अगले 18 महीनों तक ड्रॉप-इन के रूप में वहीं रहा। तो फिर मैंने पढ़ाई क्यों छोड़ दी?

मेरे जन्म से पहले इसकी शुरुआत हो गई थी। मेरी जन्मदात्री माँ एक युवा, अविवाहित कॉलेज स्नातक छात्रा थी, और उसने मुझे गोद देने का फैसला किया। वह बहुत दृढ़ता से महसूस करती थी कि उसके बच्चे को कॉलेज के स्नातकों द्वारा गोद लिया जाना चाहिए, इसलिए एक वकील और उसकी पत्नी द्वारा मुझे गोद लिए जाने की पूरी तैयारी थी। पर हुआ यूँ कि जब मैं जन्मा तो उन्होंने आखिरी मिनट में फैसला किया कि वे वास्तव में एक लड़की चाहते हैं। तो मेरे वर्तमान माता-पिता, जो प्रतीक्षा सूची में थे, को आधी रात में फोन आया-'हमारे यहाँ एक अप्रत्याशित बच्चा हुआ है; क्या आप उन्हें चाहते हैं?' उन्होंने कहा 'बेशक।' मेरी जैविक माँ को बाद में पता चला कि मेरी वर्तमान माँ ने कभी कॉलेज से स्नातक नहीं किया था और मेरे पिता ने कभी हाई स्कूल भी नहीं पास किया था। मेरी जैविक माँ ने गोद लेने के अंतिम कागजात पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। कुछ महीने बाद वह तब मानीं जब मेरे माता-पिता ने वादा किया कि वे मुझे कॉलेज जरूर भेजेंगे।

और इसके 17 साल बाद मैं कॉलेज गया। लेकिन मैंने भोलेपन से एक ऐसा कॉलेज चुना जो लगभग स्टैनफोर्ड जितना महँगा था, और मेरे कामकाजी वर्ग के माता-पिता की सारी बचत मेरे कॉलेज की ट्यूशन पर खर्च हो रही थी। छः महीने के बाद, मुझे इसमें कोई लाभ नहीं दिखा। मुझे नहीं पता था कि मैं अपने जीवन के साथ क्या करना चाहता हूँ और यह भी नहीं पता था कि कॉलेज मुझे इसमें कैसे मदद करेगा। और यहाँ मैं वह सारा पैसा खर्च कर रहा था जो मेरे माता-पिता ने अपने पूरे जीवन में बचाया था। इसलिए मैंने पढ़ाई छोड़ने का फैसला किया और भरोसा किया कि सब ठीक हो जाएगा। उस समय यह काफी डरावना था, लेकिन पीछे मुड़कर देखें तो यह मेरे अब तक के सबसे अच्छे निर्णयों में से एक था। जैसे ही मैंने औपचारिक कोर्स छोड़ा मैं पाठ्यक्रम की उन आवश्यक कक्षाओं को लेना बंद कर सकता था जिनमें मेरी रुचि नहीं थी, और उन कक्षाओं को शुरू कर सकता था जो दिलचस्प लगती थीं।

यह सब रोमांटिक नहीं था। मेरे पास छात्रावास का कमरा नहीं था, इसलिए मैं दोस्तों के कमरे में फर्श पर सोता था, मैं भोजन खरीदने के लिए 5 जमा राशि के लिए कोक की बोतलें लौटाता था, और मैं हर रविवार रात को 7 मील पैदल चलता था, 'हरे

कृष्ण मंदिर' में एक अच्छा भोजन खाने के लिए। मुझे इसमें मजा आया। और अपनी जिज्ञासा और अंतर्ज्ञान का अनुसरण करते हुए मैंने जो कुछ भी पाया, वह बाद में अमूल्य साबित हुआ। मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ–

उस समय रीड कॉलेज शायद देश में सबसे अच्छी कैलीग्राफी शिक्षा प्रदान करता था। पूरे परिसर में हर पोस्टर, हर दराज पर लेबल, खूबसूरती से हाथ से लिखे गए थे। क्योंकि मैंने पढ़ाई छोड़ दी थी और मुझे सामान्य कक्षाएँ नहीं लेनी पड़ीं, इसलिए मैंने यह सीखने के लिए कैलीग्राफी कक्षा लेने का फैसला किया। मैंने सेरिफ़ और सेन्स सेरिफ़ टाइपफेस के बारे में सीखा, विभिन्न अक्षर संयोजनों के बीच स्थान की मात्रा को अलग-अलग करके टाइपोग्राफी को महान बनाने के बारे में जाना। यह सुंदर, ऐतिहासिक, कलात्मक रूप से सूक्ष्म था जिसे विज्ञान पकड़ नहीं सकता, और मुझे यह आकर्षक लगा।

इनमें से किसी की भी मेरे जीवन में व्यावहारिक अनुप्रयोग की आशा नहीं थी। लेकिन 10 साल बाद, जब हम पहला मैकिंटोश कंप्यूटर डिज़ाइन कर रहे थे, तो सब कुछ मेरे काम आ गया। और हमने मैक की डिजाइन में यह सब बनाया है। यह सुंदर मुद्रणकला के साथ पहला कंप्यूटर था। यदि मैंने कॉलेज में उस एकल पाठ्यक्रम को कभी नहीं छोड़ा होता, तो मैक में कभी भी कई टाइपफेस या आनुपातिक रूप से दूरी वाले फ़ॉन्ट नहीं होते। और चूँकि विंडोज़ ने अभी मैक की नकल की है, इसलिए संभावना है कि किसी भी पर्सनल कंप्यूटर में भी यह नहीं होता। यदि मैंने कभी पढ़ाई नहीं छोड़ी होती, तो मैं इस कैलीग्राफी कक्षा में कभी नहीं जाता, और पर्सनल कंप्यूटरों में शायद वह अद्भुत टाइपोग्राफी नहीं होती जो उनमें आज है। नि:संदेह जब मैं कॉलेज में था तो आगे की ओर देखते हुए बिंदुओं को जोड़ना असंभव था। लेकिन 10 साल बाद पीछे मुड़कर देखने पर यह बिल्कुल स्पष्ट था।

फिर वही, आप आगे की ओर देखते हुए बिंदुओं को नहीं जोड़ सकते; आप उन्हें केवल पीछे देखकर ही जोड़ सकते हैं। इसलिए आपको भरोसा रखना होगा कि आपके भविष्य में ये बिंदु किसी न किसी तरह जुड़ जाएँगे। आपको किसी चीज़ पर भरोसा करना होगा–अपनी अंतरात्मा, भाग्य, जीवन, कर्म, जो भी। इस दृष्टिकोण ने मुझे कभी निराश नहीं किया और इसने मेरे जीवन में बहुत बदलाव लाया है।

मेरी दूसरी कहानी प्यार और हारने के बारे में है।

मैं भाग्यशाली था–मुझे जीवन के आरंभ में ही वह मिल गया जो मुझे करना पसंद था। जब मैं 20 साल का था तब वॉज़ और मैंने अपने माता-पिता के गैराज में एप्पल की शुरुआत की थी। हमने कड़ी मेहनत की और 10 वर्षों में एप्पल एक गैराज और हम दोनों से बढ़कर 4,000 से अधिक कर्मचारियों वाली 2 बिलियन डॉलर की कंपनी बन गई। हमने एक साल पहले ही अपनी बेहतरीन रचना–मैकिंटोश–रिलीज़ की थी, और मैं अभी सिर्फ 30 साल का हुआ था। और फिर मुझे निकाल दिया गया। आपके द्वारा शुरू की गई कंपनी से आपको कैसे निकाला जा सकता है? खैर, जैसे-जैसे एप्पल का विकास हुआ, हमने अपने साथ कंपनी चलाने के लिए एक ऐसे व्यक्ति को काम पर रखा, जिसके बारे में मुझे लगा कि वह बहुत प्रतिभाशाली है, और पहले साल तक सब कुछ ठीक-ठाक रहा। लेकिन फिर भविष्य के बारे में हमारी सोच अलग-अलग होने लगी और आखिरकार हमारे बीच मतभेद हो गए। जब हमने ऐसा किया तो हमारे निदेशक मंडल ने उसका साथ दिया। इसलिए उम्र के तीसवें साल में मैं कंपनी से बाहर था। और बहुत सार्वजनिक रूप से बाहर। जो मेरे पूरे वयस्क जीवन का केंद्र था वह ख़त्म हो गया था, और यह दु:खद था।

मुझे सचमुच कुछ महीनों तक नहीं पता था कि क्या करना है। मुझे लगा कि मैंने उद्यमियों की पिछली पीढ़ी को निराश कर दिया है–कि जब यह मशाल मुझे सौंपी जा रही थी तो मैंने कमान छोड़ दी थी। मैं डेविड पैकर्ड और बॉब नॉयस से मिला और माफी माँगने की कोशिश की। मैं सार्वजनिक रूप से बहुत असफल साबित हुआ था, और मैंने सिलिकॉन वैली से भागने के बारे में भी सोचा था। लेकिन धीरे-धीरे मुझे कुछ एहसास होने लगा–मैंने जो किया वह अब भी मुझे पसंद था। एप्पल की घटनाओं में ज़रा भी बदलाव नहीं आया। मुझे अस्वीकार कर दिया गया था, लेकिन मैं अभी भी प्यार में था। और इस तरह मैंने पुन: आरंभ करने का फैसला किया।

उस समय मुझे नहीं लगा, लेकिन बाद में यह लगा कि एप्पल से निकाल दिया जाना मेरे जीवन की सबसे अच्छी बात थी। सफल होने पर जिम्मेदारियों के भारीपन की जगह फिर से नौसिखिया होने के फक्कड़पन और 'हर चीज़ के बारे में कम आश्वस्त होने' की भावना ने ले ली। इसने मुझे अपने जीवन के सबसे रचनात्मक दौर में प्रवेश करने के लिए स्वतंत्र कर दिया।

अगले पाँच वर्षों के दौरान, मैंने 'नेक्स्ट' नाम से एक कंपनी शुरू की, पिक्सर नाम से एक और कंपनी शुरू की, और मुझे एक अद्भुत महिला से प्यार हो गया जो मेरी पत्नी बनी। पिक्सर ने दुनिया की पहली कंप्यूटर एनिमेटेड फीचर फिल्म, टॉय

स्टोरी बनाई और अब यह दुनिया का सबसे सफल एनीमेशन स्टूडियो है। घटनाओं के एक उल्लेखनीय मोड़ में, एप्पल ने नेक्स्ट को खरीद लिया, मैं एप्पल में लौट आया, और नेक्स्ट में हमने जो तकनीक विकसित की वह एप्पल के वर्तमान पुनर्जन्म के केंद्र में है। और लौरीन और मेरे पास एक साथ एक अद्भुत परिवार है।

मुझे पूरा यकीन है कि अगर मुझे एप्पल से नहीं निकाला गया होता तो ऐसा कुछ भी नहीं होता। यह बुरे स्वाद वाली दवा थी, लेकिन मुझे लगता है कि मरीज को इसकी ज़रूरत थी। कभी-कभी जिंदगी आपके सिर पर पत्थर से वार करती है, विश्वास मत खोना। मुझे पूरा विश्वास है कि केवल एक चीज जिसने मुझे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया, वह यह कि मैंने वह किया जो मुझे पसंद था। आपको उसका पता लगाना होगा जो आपको पसंद है। और यह आपके काम के लिए उतना ही सच है जितना कि आपके काम के प्रशंसकों के लिए। आपका काम आपके जीवन का एक बड़ा हिस्सा बनने वाला है, और वास्तव में संतुष्ट होने का एकमात्र तरीका वह काम करना है जिसे आप 'महान काम' मानते हैं। और 'महान कार्य' करने का एकमात्र तरीका यह है कि आप जो करते हैं उससे प्यार करें। यदि आपको यह अभी तक नहीं मिला है, तो खोजते रहें। समझौता न करें। दिल के अन्य सभी मामलों की तरह, जब आप इसे पा लेंगे तो आपको पता चल जाएगा। और, किसी भी मजबूत रिश्ते की तरह, जैसे-जैसे साल बीतते हैं, यह और भी बेहतर होता जाता है। तो जब तक आप इसे खोज नहीं लेते, तलाश करते रहिए। समझौता मत कीजिए।

मेरी तीसरी कहानी मृत्यु के बारे में है।

जब मैं 17 साल का था, मैंने एक उद्धरण पढ़ा जो कुछ इस प्रकार था-'यदि आप प्रत्येक दिन ऐसे जीते हैं जैसे कि यह आपका आखिरी दिन है, तो किसी दिन आप निश्चित रूप से सही होंगे।' इसका मुझ पर प्रभाव पड़ा और तब से, पिछले 33 वर्षों से, मैं हर सुबह दर्पण में देखता हूँ और खुद से पूछता हूँ: 'अगर आज मेरे जीवन का आखिरी दिन हो, तो क्या मैं वही करना चाहूँगा जो मैं आज करने वाला हूँ।' और जब भी लगातार कई दिनों तक उत्तर 'नहीं' आता है, तो मुझे पता चल जाता है कि मुझे कुछ बदलने की ज़रूरत है।

यह याद रखना कि मैं जल्द ही मर जाऊँगा, जीवन में बड़े विकल्प चुनने में मेरी मदद करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण है। क्योंकि लगभग हर चीज़-सभी बाहरी अपेक्षाएँ, सारा गर्व, शर्मिंदगी या असफलता का सारा डर-ये चीज़ें मौत के सामने ख़त्म हो जाती हैं, केवल वही बचता है जो वास्तव में महत्त्वपूर्ण है। मुझे पता है कि यह याद रखना कि आप मरने वाले हैं, यह सोचने के जाल से बचने का सबसे अच्छा तरीका है कि आपके पास खोने के लिए कुछ है। तुम तो पहले से ही नग्न हो। अपने दिल की बात न मानने का कोई कारण नहीं है।

लगभग एक साल पहले मुझमें कैंसर की पहचान की गयी। सुबह साढ़े सात बजे मेरा स्कैन हुआ और उसमें स्पष्ट रूप से मेरे अग्न्याशय में एक ट्यूमर दिखाई दिया। मुझे यह भी नहीं पता था कि अग्न्याशय क्या होता है। डॉक्टरों ने मुझे बताया कि यह निश्चित रूप से एक प्रकार का कैंसर है जो लाइलाज है, और मुझे तीन से छः महीने से अधिक जीवित रहने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। मेरे डॉक्टर ने मुझे घर जाने और अपने मामलों को व्यवस्थित करने की सलाह दी, जो मरने के लिए तैयार रहने के लिए डॉक्टर का कोड है। इसका मतलब है कि आप अपने बच्चों को वह सब कुछ, कुछ ही महीनों में बताने का प्रयास करें जो आपने अगले दस वर्षों में बताने का सोचा था। इसका मतलब यह सुनिश्चित करना है कि सब कुछ इस प्रकार व्यवस्थित हो कि आपके बाद आपके परिवार के लिए जितना संभव हो सके उतना जीवन आसान हो। इसका मतलब है अलविदा कहना।

मैं उस पूरे दिन इस डायग्नोसिस के साथ रहा। बाद में उस शाम मेरी बायोप्सी हुई, जहाँ उन्होंने मेरे गले के नीचे, पेट से होते हुए और मेरी आँतों में एक एंडोस्कोप डाला, मेरे अग्न्याशय में एक सुई डाली और ट्यूमर से कुछ कोशिकाएँ निकालीं। मुझे बेहोश कर दिया गया था, लेकिन मेरी पत्नी, जो वहाँ मौजूद थी, ने मुझे बताया कि जब उन्होंने माइक्रोस्कोप के नीचे कोशिकाओं को देखा तो डॉक्टर रोने लगे क्योंकि यह अग्नाशय कैंसर का एक बहुत ही दुर्लभ रूप निकला जिसे सर्जरी से ठीक किया जा सकता है। मेरी सर्जरी हुई और मैं अब ठीक हूँ।

यह मौत का सामना करने का मेरा सबसे करीब का अनुभव था, और मुझे उम्मीद है कि अगले कुछ दशकों तक दूसरा अनुभव नहीं होगा। इससे गुज़रने के बाद, अब मैं आपसे यह बात कुछ अधिक निश्चितता के साथ कह सकता हूँ, जबकि मृत्यु एक उपयोगी लेकिन विशुद्ध बौद्धिक अवधारणा थी। कोई भी मरना नहीं चाहता है। यहाँ तक कि जो लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं वे भी वहाँ पहुँचने के लिए मरना नहीं चाहते। और फिर भी मृत्यु एक ऐसा गंतव्य है जिसे हम सब साझा करते हैं। इससे कोई भी नहीं बच सका है। और यह वैसा ही है जैसा होना चाहिए, क्योंकि मृत्यु संभवतः जीवन का सबसे अच्छा आविष्कार

है। यह जीवन का परिवर्तन करने वाला कारक है। यह नये के लिए रास्ता बनाने के लिए पुराने को साफ़ करता है। अभी आप नए हैं, लेकिन अब से कुछ ही देर बाद आप धीरे-धीरे पुराने हो जाएंगे और फिर मिटा दिए जायेंगे। इतना नाटकीय होने के लिए क्षमा करें, लेकिन यह बिल्कुल सच है।

आपका समय सीमित है, इसलिए किसी और का जीवन जीकर इसे बर्बाद न करें। हठधर्मिता में न फँसें-जो दूसरे लोगों की सोच के परिणामों के साथ जीना है। दूसरों की राय के शोर में अपनी आंतरिक आवाज़ को दबने न दें। और सबसे महत्त्वपूर्ण, अपने दिल और अंतर्ज्ञान का पालन करने का साहस रखें। वे किसी तरह पहले से ही जानते हैं कि आप वास्तव में क्या बनना चाहते हैं। बाकी सब गौण है।

जब मैं छोटा था, तो 'द होल अर्थ कैटलॉग' नामक एक अद्भुत प्रकाशन था, जो मेरी पीढ़ी की बाइबिलों में से एक था। इसे यहाँ से कुछ ही दूरी पर मेनलो पार्क में स्टीवर्ट ब्रांड नाम के एक व्यक्ति ने बनाया था और उन्होंने इसे अपने काव्यात्मक स्पर्श से जीवंत कर दिया। यह 1960 के दशक के उत्तरार्ध में था, पर्सनल कंप्यूटर और डेस्कटॉप प्रकाशन से पहले, इसलिए यह सब टाइपराइटर, कैंची और पोलेरॉइड कैमरों से बनाया गया था। यह मानो गूगल के आने से 35 साल पहले गूगल के पेपरबैक रूप की तरह था : यह आदर्शवादी था, और साफ-सुथरे उपकरणों और महान धारणाओं से भरा हुआ था।

स्टीवर्ट और उनकी टीम ने 'द होल अर्थ कैटलॉग' के कई अंक निकाले, और फिर जब यह अपना काम पूरा कर चुका, तो उन्होंने एक अंतिम अंक निकाला। यह 1970 के दशक के मध्य की बात है, और मैं आपकी उम्र का था। उनके अंतिम अंक के पिछले कवर पर एक ग्रामीण सड़क की अलस्सुबह की तस्वीर थी, जिस पर अगर आप साहसी होते तो शायद खुद को इस पर चलते हुए हिचकोले खाते पाते। इसके नीचे ये शब्द थे--भूखे रहो। मूर्ख रहो।' यह उनका विदाई संदेश था। ज्ञान के भूखे बने रहो। अज्ञानी बने रहो। और मैंने हमेशा खुद के लिए यह कामना की है। और अब, जब आप नए सिरे से शुरुआत करने के लिए स्नातक हो रहे हैं, तो मैं आपके लिए यही कामना करता हूँ।

सीखने की भूख हमेशा रखो और इसके लिए नासमझ बने रहो

आपको बहुत बहुत धन्यवाद।

[1] 1908 में दक्षिणपूर्व पोर्टलैंड, ओरेगॉन में स्थापित, रीड कॉलेज एक सहशिक्षा, स्वतंत्र,उदार कला और विज्ञान महाविद्यालय है। देश के सबसे बौद्धिक कॉलेजों में से एक के रूप में जाना जाने वाला रीड अपने विद्वतापूर्ण अभ्यास, रचनात्मक सोच और संलग्न नागरिकता के उच्च मानकों के लिए जाना जाता है।

एच.आई.जी., 72,
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, बागमुगलिया,
एक्सटेंशन, भोपाल-462043 (म.प्र.)
मो.- 9425079134

वीर नारी सम्मान में सम्मानीय वीर माता उमा सिंह

ऐकेश्वरवाद का जनक भारत का गौरवशाली अशोक चिह्न

– चन्द्रप्रकाश त्रिवेदी

जन्म – 11 मई 1946।
जन्मस्थान – देवास (म.प्र.)।
शिक्षा – एम. एस. सी., पीएच. डी।
सम्मान – वाड्.मय पुरस्कार सहित अनेक सम्मान।

भारत का गौरवशाली अतीत भारत का आधार है, हमारी विरासत का प्रतीक हमारा राष्ट्रीय चिह्न है। जिसे हमने सम्राट अशोक से विरासत में प्राप्त किया। यह चिह्न मौर्य कालीन है। जब भारत पर मौर्य साम्राज्य का एक छत्र शासन था। इसे ही सम्राट अशोक ने सारनाथ, जहाँ महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम उद्बोधन दिया था– उस स्थान पर उनकी शिक्षा को स्थायी बनाने के लिए इस अद्भुत चिह्न को स्थापित किया। जिसका मूल वेदों में है। इस चिह्न में सम्पूर्ण सृष्टि का सार समाहित है, जो सम्राट अशोक के गौरवशाली साम्राज्य का आधार था कि सृष्टि एक तंत्र के अंतर्गत क्रियाशील है। जिसमें प्रकृति से सामंजस्य और नैतिक कर्तव्यों का पालन मनुष्य का नैतिक कर्त्तव्य है। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में जब भारतीय उपमहाद्वीप चरम उत्कर्ष पर था, घरों और दुकानों पर ताले नहीं लगते थे, लोग स्वत: अपना कार्य ईमानदारी और कर्तव्य का पालन करते थे, कि जीवन निरन्तर चलने वाला है, जन्म–मृत्यु चक्र में अपने कर्मों को स्वयं ही भुगतना है। यह शाश्वत सत्य जीवन का आधार और सृष्टि चक्र के अंतर्गत अपने स्वयं के मानसिक उत्थान का कारक था। इसके मूल में तत्कालीन समय में अविनाशी सृष्टा और अविनाशी स्वर तरंग की खोज महत्त्वपूर्ण है, जो पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के साथ परस्पर एक–दूसरे का नए जीवन के साथ अनुसरण करते हैं, और जीव जगत अस्तित्व में आया। इसे अशोक चिह्न एवं उदयगिरी गुफाओं में चट्टानों पर तथा सोने के सिक्कों पर उकेरा गया। एक सिक्का लंदन के संग्रहालय में और एक बेंगलुरु के प्राचीन सिक्के व्यवसायी के पास है। इसके साथ ही अविनाशी स्वर तरंग की खोज की प्रतीक धारा, भोजशाला की वाग्देवी प्रतिमाएँ लंदन संग्रहालय में है, जिसका विस्तृत वर्णन वेदों में है। यह भारत की तत्कालीन वैज्ञानिक उपलब्धि के प्रमाण हैं। यह प्रजा के सामान्य जीवन का अंग था, और भारत का स्वर्णिम काल।

अश्विन न्युक्लियोटाइड क्षार जोड़ा, जिसे प्युरीन और पायरीमिडीन कहते हैं, जिनमें सिर्फ नाईट्रोजन का अंतर होता है। अश्विन डीएनए की रचना सृष्टि की प्राग्वस्था में मौलिक ऊर्जा से हुई, जिसे यह कह कर अभिव्यक्त किया गया कि मौलिक ऊर्जा, शक्तिशाली पुरुष ने रंग बिरंगी गाड़ी का निर्माण किया, और यह सृष्टि निर्माण के साथ बंदूक की गोली के समान क्षरित हुआ।

जीव जगत अश्विन डीएनए के दो न्युक्लियोटाइड क्षार प्युरीन और पायरीमिडीन को सराण्यु और संजना नाम दिया गया, ये सक्रिय होकर अपने ही समान प्रतिकृति निर्मित करते हैं, जिनसे ऐक्स–ऐक्स मादा और ऐक्स–वॉय नर गुण–सूत्र बनते हैं, जिसे कहा गया कि सराण्यु ने दो जुड़वाँ को जन्म दिया।

सराण्यु मादा गुण–सूत्र है, जो गर्भ में जीव को पोषित करती है, और जगत–जननी अविनाशी शब्द–स्वर तरंग बीज धारण करती है, और जीव इसे वाणी द्वारा अभिव्यक्त करता है कि मैं माँ के अंतर्निहित बल और कृपालु पिता के मन से बोलता हूँ। जगत के दो अभिभावक हैं, जिन्होंने जीव जगत का निर्माण अविनाशी सनातन जीवन के साथ किया। **(ऋग्वेद 10-184-1, 2, 3)**

यह अभिव्यक्त किया गया है कि डी.एन.ए. गर्भ में भ्रूण को आकार–प्रदान करता है और अविनाशी प्रजापति जीवन को धारा प्रदान करता है, जिसे विष्णु भोजन द्वारा गर्भ में पोषित करता है। यह तीन भ्रूण को पैतृकरूप से प्राप्त होते हैं।

तदनुसार सरस्वती–वाक्–विचार विभाजित हो रहे डी.एन.ए. के मन संकेत को उत्प्रेरित करती है, जो संयुक्त होकर भ्रूण के भाग्य को अंकुरित करते हैं। तद्नुसार अश्विन–डी.एन.ए. के न्यूक्लियोटाइड जोड़ें जो एक–दूसरे के पूरक हैं, ये पल्लवित होकर भ्रूण को कमल के समान प्रस्फुटित करते हैं।

इसे अश्विन के दो क्षार स्वर्ण के समान शोधित कर पूर्ण आकार प्रदान करत है। उत्तम संतान के लिए, दस माह में अंकुरित इस

बीज का यहाँ आह्वान किया गया है।

सारनाथ में प्राप्त अशोक चिह्न

अशोक चिह्न में एक मौलिक ऊर्जा अंतर्गत सृष्टि चक्र को उकेरा गया है।

मैं उस अग्नि मैलिक ऊर्जा का आह्वान करता हूँ, जो इस सृष्टि यज्ञ का कर्ता, धर्ता और रत्नों की खान है (ऋग्वेद 1-1-1)

चिह्न में चार शेर आगे पीछे-पीछे यह प्रदर्शित करते हैं कि मौलिक ऊर्जा चारों तरफ सर्वत्र व्याप्त और सर्वशक्तिमान है, पुरुष सूक्त ऋग्वेद 10-90.

चन्द्रगुप्त द्वितीय के कार्यकाल में निर्मित शेर राल्य उदयगिरी विदिशा, ग्वालियर, पुरातत्व संग्रहालय

उष्मा के ऊर्जा सम्बंधी सिद्धांत :- शेरों के माध्यम से यह अभिव्यक्त किया गया है कि सृष्टि का विकास एक मौलिक ऊर्जा से हुआ, जो उष्मा के ऊर्जा सम्बंधी सिद्धांतों के अंतर्गत क्रियाशील है, जिसका उल्लेख पुरुष सूक्त (ऋग्वेद 10-90-1) से 4 में अभिव्यक्त किया गया है, कि मौलिक ऊर्जा के हजारों सिर, हजारों आँखें, हजारों पाँव हैं के द्वारा यह अभिव्यक्त किया गया कि मौलिक ऊर्जा सर्वव्याप्त है, वह भूमि और ब्रह्माण्ड में चारों तरफ आवृत कर मनुष्य शरीर के दस अंगुल वाले स्थान पेल्विक गर्डल के मध्य का खाली स्थान जो सर्पाकार कुण्डलिनी का स्थान है, जिसे जाग्रत करने के लिए योगी तपस्या करते हैं (ऋग्वेद 10-90-1)

सहस्त्रशीषो पुरुषः सहस्त्रावः सहःपात्।
सभूमिविवतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

यह पुरुष मौलिक ऊर्जा ही सब कुछ है, जो कुछ भी था है और भविष्य में भी होगा वह मौलिक ऊर्जा ही है वह सर्वव्यापी सनातन है। (ऋग्वेद 10-90-2)

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥2॥

चार-शेर एक गोलाकार आधार पर इसप्रकार स्थापित किए गए हैं कि सामने से किसी भी तरफ से भी देखे शेर के तीन मुँह ही दिखाई देते हैं और चार पैर। जिससे तात्पर्य है कि मौलिक ऊर्जा, जिसकी पुरुष-सूक्त (ऋग्वेद 10-90-1) में पुरुष-रूप में कल्पना की गई है, वह, सर्वव्यापी सनातन है, उसका एक भाग ही पुनः - पुनः ऊर्जा के रूपान्तरण द्वारा उत्पन्न होता है (ऋग्वेद 10-90-3)

एतावानस्य महिमानो ज्याया पुरुषः
पादऽस्यविषा भूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि।।
त्रिपादूश्उ्दैत्पुरुषः पार्दोऽस्येहामवत्पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि।।

उसके चार अंश, जिसे चार पैर के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है, इनमें से दृश्य जगत उसका सिर्फ एक भाग है, जो ऊर्जा रुपान्तरण द्वारा जीव और अजीव के रूप में फैल रहा है। शेष तीन चौथाई भाग अदृश्य अनन्त ब्रह्माण्ड का लोक है। (पुरुष सूक्त ऋग्वेद 10-90-3, 4)

आकाशिय स्थान हिग्स फिल्ड ईश्वरीय कण जिसे चक्र में मध्य स्थान द्वारा अभिव्यक्त किया गया है कि आकाश से आकाश की उत्पत्ति हुई, जो सबका स्वामी हुआ और ग्रह नक्षत्र बने। (ऋग्वेद 10-90-5।)

जिसे गोलाकार आधार पर प्रदर्शित चार चक्र और चार पशु द्वारा दर्शाया गया है, यह प्रदर्शित करते हैं कि यह दृश्य जगत जो दिखाई दे रहा है, यह मौलिक ऊर्जा का सिर्फ एक अंश है, जिसे पुरुष सूक्त में यह कह कर अभिव्यक्त किया गया कि उसी से अश्व तथा ऊपर और नीचे दाँत वाले पशु उत्पन्न हुए हैं। (ऋग्वेद 10-90-10)

शेरों के चार पैर और गोलाकार आधार पर चार पशु, शेर, हाथी, अश्व और वृषभ, उनके मध्य चार 24 आरे वाले चक्र हैं। जो यह प्रदर्शित करते हैं कि मौलिक ऊर्जा अपने द्विस्वभाव अविनाशी स्वर-शब्द फोनॉन और प्रकाश के सूक्ष्म कण फोटॉन के अंतर्गत क्रियाशील है, जो आण्विक स्तर पर एक अनुर्द्धेय तरंग से जुडे हुए हैं, इसे आगे-पीछे जुड़े हुए शेरों के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

एक मौलिक ऊर्जा से सृष्टि का निर्माण हुआ, जो अपने द्विस्वभाव प्रकाश फोटॉन एवं ध्वनि फोनॉन के द्वारा कार्य कर रही है। ये दोनों बल सूक्ष्मतम प्रकाश के कण फोटॉन एवं ध्वनि की

सूक्ष्मतम इकाई फोनॉन ये दोनों बल समस्त ब्रह्माण्ड में और सूक्ष्मतम परमाणु में भी क्रियाशील हैं, सृष्टि के समस्त कार्य इन दोनों के द्वारा हो रहे हैं। इसलिए कहा गया कि दोनों पिता भी हैं और पुत्र भी हैं। इनमें से एक देव मन में प्रविष्ट हुआ, अर्थात् अविनाशी ध्वनि–स्वर तरंग, जो दिमाग में विचारों को उत्पन्नत कर जीव को क्रिया हेतु प्रेरित करते हैं, यह देव अविनाशी स्वर तरंग सृष्टि की प्राग्वस्था में सर्वप्रथम अवतरित हुई, जिसने सुशुप्त मौलिक ऊर्जा को क्रियाशील किया और यही गर्भ में प्रविष्ट होकर जीव को धारण करती है। दो बल आण्विक स्तर पर एक तरंग के द्वारा जुड़ें हुए हैं। इसे परस्पर आगे–पीछे जुड़े हुए शेरों के द्वारा दर्शाया गया है।

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्ये उत वा कनिः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भेऽ अन्तः॥

मौलिक ऊर्जा अपने द्विस्वभाव फोटॉन और फोनॉन के द्वारा क्रियाशील है। वाक् शब्द मन में विचारों का स्फुरण करते हैं। एक मौलिक ऊर्जा से सृष्टि का निर्माण हुआ, जो अनने द्विस्वभाव प्रकाश फोटॉन एवं ध्वनि फोनॉन के द्वारा कार्य। कर रही है, ये दोनो बल सूक्ष्मतम प्रकाश के कण फोटॉन एवं ध्वनि की सूक्ष्मतम ईकाई फोनॉन ये दोनों बल समस्त ब्रह्माण्ड में और सूक्ष्मतम परमाणु में भी क्रियाशील है, सृष्टि के समस्त कार्य इन दोनों के द्वारा हो रहे हैं, इसलिए कहा गया कि दोनों पिता भी है और पुत्र भी है। इनमें से एक देव मन में प्रविष्ट हुआ, अर्थात् अविनाशी ध्वनि–स्वर तरंग, जो दिमाग में विचारों को उत्पन्न कर जीव को क्रिया हेतु प्रेरित करते हैं, यह देव अविनाशी स्वर तरंग सृष्टि की प्राग्वस्था में सर्वप्रथम अवतरित हुई, जिसने सुशुप्त मौलिक ऊर्जा को क्रियाशील किया और यही गर्भ में प्रविष्ट होकर जीव को धारण करती है।

पर्वापरं चरतो मायथैतौ शिशू क्रोडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः॥23॥

ये दो समानुपाती बल परस्पर समीप अपनी शक्ति से ध्वनि–प्रतिध्वनि द्वारा ऐसे क्रिया करते हैं, जैसे शिशु यज्ञवेदी के आसपास क्रीड़ा कर रहे हो। प्रकाश की विद्युत चुम्बकीय किरणें ध्वनि और स्पंदन के द्वारा गति करती है। इनमें से एक शक्ति बल समस्त घटकों को धारण करती है, और दूसरा बल मौसम के अनुसार पुनः–पुनः जन्म लेता है। मौलिक ऊर्जा अपने द्विस्वभाव प्रकाश की सूक्ष्मतम इकाई फोटॉन एवं ध्वनि स्वर की सूक्ष्मतम इकाई अविनाशी फोनॉन दो नदी की धारा के समान समानान्तर और एक–दूसरे के पूरक हैं, जो एक विपरीत अनुर्द्धेय तरंग द्वारा जुड़े हुए हैं।

हिग्स फिल्ड आकाशीय स्थान अस्तित्व की पहचान इसे चक्र के मध्य स्थान के द्वारा अभिव्यक्तकिया गया है, जिससे सब तारों के समान जुड़े हुए हैं।

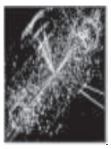

सूर्य प्रकाश की विद्युत चुम्बकीय किरणें स्पंदन और ध्वनि प्रतिध्वनि के द्वारा गति करती हैं। अर्थात् आण्विक स्तर पर मौलिक ऊर्जा का द्विस्वभाव, फोटॉन एवं फोनॉन परस्पर क्रिया करते हैं। जिसकी तरफ ली और अन्य ने 1914 में ध्यान आकर्षित किया कि सूक्ष्म फोनॉन पदार्थ में आण्विक स्तर पर फोटॉन का विघटन करते हैं। परमाणु में इलेक्ट्रान केन्द्र के चारों तरफ स्पंदन के द्वारा गति करते हैं, स्पंदन से उत्पन्न ध्वनि–प्रतिध्वनि इलेक्ट्रानों के विस्थापन द्वारा प्रोटॉन का क्षरण होता है, और क्षरित हो रहे प्रोटॉन हेड्रोजन जैट्स और इलेक्ट्रानो को विद्युत स्वर स्पंदन द्वारा एक सूत्र में बाँधता है। और हिग्स फील्ड आकाशीय स्थान से मूलभूत कणों को भार प्राप्त हुआ और ग्रह–नक्षत्र अस्तित्व में आए।

भ्रूण को कमल के समान प्रस्फुटित करते हैं।

हे सरस्वती, तुम्हारा स्वरूप विराट है, जैसे विष्णु, हे सरस्वती, हे सिनीवाली इसे अच्छी संतान दो, जो इसके हित में हो। सरस्वती विचार वाक् को सम्बोधन है, तथा सिनीवाली गर्भ में विभाजित होने वाले डीएनए को कहा गया है।

यह अभिव्यक्त किया गया है कि डीएनए, गर्भ में भ्रूण को आकार प्रदान करता है, और अविनाशी प्रजापति जीवन की धरा प्रदान करता है, जिसे विष्णु भोजन द्वारा गर्भ में पोषित करता है। यह तीन भ्रूण को पैतृक रूप से प्राप्त होते हैं। तद्नुसार सरस्वती–वाक्–विचार विभाजित हो रहे डीएनए के मन संकेत को उत्प्रेरित करती है।

जो संयुक्त होकर भ्रूण के भाग्य को अंकुरित करते हैं। तद्नुसार अश्विन–डीएनए के क्षार सरान्यु और संजना, न्यूक्लियोटाइड जोड़े, जो एक–दूसरे के पूरक हैं। ये पल्लवित होकर भ्रूण को कमल के समान प्रस्फुटित करते हैं।

इसे ही अश्विन स्वर्ण के समान शोधित कर पूर्ण आकार प्रदान करता है। उत्तम संतान के लिए, दस माह में अंकुरित, इस बीज का यहाँ आह्वान किया गया है।

सृष्टि का मूल स्रोत आकाशीय समुद्र, वायुमण्डलीय विज्ञान

चार सींग वाली भैंस परमाणु के चार घटक :– सृष्टि का मूल स्रोत आकाशीय समुद्र है। जिसे यह कह कर अभिव्यक्त किया गया है कि आकाशीय समुद्र से मधु युक्त बयार की वर्षा हो रही है। जो अमृत का स्रोत है। यह उस रहस्यमयी धी नाम है, परन्तु देवों की जिह्वा सत्य ही अमृत का स्रोत है। **(ऋग्वेद 4-58-1)**

चार खुर यह प्रतिपादित करते हैं कि सृष्टि का आधार परमाणु के चार घटक, तीन सहआण्विक कण और ऊर्जा हैं। जिसे ऋग्वेद 4–58–1, 2 में यह कह कर अभिव्यक्त किया कि चार सींग वाली भैंस अवतरित हुई, जो सृष्टि को निरंतर दूध की सतत् धारा के समान निरंतर पोषित करती है। तीन मूलभूत कण और ऊर्जा को हिग्स फील्ड आकाश से भार प्राप्त हुआ और ये श्रंखला बद्ध रूप में सृष्टि को कमल के फूल के समान सृष्टि को विस्तारित करते हैं। इसलिए कहा गया कि देवों की जिह्वा सत्य ही अमृत का स्रोत है। इसे अशोक चिह्न में शेरों की बाहर निकलती हुई देवों की जिह्वा द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

सृष्टि का सार :– जीव जगत का विकास एक सूक्ष्म अविनाशी त्वष्टा डीएनए से हुआ है, जिसे अविनाशी स्वर पीढ़ी दर पीढ़ी नए जन्म के साथ स्वागत करते हैं। एक पुत्र विहीन पिता को अपनी पुत्री से पोता प्राप्त हुआ, जो यह जानता है, वह पिता का पिता हो जाता है। **(ऋग्वेद 3-31-1 अनिनाशी त्वष्टा)**

चार सींग वाली भैंस परमाणु के चार घटक :– उसके चार सींग हैं, तीन पाँव उसे धारण करते हैं, उसके दो सिर हैं तथा सात हाथ हैं। तीन बंधों से बँधा हुआ वृषभ हुंकार करते हुए कुलाचें भर रहा है, कि 'शक्तिशाली महान देव मरण धर्मा जीवो में प्रविष्ट हुआ है। **(ऋग्वेद 4-58-3)**। जीव जगत में डी.एन.ए. समान रूप से जीवन का आधार है। डी.एन.ए. में चार क्षार होते है, जो जीव जगत का आधार है।

डी आक्सि रिबोस न्यूक्लिक एसिड का निर्माण होता है, जिसमें मुख्य चार क्षार होते हैं, एडेनीन, ग्वानीन, थायमीन और सायटोसीन डी. एन. ए. यह सृष्टि में जीव जगत का आधार है। चार क्षार को चार सींग के रूपक के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है तथा डी एन ए ट्रीपलेट कोड के द्वारा कार्य करता है। तीन क्षार के इस संकेत ट्रीपलेट कोड को तीन पाँव, और डीएनए में दो पट्टियाँ होती हैं, इन्हें दो सिर, तथा दो ट्रीपलेट न्यूक्लियोटाइड जोड़ों के मध्य उपस्थित सात हाइड्रोजन बॉण्ड (2+2+3) को सात हाथ कहा गया है। डी एन ए की क्रिया विधि हाइड्रोजन ट्रीपलेट बॉण्ड के द्वारा नियंत्रित होती है। इसे यह कह कर अभिव्यक्त किया गया है कि तीन बंधों से बँधा हुआ डी एन ए शक्तिशाली वृषभ के समान मरण धर्मा जीवों में कुलाचें भर रहा है। अर्थात् जीवों में व्याप्त हो रहा है। इसे अशोक चिह्न में वृषभ द्वारा दर्शाया गया है।

चार सींग वाली भैंस

समुद्रादर्मिर्मधुमा उदारदुपाशना सममृहत्वमानद्।
घृतस्य नाम गृह्यायदरत जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः।।1।।

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः।
उपे ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः श्रृङ्गोऽवमीद्गौर एतत्।।2।।

अब हम उस रहस्यमयी धी का वर्णन करते हैं, जिसने इस सृष्टि यज्ञ को धारण कर रखा है। अतः हे ब्राह्मण–विद्वान सुनो, हम जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं, कि चार सींग वाली भैंस अवतरित

हुई है। इससे तात्पर्य है परमाणु के चार घटक –

चत्वारि शृत्यों अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धोवृषभो रोरवीति महो देवो मया आ विवेश।।3।।

उसके चार सींग हैं, तीन पाँव उसे धारण करते हैं, उसके दो सिर हैं तथा सात हाथ हैं। तीन बंधों से बँधा हुआ वृषभ हुंकार करते हुए कुलाचें भर रहा है, कि शक्तिशाली महान देव मरण धर्मा जीवों में प्रविष्ट हुआ है। इसके पश्चात्, यह कहते हुए कि उसके चार सींग, व तीन पाँव उसे धारण करते हैं, उसके दो सिर हैं तथा सात हाथ हैं। आज यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि जीव जगत में डी.एन.ए. समान रूप से जीवन का आधार है। डी.एन.ए. में चार क्षार होते हैं, इसके माध्यम से जीव जगत के आधार डी.एन.ए. की संरचना की तरफ संकेत दिया गया है। परमाणु और अणुओं के द्वारा निर्मित पदार्थों से डी. एन. ए.–डी आक्सि रिबोस न्यूक्लिक एसिड का निर्माण होता है, जिसमें मुख्य चार क्षार होते है। अर्थात् चार क्षार एडेनीन, ग्वानीन, थायमीन और सायटोसीन डी. एन. ए.–डी आक्सि रिबोस न्यूक्लिक एसिड का निर्माण करते हैं। यह सृष्टि में जीव जगत का आधार है। चार क्षार को चार सींग के रूपक के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है तथा डी एन ए ट्रीपलेट कोड के द्वारा कार्य करता है। तीन क्षार के इस संकेत ट्रीपलेट कोड को तीन पाँव, और डीएनए में दो पट्टियाँ होती हैं, इन्हें दो सिर, तथा दो ट्रीपलेट न्यूक्लियोटाइड जोड़ों के मध्य उपस्थित सात हाइड्रोजन बॉण्ड (2+2+3) को सात हाथ कहा गया है। डी एन ए की क्रिया विधि हाइड्रोजन ट्रीपलेट बॉण्ड के द्वारा नियंत्रित होती है। इसे यह कह कर अभिव्यक्त किया गया है कि तीन बंधों से बँधा हुआ डी एन ए शक्तिशाली वृषभ के समान मरण धर्मा जीवों में कुलाँचें भर रहा है। अर्थात् जीवों में व्याप्त हो रहा है।

सामने से दृश्टव्य शेर के तीन चेहरे, सृष्टि का सार तीन रूपों में

त्रिधा हितं पणिभिगह्यमानं गव देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः।।-(ऋग्वेद 4-58-4)

सृष्टि का सार धी तीन रूपों में है, जो सृष्टि के परोक्ष में है। देवों ने पणियों के द्वारा छिपाई हुई गाय को उसमें पाया। इन्द्र–विद्युत ने एक रूप को उत्पन्न किया, जो इसे विद्युत–चुम्बकीय ऊर्जा के द्वारा नियंत्रित करता है। सूर्य ने इसका दूसरा रूप उत्पन्न किया, जो सृष्टि को मूलभूत कण और ऊर्जा द्वारा निरंतर पोषित करते हैं। और तीसरा उन्होंने स्वयं की शक्ति वीणा से उत्पन्न किया।

अविनाशी शब्द–स्वर स्पंदन और अविनाशी त्वष्टा–अश्विन–डीएनए जीव जगत का आधार है। और अविनाशी शब्द–स्वर स्पंदन, अविनाशी त्वष्टा–अश्विन–डीएनए का पीढ़ी दर पीढ़ी नए जन्म के साथ अनुसरण करते हैं, जिससे जीव जगत निरंतर फैल रहा है। अशोक चिह्न में इसे सामने से दृश्टव्य शेर के तीन चेहरों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। परमाणु के चार घटक और अश्विन–डीएनए के चार क्षार, चार पैर के समान उसका आधार है।

जीवन तीन अविनाशी का संगम :- सब देवताओं सुनो, सरस्वती पुरुम्धी चयापचय ऊर्जा के साथ मिलकर जीव को सुनने की शक्ति प्रदान करती है। (ऋग्वेद 10-65-14)। तीन अक्षर अविनाशी के नाम बोलो, शब्द जो प्रकाश से पहले है। जो अमृत अविनाशी होकर जीव को संगत करते हैं और मौलिक ऊर्जा वृषभ के समान अवतरित होती है, जो पौधे और संतति का आधार है। अविनाशी स्वर–शब्द तरंग प्रकाश से पहले पहुँचती है, दोनों परस्पर क्रिया कर कोश में अविनाशी अमृत उत्पन्न करते है, जो जीव कोश को दूध के समान पोषित करता है। इसके जीव द्रव की गति से मौलिक ऊर्जा जीवन के साथ अवतहरित होती है, जो जीव संतति और पौधों का आधार है। स्वर–शब्द तरंग सरस्वती जीव अस्तित्व की पहचान है, जो भोजन की चया–पचय ऊर्जा के साथ सुनने की क्षमता प्रदान करती है। (ऋग्वेद 7-101-1) अविनाशी स्वर–शब्द तरंग की गति प्रकाश से पहले है, जो जीवन का आधान करती है।

जीवन की उत्पत्ति और विकास :- अश्विन डीएनए की रचना सृष्टि की प्राग्वस्था में मौलिक ऊर्जा से हुई, जिसे यह कह कर अभिव्यक्त किया गया कि शक्तिशाली पुरुष ने रंग बिरंगी गाड़ी का निर्माण किया, और यह सृष्टि निर्माण के साथ बंदूक की गोली के समान क्षरित हुआ, जीव जगत का विकास एक अश्विन डीएनए से हुआ, पृथ्वी पर यह जीव का वाहन है, जिसके माध्यम से जीव संसार सागर में अपनी यात्रा पूर्ण करता है। अश्विन मूल डीएनए जिसकी रचना मौलिक ऊर्जा ने की उसे त्वष्टा देवता कहा गया, इसके दो क्षार प्यूरीन और पायरीमिडीन

को सराण्यु और संजना नाम दिया गया, इनमें सिर्फ नाइट्रोजन का अंतर होता है जो समानता का द्योतक है। सांकेतिक भाषा में इन्हें त्वष्टा की पुत्री कहा गया। यह जोड़ा बंदूक की गोली के समान क्षरित हुआ, ये हवा में विभक्त होते हैं जैसे काँच में छवि, जिसके कारण इनका स्वरूप सूर्य से पृथ्वी और लस-लसे जीवद्रव में जीवन की उत्पत्ति तक समान रहा। इसे अशोक चिह्न के आधार पर दर्शाया गया है।

अश्विन डीएनए, त्वष्टा रूपी देवता ने समस्त जीव प्रकार और पशुओं को बनाया है, जो हमारे लिए विभाजित होकर विकसित होते हैं।

जीव जगत का विकास एक सूक्ष्म अविनाशी त्वष्टा डीएनए से हुआ है, जिसे अविनाशी स्वर पीढ़ी दर पीढ़ी नए जन्म के साथ स्वागत करते हैं। एक पुत्र विहीन पिता को अपनी पुत्री से पोता प्राप्त हुआ, जो यह जानता है, वह पिता का पिता हो जाता है। अपने धाता से मिलने को उत्सुक जीव पुत्र अपने भ्राता के लिए कोई भाग नहीं छोड़ता है। उसने रहने के लिए घर बना लिया, उसे कौन प्राप्त करता है। किस समय पालक पिता गुरु को पुत्र देता है। यह सब ज्ञान होने पर कुण्डलिनी जीवन ऊर्जा शक्ति लपलपाती जिह्वा के समान, चयापचय ऊर्जा के साथ अपने गंतव्य की तरफ अंगरसर होती है। (ऋग्वेद 3-31-1, 2, 3)

जीव जगत का विकास एक अविनाशी त्वष्टा डीएनए से हुआ, जिसका अविनाशी स्वर तरंग पीढ़ी दर पीढ़ी नए जन्म के साथ अनुसरण करती है। इसे पिता, पौत्र और पुत्र के द्वारा स्पष्ट किया गया है। अविनाशी अश्विन-डीएनए जीवन का यंत्र-पात्र है, इसके दो क्षार प्यूरीन और पायरीमिडीन जिन्हें सराण्यु और संजना कहा गया जीवन की उत्पत्ति के साथ नर और मादा गुण सूत्र यम-यमी का निर्माण होता है।

के समय नर और मादा अश्विनि दो डीएनए के सम्पर्क बिंदु पर हवा में मन संकेत उत्पन्न होता है, जो निषेचित अश्विन-डीएनए का अनुवांशिक संकेत जिसे समानधर्मी शब्द स्वर तरंग अपनी विपरीत अनुर्द्धेय तरंग द्वारा उत्प्रेरित करती है, और निषेचित मन संकेत न्यूक्लियोटाइड जोड़े से जुड़ जाती है। यह अश्विन न्यूक्लियोटाईड जोड़ा तीव्र गति से जीव की प्रथम कोशा का निर्माण और जीव को आकार प्रदान करता है। एक अश्विन न्यूक्लियोटाइड जोड़े से जीव का विकास होने से यह अश्विन डीएनए संकेत सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होता है, जिससे शब्द-स्वर की विपरीत अनुर्द्धेय तरंग भी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाती है, और जीवन पथ पर जीव को नियंत्रित करती है, और इस अनुर्द्धेय तरंग की विपरीत अनुर्द्धेय तरंग बाहर से इसे धारण और नियंत्रित करती है। इस कारण दो समयबद्ध जुड़वा संतानों के भी भाग्य और अनुवांशिक पहचान अश्वित डीएनए अलग-अलग होते हैं।

अश्विन डीएनए की रचना सृष्टि की प्राग्वस्था में मौलिक ऊर्जा से हुई, जिसे यह कह कर अभिव्यक्त किया गया कि शक्तिशाली पुरुष ने रंग-बिरंगी गाड़ी का निर्माण किया, (ऋग्वेद 1-164-43) और यह सृष्टि निर्माण के साथ बंदूक की गोली के समान क्षरित हुआ, जीव जगत का विकास एक अश्विन डीएनए से हुआ, पृथ्वी पर यह जीव का वाहन है, इसके दो क्षार प्यूरीन और पायरीमिडीन को सराण्यू और संजना नाम दिया गया, इनमें सिर्फ नाइट्रोजन का अंतर होता है जो समानता का द्योतक है। सांकेतिक भाषा में इन्हें त्वष्टा की पुत्री कहा गया, ये हवा में विभक्त होते हैं जैसे काँच में छवि, जिसके कारण इनका स्वरूप सूर्य से पृथ्वी और लस-लसे जीवद्रव में जीवन की उत्पत्ति तक समान रहा। इसे अशोक चिह्न के आधार पर दर्शाया गया है।

त्वष्टा डीएनए को कहा गया है। यह इसका विश्वरूप है, जो सभी जीवों में पाया जाता है, और उन्हें आकार प्रदान करता है। (ऋग्वेद 1-188-9)। जीव जगत का विकास एक सूक्ष्म अविनाशी त्वष्टा डीएनए से हुआ है, जिसे अविनाशी स्वर तरंग पीढ़ी दर पीढ़ी नए जन्म के साथ स्वागत करती है। एक पुत्र विहीन पिता को अपनी पुत्री से पोता प्राप्त हुआ, त्वष्टा, अश्विन की दो समानुरूप पुत्री सरान्यु और संजना, पायरीमिडीन और प्यूरीन क्षार। एक अनुर्द्धेय तरंग द्वारा जुड़े हुए हैं। ये जीवन की प्रथम चिंगारी के साथ सक्रिय होकर सनातन जीवन का यंत्र पात्र है।

जीवन की प्रथम चिंगारी :- जब अंगिरस गाढ़ा द्रव और बृहस्पति कोशा में केन्द्रक उपयुक्त आधार उत्पन्न करते हैं तब सरामा सूक्ष्म ध्वनि को उसकी संतति के लिए मार्ग प्रशस्त होता है। विद्युत एवं पानी जीवन के स्रोत हैं और डीएनए को सरस्वती उत्प्रेरित करती है, और अश्विन न्यूक्लियोटाइड जोड़े के तीन चक्र सक्रिय हो जाते हैं, और प्रथम कोशा अस्तित्व में जो सनातन जीवन का आधार है। इसे यह कह कर अभिव्यक्त

किया गया कि त्वष्टा ने अपनी पुत्री के लिए एक वाहन तैयार किया।

अपागूहन्नमृता मर्त्यैऽभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते॥
उताश्विनावद् यत् तदासीदजादु द्वा मिथुना सरण्यूः॥ 33 ॥

प्रकृति का नियम पुत्र विहीन पिता को पुत्री से पौता प्राप्त हुआ।

मौलिक ऊर्जा का द्विस्वभाव :- मौलिक ऊर्जा अपने द्विस्वभाव ध्वनि और प्रकाश के अंतर्गत क्रियाशील है, जो एक-दूसरे के पूरक और आण्विक स्तर पर जुड़े हुए हैं। इसे परस्पर जुड़े हुए शेर द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

ध्वनि के सात स्वर प्रकाश की सात दृश्य किरणों के समान विपरीत गुणों वाली अनुर्द्धेय तरंगें हैं, जिसका स्पेक्ट्रम प्रकाश के स्पेक्ट्रम के समान ही परन्तु विपरीत गुण वाला है, जो एक-दूसरे के पूरक हैं, यह शब्द, विचार और क्रिया के रूप में विकसित हुए हैं।

जीव का जीवन तीन अविताशी तत्वों के संयोग का परिणाम है, जो जीव को अनुवांशिक रूप में गर्भ में प्राप्त होते हैं। हिग्स फील्ड आकाश, जिससे मूल भूत कणों को भार प्राप्त हुआ, गर्भ में प्राप्त निषेचित डीएनए जिसे फोनोन वेव उत्प्रेरित करती है तथा भोजन की चया-पचय ऊर्जा जो भ्रूण को पोषित करती है, तीनों अविनाशी हैं, जो गर्भ में अनुवांशिक प्राप्त होते हैं।

जीव एक विपरीत स्वभाव वाली स्वर ध्वनि तरंग द्वारा ब्रह्माण्ड से जुड़ा हुआ है, यह तरंग अपने विपरीत अनुर्द्धेय तरंग द्वारा जीव को संचालित और नियंत्रित करती है, इसकी गति दिखाई देती है, रूप नहीं। यह अविनाशी स्वर-शब्द तरंग ब्रह्माण्ड से जीव को धारण कर पोषण करती है। इसे अशोक चिह्न में अश्व और वृषभ के ऊपर प्रकाश तरंग द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

परमाणु में केन्द्रक के मध्य आकाशीय स्थान में उपस्थित मौलिक ऊर्जा सबको बिना किसी आधार के जोड़ती है, यह जीव को विकास के पथ पर अग्रसर करती है। इसकी गति दिखाई देती है रूप नहीं (ऋग्वेद 1-164-44)

गोलाकार आधार पर शेर और हाथी :- शेर मौलिक ऊर्जा का द्योतक है, जो सर्वत्र व्याप्त और सर्वशक्तिशाली है। इसकी छवि अविनाशी शब्द-स्वर तरंग स्थिर है, जो सबको धारण करती है। इसे स्थिर बल, हाथी के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

सृष्टि का विकास एक मौलिक ऊर्जा से हुआ है, जो हाथी के समान स्थिर है। मैं उस अग्नि मौलिक ऊर्जा का आह्वान करता हूँ, जो इस सृष्टि यज्ञ का कर्ता, धर्ता और रत्नों की खान है। (ऋग्वेद 1-1-1)

सृष्टि का आधार अविनाशी सूक्ष्म ध्वनि तरंग है, जो पृथ्वी पर अस्तित्व की पहचान है, जो जीवन के साथ अवतरित होती है, और जीव-अजीव, आकाश और पृथ्वी पर फैल रही है। वह चट्टानों को भी ध्वस्त कर देती है, जब पंच महाभूत अग्नि के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं।

सूर्य के गर्भ से सीधे तेजी से बहने वाले सूक्ष्म फोटॉन कण तथा सूक्ष्म फोनॉन विपरीत स्वभाव के समानान्तर बल है, जो परस्पर टकराते हुए गति करते हैं। विद्युत चुम्बकीय प्रकाश किरणें स्पंदन और ध्वनि के साथ गति करती हैं, जो दो माँ के समान सृष्टि को पोषित करती है।

सृष्टि की उत्पत्ति :- ब्रह्माण्ड और पृथ्वी की उत्पत्ति एक बार एक ही समय हुई और एक ही समय प्रिश्नि का दूध क्षरित हुआ। इसके बाद कोई उत्पन्न नहीं हुआ। जिसे कहा गया कि सृष्टि निर्माण के समय अक्षय अमृत कुम्भ छलका। यह अक्षय अमृत त्वष्टा अविनाशी डीएनए तीन अविनाशी और जीवन की तीन अवस्था के साथ जीव जगत के रूप में फैल रहा है।

एक ही बार ब्रह्माण्ड की संरचना हुई, सिर्फ एक ही बार पृथ्वी अस्तित्व में आई, और एक ही बार प्रिश्नी का दूध क्षरित हुआ, इसके बाद कभी नहीं (ऋग्वेद 6-48-2) यह खगोलीय घटना कि तरफ संकेत है। प्रिश्नि उस गाय का नाम है, जो हर प्रकार का भोजन देती है। यह त्वष्टा अश्विन डीएनए का नाम है, जो तीन अविनाशी और जीवन की तीन अवस्था के साथ जीव जगत का आधार और भोजन स्रोत है। सृष्टि में जीव ही जीव का भोजन है। इसी से जीवों की भोजन श्रृंखला और भोजन जाल का निर्माण हुआ है।

वैदिक काल अश्विन डीएनए के स्रोत और क्रिया विधि की विस्तृत खोज हुई, कि अश्विन डीएनए सृष्टि की प्राग्वस्था में मौलिक ऊर्जा का अंश त्वष्टा देवता अस्तित्व में आए और

अश्विन डीएनए का न्यूक्लियोटाइड क्षार जोड़ा, जिसे प्यूरीन और पायरीमिडीन क्षार कहा जाता है, इन्हें वैदिक मनीषी वैज्ञानिकों ने सराण्यु और संजना नाम दिए, दोनों एक समान हैं, सिर्फ इनमें नायट्योजन का अंतर होता है। ये हवा में विभक्त होते हैं, जैसे काँच में छवि। ये खगोलीय घटना के साथ बंदूक की गोली के समान सूर्य नेबुला से क्षरित हुए और पृथ्वी पर अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण के साथ लसलसे जीवद्रव में प्रथम जीव की उत्पत्ति हुई। अश्विन डीएनए अविनाशी है, इसे अविनाशी ध्वनि तरंग की सूक्ष्मतम इकाई फोनॉन, जिसने सृष्टि की प्राग्वस्था में सुशुप्त मौलक ऊर्जा को क्रियाशील किया, उसी ने जीव द्रव के स्पंदन के साथ सूक्ष्म ध्वनि तरंग ने अश्विन डीएनए क्षार को क्रिया हेतु प्रेरित किया और प्रथम अमीनो एसिड बना 4.6 बिलियन वर्ष पूर्व और प्रथम जीव अस्तित्व में आया।

अश्विन डीएनए, त्वष्टा अश्विन न्युक्लियोटाइड तोडं से प्रतिकृति का संश्लेषण

प्रतिकृति को उन्होंने विवस्वत को पत्नी के रूप में दे दिया द्विस्वभाव डीएनए की पूरक दो सूत्र और यह जीव जगत अस्तित्व में आया।

अश्विन डीएनए के दो क्षार एक दूसरे के पूरक और हवा में त्रिका दुका हाइड्रोजन द्विबंध और हाइड्रोजन त्रिबंध द्वारा स्वतःश्रृंखलाबद्ध विभाजित होते हैं। जिससे एक ही अश्विन डीएनए सर्वत्र जीव जगत में फैल रहा है।

अश्विन डीएनए की समानुपाती विपरीत अनुर्द्धेय तरंग कोशाझिल्ली के संधी स्थल पर इलेक्ट्रॉन के विस्थापन द्वारा अपनी समानुपाती अनुर्द्धेय तरंग में अर्ध घुमाव द्वारा परिवर्तन उत्पन्न करती है और संश्लेषण तथा समय के साथ विघटन होता है।

जोड़े को अविनाशी स्वर तरंग विपरीत अनुर्द्धेय तरंग इलेक्ट्रॉन के विस्थापन द्वारा क्रिया हेतु प्रेरित करती है।

अपागृहन्नमृता मत्यैऽभ्यः कृत्वा सवर्णामधुर्विवस्वते।
उताश्विनावमरूद् यत् तदासीदजादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ 33 ॥

प्यूरीन सराण्यु से एक्स-एक्स मादा डीएनए तथा संजना पायरीमिडीन से एक्स-वाय नर डीएनए बनता है, जिसे कहा गया कि उसने अपने समान प्रतिकृति निर्मित की और उसे पत्नी के रूप में विवस्वत को दे दिया, गर्भ में निषेचन के पश्चात् जो नया डीएनए बनता है वह पित्र डीएनए के समान ही होता है, इस लिए कहा गया कि उसने अपने समान प्रतिकृति निर्मित की तथा नवनिर्मित डीएनए को विवस्वत कहा गया। नवनिर्मित निषेचित डीएनए विवस्वत में माता-पिता दोनों के गुण होते हैं, इसलिए कहा गया कि उसने उसे विवस्वत को पत्नी के रूप में दे दिया। इसे चित्र में दर्शाया गया है -

काल चक्र

स सूर्यः पर्युरु वरांस्येन्द्रो ववृत्यादृथ्येव चक्रा।

शब्द संकेत चक्र के द्वारा यह अभिव्यक्त किया गया कि वह मौलिक ऊर्जा सूर्य आदि को रथ के चक्र के समान चलाता और घुमाता है, इन्द्र विद्युत उसे गति प्रदान करता है। बारह आदित्य आकार हैं, परन्तु चक्र एक है, तीन केन्द्र अकाश, अंतरिक्ष, और पृथ्वी, जिसमें तीन सौ साठ आरे हैं, जो कभी जीर्ण नहीं होते। इस बारह माह और 360 दिनों के चक्र के अंतर्गत सृष्टि कार्य कर रही है, जो कभी जीर्ण नहीं होता। वर्ष में

465 दिन होते हैं, जिसे एक अतिरिक्त माह के रूप में जाना जाता है। इसे चक्र में 24 आरों, 24 पक्ष के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

पुरुष सूक्त में मौलिक ऊर्जा से सृष्टि निर्माण का वर्णन करते हुए अंत में सृष्टि यज्ञ तंत्र के सिद्धान्त बताए गए हैं।

मौलिक ऊर्जा से सृष्टि का निर्माण किस प्रकार होता है, इसे यहाँ संकेतों के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि जब देवो–सृष्टि के आधारभूत कणों ने पुरुष रूप मौलिक ऊर्जा को बाँध लिया, अर्थात् जब सृष्टि के आधारभूत कण इलेक्ट्रान, प्रोटॉन एवं न्यूट्रान की परस्पर क्रिया के द्वारा परमाणु में चुम्बकीय ऊर्जा उत्पन्न हुई, और सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ हुआ, परमाणु में केन्द्रक के मध्य आकाशीय स्थान में उपस्थित मौलिक ऊर्जा सबको बिना किसी आधार के जोड़ती है, यह जीव को विकास के पथ पर अग्रसर करती है। इसकी गति दिखाई देती है रूप नहीं **(ऋग्वेद 1-164-44)**

इस सृष्टि निर्माण में सात ग्रह, इक्कीस प्रकार की समिधा (बारह महिने, छः ऋतुएँ, तीन मौसम सर्दी, गर्मी और बरसात) तथा तीन स्तर आकाश, अंतरिक्ष, और पृथ्वी भाग लेते हैं। अर्थात् सृष्टि का आधार परमाणु, समय तथा मौसम परिवर्तन है।

यज्ञ से यज्ञ की उत्पत्ति होती है, इससे तात्पर्य है कि क्रिया–प्रतिक्रिया से क्रिया प्रकि क्रिया उत्पन्न होती है, इस सृष्टि यज्ञ तंत्र में देव–आधारभूत कण (इलेक्ट्रान, प्रोटॉन एवं न्यूट्रान) प्रथम है। ये अपनी महिमा से सृष्टि के साध्य पदार्थों में परिवर्तित होते हैं, और पुनः अपनी पूर्व की अवस्था में पहुँचते हैं। अर्थात् सृष्टि यज्ञ तंत्र का विकास आधारभूत कणों की क्रिया–प्रतिक्रिया से प्रारम्भ हुआ, जिसमें देव–आधारभूत कण (इलेट्रान, प्रोटॉन एवं न्यूट्रान) पदार्थों का निर्माण करते हैं और विघटन के द्वारा पुनः अपनी पूर्व अवस्था में पहुँचते हैं। अर्थात् जैव–भू गर्भ चक्र के अंतर्गत सृष्टि के कार्य सम्पन्न होते हैं। इसकी तरफ संकेत है। इसे चित्र में चक्र के माध्यम से दर्शाया गया है।

सृष्टि के कार्य चक्रिय अभिक्रियाओं के द्वारा सम्पन्न होते हैं। इसे पुरुष सूक्त में अभिव्यक्त किया गया है। यज्ञ से यज्ञ की उत्पत्ति होती है, क्रिया–प्रतिक्रिया के इस सृष्टि यज्ञ तंत्र में देव आधारभूत कण प्रथम स्थान ग्रहण करते हैं, ये आधारभूत कण देव ही अपनी महिमा से अणु, परमाणु और पदार्थ में परिवर्तित होते हैं और फिर अपनी पूर्व अवस्था में पहुँचते हैं। अर्थात् भू जैव चक्र के अंतर्गत सृष्टि के कार्य सम्पन्न होते हैं।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यज्ञं तन्वाना अवध्यन्पुरुषं पशुम्॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमायासन्।
ते ह नाकं महिमानः सजन्त यत्र पूर्वे, साध्याः सन्ति देवाः।

स्तम्भ मौलिक ऊर्जा, एकेश्वरवाद की जनक :- जिसे अशोक स्तम्भ पर चिह्न में वैदिक वैज्ञानिक ज्ञान को उकेरा गया है। स्तम्भ यह अभिव्यक्त करता है कि हम उस को स्तम्भ के समान धारण करता है। चिह्न में चार शेर आगे पीछे–पीछे यह प्रदर्शित करते हैं कि मौलिक ऊर्जा चारों तरफ सर्वत्र व्याप्त और सर्वशक्तिमान है, पुरुष सूक्त **(ऋग्वेद 10-90)** इसे विश्व में एकेश्वरवाद के रूप में ग्रहण किया गया।

इसे उपनिषदों में ब्रह्म, बाईबल में गॉड परमेश्वर, कुरआन में अल्लाह तथा जेंदा अवेस्ता में अहुरमज्द कहा गया है। इसे ही सृष्टि चक्र के संवत्सर काल के अंतर्गत हो रही चक्रिय क्रियाओं को प्रदर्शित करने के लिए महात्मा गौतम बुद्ध ने उपयोग किया।

जीवन तीन अविनाशी का संगम :- जीव का जीवन तीन अविताशी तत्वों के संयोग का परिणाम है, जो जीव को अनुवांशिक रूप में गर्भ में प्राप्त होते हैं। हिग्स फिल्ड आकाश, जिससे मूलभूत कणों को भार प्राप्त हुआ, गर्भ में प्राप्त निषेचित डीएनए जिसे फोनोन वेव उत्प्रेरित करती है तथा भोजन की चया–पचय ऊर्जा जो भ्रूण को पोषित करती है, तीनों अविनाशी है, जो गर्भ में अनुवांशिक प्राप्त होते हैं।

जीव एक विपरीत स्वभाव वाली स्वर ध्वनि तरंग द्वारा ब्रह्माण्ड से जुड़ा हुआ है, यह तरंग अपने विपरीत अनुर्द्धेय तरंग द्वारा जीव को संचालित और नियंत्रित करती है, इसकी गति दिखाई देती है, रूप नहीं। यह अविनाशी स्वर–शब्द तरंग ब्रह्माण्ड से जीव को धारण कर पोषण करती है, इसे अशोक चिह्न में अश्व और वृषभ के ऊपर प्रकाश तरंग द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

प्रोफेसर और पूर्वप्राचार्य, एम.जे.एस कॉलेज,
भिंड, एवं वैदिक अनुसंधान संस्थान,
रतलाम, इंदौर-452001 (म.प्र.)
मो.-9425456518

भारतीय राज्य को शुद्ध भारतीय मूल्यों में संस्कारित करने वाले राष्ट्र-उन्नायक

– शिवदयाल

जन्म – 1 जनवरी 1960।
जन्म स्थान – काठमांडू।
शिक्षा – एम.ए।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।

भारत कोकिला सरोजिनी नायडू ने डॉ. राजेंद्र प्रसाद के संविधान सभा का अध्यक्ष निर्वाचित होने पर 11 दिसंबर 1946 को संविधान सभा में उनकी प्रशंसा में कहा था–'राजेन बाबू के चरित्र एवं गुणों का बखान करने के लिए सोने की कलम चाहिए जिसकी निब मधु में डुबोई हुई हो।' इसी अवसर पर राजेंद्र बाबू को समर्पित अभिनंदन भाषण के प्रथम वक्ता दार्शनिक एवं शिक्षक डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने उद्गार इन शब्दों में व्यक्त किया–'यह आकस्मिक संयोग नहीं कि हमारे अस्थाई अध्यक्ष डॉक्टर सच्चिदानंद सिन्हा तथा स्थाई अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद दोनों बिहार से हैं। वे बिहार की भावना से संस्कारित हैं, सदाशयता की दुर्जेयता–भारत का ईश संदेश! महाभारत में कहा गया है कि सदाशयता, मृदुलता कठोरतम तथा कोमलतम वस्तुओं से भी पार पा सकती है। कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे सदाशयता से जीता न जा सके, इसलिए यही हमारा सबसे क्षिप्र अस्त्र है। कोमलता, सदाशयता ही वह सबसे बड़ा हथियार है जो भारी से भारी विरोध का भी शमन कर सकता है। हम इसके प्रति सच्चे नहीं रहे हैं। हमने अपने ही लाखों-करोड़ों लोगों के साथ छल किया, उनके साथ बुरा किया। आज का यह अवसर है कि हम अतीत के अपने समस्त अपराधों का प्रायश्चित करें। डॉ. राजेंद्र प्रसाद इसी सदाशयता की साकार प्रतिमा हैं। वह अच्छाई की आत्मा हैं। उनमें अपार धीरज और साहस है–उन्होंने बहुत सहा है। मुझे विश्वास है कि मेलजोल, सामंजस्य और सौहार्द की वह भावधारा जो सिंधु घाटी की शिव प्रतिमा से आरंभ होकर महात्मा गाँधी और डॉ. राजेंद्र प्रसाद तक पहुँची है, वह हमारे प्रयत्नों एवं पुरुषार्थ को अभिप्रेरित करेगी।'

इस प्रसंग में यह जानना भी जरूरी है कि 11 दिसंबर 1946 को अस्थाई अध्यक्ष डॉक्टर सच्चिदानंद सिन्हा के समक्ष स्थाई अध्यक्ष पद के लिए चार नाम/प्रस्ताव आए। पहले प्रस्तावक थे आचार्य जे. बी. कृपलानी जिनका समर्थन सरदार पटेल ने किया था। दूसरे प्रस्तावक थे हरेकृष्ण महताब और समर्थक नंदकिशोर दास। तीसरे प्रस्तावक डॉक्टर प्रकाशम थे जो समय से अपना प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं कर सके, और चौथे प्रस्तावक स्वयं डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन थे। यह अत्यंत विरल घटना थी, और आज भी है, कि इन चारों प्रस्तावकों ने एक ही नाम प्रस्तावित किया था–डॉ. राजेंद्र प्रसाद। इस प्रकार डॉ. राजेंद्र प्रसाद सर्वसम्मति से संविधान सभा के स्थाई अध्यक्ष चुने गए जिनके नेतृत्व में दुनिया का सबसे बड़ा संविधान बना। आगे 1950 में अंतरिम राष्ट्रपति और 1952 में प्रथम विधिवत निर्वाचित राष्ट्रपति बने, और 1957 में दूसरे कार्यकाल के लिए पुनः राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। लेकिन इन तीनों अवसरों पर राजेन बाबू के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई लड़ने वाले, अग्रिम पंक्ति के नेता और प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू उनके साथ नहीं थे, बल्कि विरोध में थे।

यह तो रही कुछ प्रमुख साथियों-सहकर्मियों की बात। महात्मा गाँधी राजेन बाबू को अपना परम विश्वस्त सहयोगी मानते थे। एक बार उन्होंने कहा था कि राजेन बाबू उनके कहने पर विष पी जाने में भी शायद न हिचकिचाएँ। तो उनके नेता उनके बारे में ऐसी राय रखते थे, उन पर अगाध विश्वास करते थे। यहीं राजेन बाबू के बारे में उनके अमेरिकी समकक्ष, राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी की उनके बारे में व्यक्त की गई राय को प्रस्तुत करना भी प्रासंगिक होगा–'भारत के बाहर डॉक्टर प्रसाद स्वभावतः ही भारतीय गणराज्य के राष्ट्रपति के रूप में अपनी सुदीर्घ सेवा के लिए ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इस पद को महान गौरव और वैशिष्ट्य से मंडित करने के उपरांत 1962 में अवकाश ग्रहण किया। भारत की भाँति अन्यत्र यह बात सर्वदा नहीं जानी जाती कि डॉ. प्रसाद के गुणों ने सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में ही

नहीं, अपितु कानून, साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में भी अभिव्यक्ति पाई थी। इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने असाधारण उपलब्धियों के कीर्तिमान स्थापित किए हैं।'

उपरोक्त प्रसंग और उदाहरण से डॉ. राजेंद्र प्रसाद के व्यक्तित्व की विराटता का अनुमान लगाया जा सकता है। वे बिहार के थे और बिहार, बल्कि भारत के प्राचीन गौरव की याद दिलाते थे। स्वयं एक आम बिहारी उन्हें किस दृष्टि से देखता था, यह हिंदी भाषा के मूर्धन्य मनीषी आचार्य शिवपूजन सहाय के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है 'बाबू हम बिहारियों के गृह देवता हैं।' इससे बड़ी बात किसी व्यक्ति के लिए शायद ही कभी कही गई हो।

आमतौर पर लोगों की धारणा रही है कि राजेंद्र बाबू 1917 में गाँधी जी के संसर्ग में आए और चंपारण सत्याग्रह से ही उनके सार्वजनिक जीवन की शुरुआत हुई। यह बात सही नहीं है। लगभग छः दशकों का उनका सार्वजनिक जीवन रहा, लेकिन राजेन बाबू इस मायने में भी विलक्षण थे कि कमसिन उम्र में ही केवल अपनी मेधा के बल पर उन्हें राष्ट्रव्यापी (उपमहाद्वीपव्यापी) ख्याति मिली। और छात्र जीवन में ही उनके सार्वजनिक जीवन की नींव पड़ चुकी थी। 1902 में कोलकाता में सतीश चंद्र मुखर्जी के 'डॉन सोसाइटी' के सदस्य बन गए थे, और 1906 के कोलकाता कांग्रेस में उन्होंने एक स्वयंसेवक के रूप में भाग लिया था। वे कॉलेज यूनियन के सचिव भी चुने गए थे। यही नहीं, उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज के साथियों के साथ मिलकर कोलकाता में 'बिहार क्लब' की स्थापना की थी। 1906 में पटना में बंगाल के बँटवारे(1905) के विरोध में पहला छात्र सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसमें उन्होंने स्वदेशी आंदोलन का पूर्ण समर्थन किया था। बाद के वर्षों में इस सम्मेलन की अध्यक्षता डॉक्टर सच्चिदानंद सिन्हा, परमेश्वर लाल, दीप नारायण सिंह, मजहरूल हक, सरफुद्दीन, हसन इमाम से लेकर महात्मा गाँधी, एनी बेसेंट और सरोजिनी नायडू जैसी हस्तियों ने की थी।

वास्तव में 1917 में गाँधी जी से हुई भेंट के पहले 1916 में ही वे बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सहायक सचिव नियुक्त हुए थे और बाद में कई वर्षों तक संगठन में अपनी सेवाएँ दीं। तो गाँधी जी का सहयोगी और 'अनुयायी' बनने के पहले से ही राजेंद्र प्रसाद एक 'कांग्रेस जन' थे। यह बात जरूर है कि चंपारण सत्याग्रह ने उनके जीवन की दिशा बदल दी। 1918 में वे गाँधी जी के नेतृत्व में ही गुजरात के खेड़ा सत्याग्रह में शामिल हुए जहाँ उनकी भेंट जीवनपर्यंत साथी और सहयोगी बने रहे सरदार वल्लभभाई पटेल से हुई। अब तक एक अत्यंत सफल वकील के सुविधाजनक जीवन और उसकी विलासिता को वे पूर्णतया त्याग चुके थे, और अपने को पूरी तरह राष्ट्रीय आंदोलन को समर्पित कर दिया था।

यहाँ यह बात भी लोगों को अवश्य विस्मित कर सकती है कि अपने समय के दो सबसे बड़े व्यक्तित्वों ने स्वयं डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद से मिलने की पहल की थी। पहले व्यक्ति थे गोपाल कृष्ण गोखले जिन्हें गाँधी जी अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। वे राजेंद्र प्रसाद जैसे कुशाग्र और मेधावी युवा को अपनी 'सर्वेंट आफ इंडिया सोसाइटी' (भारत सेवक समाज) से जोड़ना चाहते थे। अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों एवं पढ़ाई-लिखाई के दबाव में राजेंद्र बाबू ने विनम्रतापूर्वक इस संगठन से जुड़ने में अपनी असमर्थता जताई थी। दूसरे व्यक्ति स्वयं गाँधी जी थे जो 1917 के अप्रैल में चंपारण जाने के क्रम में पहले पटना पहुँचकर सीधे राजेन बाबू के आवास पर ही पहुँचे थे, जबकि उन दोनों में तब तक कोई औपचारिक परिचय भी नहीं था। इन बातों से तब के युवा डॉ. राजेंद्र प्रसाद की हैसियत का अंदाजा लगाया जा सकता है।

आगे, संक्षेप में, राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में उनकी भूमिका बढ़ती चली गई। वे बिहार के सर्वप्रमुख नेता बन गए। अप्रैल 1919 में रॉलेट एक्ट के विरोध में हुए आंदोलन का उन्होंने नेतृत्व किया। जलियाँवाला बाग के भीषण नरसंहार के बाद देश भर में क्षोभ और रोष की लहर थी। 1919-21 के दौरान रॉलेट ऐक्ट के विरोध के अलावा गाँधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन में राजेंद्र बाबू की अग्रणी भूमिका रही। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय के सीनेट और सिंडिकेट से त्यागपत्र दे दिया और पटना में एक राष्ट्रीय कॉलेज की स्थापना की। उन्होंने बिहार विद्यापीठ की स्थापना की और स्वयं गाँधी जी ने इन दोनों संस्थाओं का उद्घाटन किया। उन्होंने आगे नमक सत्याग्रह में भी भाग लिया और बिहार लौटकर सविनय अवज्ञा आंदोलन की बागडोर सँभाली जो दो चरणों में चला। इसी दौरान एक सच्चे लोक सेवक की भूमिका में उतरने और जिम्मेदारी सँभालने का उन्हें अवसर मिला 1934 में। हाँ, तब तक वे 1927 में श्रीलंका तथा 1928 में यूरोप की यात्रा कर आए थे। ग्रैट्ज, वियना में युद्ध-विरोधी कार्यक्रम में भाग लेने के दौरान उन पर आक्रमण भी हुआ था और वे घायल हो गए थे।

15 जनवरी 1934 को बिहार में एक विनाशकारी भूकंप आया

जिसमें हजारों लोगों की जान चली गई और व्यापक पैमाने पर संपत्ति की क्षति हुई, लोगों के घर उजड़ गए। वे उस समय पटना के बांकीपुर जेल से पीएमसीमच इलाज के लिए आए थे। अंग्रेज सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया, राहत कार्यों में उनका सहयोग लेने की खातिर। इतने बड़े पैमाने पर राहत कार्य चलाना और लोगों के पुनर्वास की व्यवस्था करना अकेले अंग्रेज सरकार के बूते के बाहर की बात थी। राजेन बाबू ने बिहार रिलीफ कमिटी का गठन किया और पूरे कांग्रेस संगठन समेत तमाम नौजवानों और आम लोगों को भूकंप पीड़ितों की सेवा में लगा दिया। इस कार्य में उनके सहयोगी बने युवा जयप्रकाश नारायण। स्वयं अस्वस्थ होकर भी राजेन बाबू दिन-रात राहत कार्य का संचालन और देखरेख करते रहे। इस विपदा के दौरान उन्होंने अदम्य साहस, समर्पण और चरित्र का अतुलनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। राहत कार्यों पर हुए पूरे खर्च का उन्होंने ऑडिट करवाया जो कि एक करोड़ चौंतीस लाख रुपए का आया था। विस्मित करने वाली बात थी कि केवल एक रसीद नहीं मिली तेरह आने की। अगले ही वर्ष 1935 में क्वेटा में भूकंप आया तो राजेन बाबू ने वहाँ भी सघन राहत कार्य चलाया।

1934 में राजेन बाबू को विपदा की स्थिति में प्रदर्शित किए गए साहस, संगठन कौशल, और समर्पण के कारण देश भर में अपूर्व सराहना और श्रद्धा प्राप्त हुई। उन्हें इस वर्ष कांग्रेस का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। बाद में 1939 में नेताजी सुभाष चंद्र बोस के त्रिपुरा कांग्रेस में सभापति चुने जाने और बाद में त्यागपत्र दे दिए जाने के बाद विकट स्थिति में राजेंद्र बाबू को दूसरी बार कांग्रेस अध्यक्ष बनाया गया। तीसरी बार वे कांग्रेस के अध्यक्ष तब निर्वाचित हुए जब नवंबर 1947 में कांग्रेस अध्यक्ष पद से आचार्य जे.बी. कृपलानी ने पार्टी अध्यक्ष के अधिकारों और भूमिका पर नेहरू जी से मतभेद होने पर इस्तीफा दे दिया। उल्लेखनीय है कि इन अवसरों पर राजेंद्र बाबू संकटमोचक की भूमिका में अवतरित हुए थे। तीसरी बार अध्यक्ष बनने के समय वे पहले से ही संविधान सभा के अध्यक्ष होने के अतिरिक्त अंतरिम सरकार में खाद्य मंत्री का पदभार भी सँभाले हुए थे। 27 नवंबर 1949 को संविधान सभा की अंतिम बैठक में उनका अध्यक्षीय वक्तव्य हर दृष्टि से ऐतिहासिक और अपूर्व था जिसमें उन्होंने भारत के प्राचीन गौरव, उसकी महान संस्कृति और जीवन मूल्यों का बखान तो किया ही, उसकी अशक्तताओं की भी चर्चा की और बड़े बलिदानों के बाद मिली स्वतंत्रता को बचाए रखने, आम भारतीय को उसका वास्तविक अनुभव कराने और नव-भारत को प्रगति और समृद्धि के पद पर सामूहिक प्रयत्नों एवं पराक्रम से आगे ले चलने का आह्वान भी किया।

1950 से लेकर 1962 तक राजेन बाबू भारत के राष्ट्राध्यक्ष रहे। 1952 से लेकर 1962 तक प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति। इस लंबे कार्यकाल के दौरान कुछ मुद्दों पर प्रधानमंत्री नेहरू के साथ उनके मतभेद रहे। उनको लेकर राजेन बाबू पर ही सवाल उठाए गए, और उनकी उदार और विराट छवि को मलिन करने की कोशिशें होती रहीं। प्रगतिशील और रेडिकल समूहों में उन्हें संकीर्ण और पुनरुत्थानवादी तक कहा गया। उनका पक्ष जानने-समझने और सामने लाने की कोशिश ऐसे तत्वों द्वारा तो क्या तटस्थ लोगों ने भी शायद ही की। यहाँ उन प्रसंगों और मुद्दों की संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

1950 में अंतरिम राष्ट्रपति नेहरू जी तब के गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को बनाना चाहते थे जबकि कांग्रेस जनों का बड़ा बहुमत राजेन बाबू के पक्ष में था। नेहरू जी ने ऐसा संदेश प्रसारित करवाया कि राजेंद्र बाबू इस पद के इच्छुक या उम्मीदवार नहीं हैं। राजेन बाबू ने पत्र लिखकर नेहरू जी के इस व्यवहार पर आपत्ति जताई। सरदार पटेल भी इस प्रकरण में शामिल थे। आखिरकार कांग्रेस जनों के भारी दबाव के आगे नेहरू जी को झुकना पड़ा।

1950 के 15 दिसंबर को सरदार पटेल की मृत्यु हो गई। अंत्येष्टि में भाग लेने के लिए नेहरू जी के मना करने के बावजूद राजेन बाबू यह कहकर मुंबई गए कि अपने इतने पुराने साथी और एक महान स्वतंत्रता सेनानी के प्रति अंतिम सम्मान प्रकट प्रकट करना राष्ट्रपति के रूप में भी वह अपना दायित्व समझते हैं।

1951 का वर्ष प्रसाद और नेहरू संबंधों के लिए बहुत विषम रहा। पहले राजेंद्र प्रसाद ने एक निर्वाचित राष्ट्रपति के अधिकारों को लेकर प्रधानमंत्री से पत्र-व्यवहार किया। उनका तर्क था कि भारत के राष्ट्रपति की स्थिति वही नहीं हो सकती जो ब्रिटेन में राजा की है, कारण कि भारत के राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है, उसके कर्तव्य और अधिकार निर्धारित हैं। गलती करने पर उसे दंडित भी किया जा सकता है, उसके लिए महाभियोग का प्रावधान है। ऐसी स्थिति ब्रिटेन के राजा की नहीं है, इसलिए वह पूरी तरह अधिकारविहीन है और एक प्रतीक मात्र की उसकी हैसियत है। भारत के निर्वाचित राष्ट्राध्यक्ष को पूरी तरह

अधिकारविहीन नहीं बनाया जा सकता, यह राजेन बाबू का मत था जिसे संवैधानिक स्थिति का हवाला देकर खारिज कर दिया गया।

1951 में ही गंभीर मतभेद की स्थिति तब हुई जब नेहरू जी हिंदू धर्म-आस्था में सुधार लाने, उसे प्रगतिशील बनाने के लिए हिंदू कोड बिल ले आए। इस विषय पर राष्ट्रपति ने यह निर्णय लिया कि भारत की बहुसंख्यक जनता की प्राचीन काल से व्याप्त धार्मिक आस्था में परिवर्तन का अधिकार किसी विधिवत निर्वाचित सरकार को ही हो सकता है। ध्यातव्य है कि उस समय तक प्रथम आम चुनाव नहीं हुए थे और अंतरिम सरकार काम कर रही थी। परिणामस्वरूप राजेंद्र बाबू के दृढ़ रवैये और अकाट्य तर्क के आगे सरकार को झुकना पड़ा।

इसी वर्ष 1951 में प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार के बाद प्राण-प्रतिष्ठा समारोह में राष्ट्रपति ने जाना तय किया था। उनके इस निर्णय का नेहरू जी और उनके सहयोगियों, वामपंथियों, समाजवादियों ने घोर विरोध किया। लेकिन इस मुद्दे पर राजेन बाबू अपने निर्णय पर अटल रहे। वे गए और वहाँ जो कुछ कहा उसे सरकारी माध्यमों में नहीं जाने दिया गया, केवल पत्र-पत्रिकाओं में ही उसे स्थान मिला। उन्होंने कहा- 'हमें यह पुनीत अवसर देखने का सौभाग्य इसलिए प्राप्त हुआ है कि जिस प्रकार भगवान विष्णु के नाभि-कमल में ब्रह्मा वास करते हैं, उसी प्रकार मानव के हृदय में सर्जनात्मक शक्ति और श्रद्धा सर्वदा वास करती है, और वह सब शस्त्रास्त्रों से, सब सेनाओं से और सम्राटों से अधिक शक्तिशाली होती है। सोमनाथ का यह मंदिर आज फिर अपना मस्तक ऊँचा करके संसार के सामने यह घोषित कर रहा है कि जिसे जनता प्यार करती है, जिसके लिए जनता के हृदय में अक्षय श्रद्धा और स्नेह है, उसे संसार में कोई भी मिटा नहीं सकता। आज इस मंदिर की प्राण-प्रतिष्ठा पुनः हो रही है, और जब तक इसका आधार जनता के हृदय में बना रहेगा, तब तक यह मंदिर अमर रहेगा। धार्मिक असहिष्णुता से विद्वेष और अनाचार बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई फल नहीं होता है-यही इतिहास की शिक्षा है और इसको हम सबको गाँठ बाँध रखना चाहिए।'

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि अनेक देशों के आमंत्रण के बावजूद राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद को यूरोप और अमेरिका के दौरे करने को नहीं मिले। 1956 में वे नेपाल गए, 1958 में उन्होंने जापान, इंडोनेशिया और मलाया की सरकारी यात्राएँ कीं। 1959 में वे कंबोडिया, वियतनाम, लाओस और श्रीलंका गए। 1960 में उन्होंने रूस की यात्रा की और उनका वहाँ की सरकार और लोगों ने अभूतपूर्व स्वागत किया। वहाँ से लौटकर उन्होंने भारत सरकार को रूस की भाषा के प्रश्न को सुलझाने तथा कृषि व्यवस्था को समुन्नत बनाने की दिशा में प्राप्त उपलब्धियों के आधार पर कुछ जरूरी सुझाव भेजे जिनका कोई नतीजा नहीं मिला, न ही कोई जवाब प्राप्त हुआ।

28 नवंबर 1960 को सेंट्रल लॉ इंस्टीट्यूट के उद्घाटन समारोह में राजेन बाबू ने विधिवेत्ताओं को भारत के संविधान का सम्यक अध्ययन और इससे जुड़े प्रासंगिक विषयों पर शोध करने की सलाह देते हुए इस बात पर विचार करने को कहा कि भारत के निर्वाचित राष्ट्रपति के कतिपय वास्तविक अधिकार क्यों नहीं होने चाहिए? उसकी स्थिति को इंग्लैंड के वंशानुगत शासन वाले राजा की स्थिति के समक्ष कैसे रखा जा सकता है? उस अवसर पर प्रधानमंत्री राष्ट्रपति के स्वागत को स्वयं उपस्थित थे। राष्ट्रपति के भाषण का कोई अंश न तो सरकारी और न ही गैर सरकारी जन माध्यमों में प्रकाशित-प्रसारित किया गया। यह हमारे महान लोकतंत्रवादी प्रधानमंत्री के समक्ष उनकी उपस्थिति में हुआ।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद महात्मा गाँधी के बाद कांग्रेस के चोटी के तीन नेताओं (नेहरू, पटेल और प्रसाद) में से एक थे। एक महान राजनेता होने के अतिरिक्त वे एक अत्यंत प्रखर लेखक और संस्कृति-चिंतक थे, विधिवेत्ता तो वह आला दर्जे के थे ही। राष्ट्रपति कैनेडी ने उनके इन गुणों की चर्चा यूँ ही नहीं की। भाषा, साहित्य और संस्कृति पर उनका चिंतन अपने समकालीनों से कहीं बहुत ऊँचे और उदात्त स्तर का था। उन्होंने इन प्रश्नों पर जितनी गहनता और गहराई से विचार किया, वह एक राजनेता के लिए आश्चर्यजनक है। वास्तव में वह एक भाषाशास्त्री, शिक्षाशास्त्री, संस्कृत-चिंतक राजनेता थे। भाषा का प्रश्न उनके लिए अत्यंत महत्व का रहा शुरू से ही। इस मामले में वह अपने समकालीनों से बिल्कुल अलग दिखाई देते हैं। वे स्वयं हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, गुजराती, बांग्ला और तमिल भाषाएँ भी जानते थे। बहुभाषिकता को वह वरदान मानते थे। 'साहित्य, शिक्षा और संस्कृति' पुस्तक उनके उच्च संस्कृति-चिंतन का ठोस प्रमाण है। उनका मानना था कि जो समाज अपनी भाषा खो देता है, वह अपनी संस्कृति और अपने पूर्ण स्वत्व से भी हाथ धो बैठता है। वे अंध-पश्चिमीकरण के विरुद्ध

थे और अपनी जमीन से गहरे जुड़े थे। आरंभ से ही, 1929 से ही उनका हिंदी प्रचारक संस्थाओं से जुड़ाव बना जो अंत तक बना रहा। वे अनेक बार हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति मनोनीत हुए। वे मानते थे कि भाषा ही स्वराज का माध्यम है, स्वभाषा से ही स्वराज की प्राप्ति हो सकती है। वे हिंदी को राष्ट्रभाषा की अधिकारिणी इसलिए मानते थे कि इसमें अंतर-प्रांतीय संवाद संभव था। हिंदी ही समूचे राष्ट्र में संवाद स्थापित करने वाली भाषा थी। हिंदी संस्थाओं से उनकी दो अपेक्षाएँ थीं-पहली, हिंदी भाषा का बहुविध प्रचार-प्रसार, और दूसरी, हिंदी में उच्च कोटि के साहित्य के निर्माण को प्रोत्साहन। उन्हें यह अफसोस रहा कि वह भारत का संविधान किसी भारतीय भाषा में नहीं बनवा सके।

साहित्य की राजनीतिक भूमिका, साहित्य के उत्थान और राष्ट्र के उत्थान में अन्योन्याश्रय संबंध पर भी वह गहन चिंतन करते हैं और संसार के अन्य देशों के इतिहास के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। भाषा के प्रश्न पर उन्होंने अपनी विख्यात पुस्तक 'इंडिया डिवाइडेड' में भी विचार किया है। इसमें उन्होंने धर्म को नहीं बल्कि भाषा को राष्ट्रीयता का प्रमुख आधार माना है। आगे चलकर आखिर भाषा के सवाल पर ही पाकिस्तान भी खंडित हुआ, बंगालियों ने बांग्लादेश का निर्माण कर लिया। डॉ. राजेंद्र प्रसाद का इतिहास-बोध चकित करता है। उनका भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र का ज्ञान भी विस्मय में डालता है। छः सौ पृष्ठों की 'इंडिया डिवाइडेड' (1946) उनके ज्ञान की व्यापकता और अंतर्दृष्टियुक्त मीमांसा-शक्ति का प्रमाण है। भारतीय समाज, इसके इतिहास, मूल्यबोध और परंपराओं के साथ ही समकालीन वैश्विक परिस्थितियों की गहरी समझ से पाठक चमत्कृत होता है। उन्होंने भारत की सांप्रदायिक समस्या का गहराई में विश्लेषण करके भारत विभाजन की व्यवहार्यता को प्रश्नांकित किया है, उसकी व्यर्थता पर प्रकाश डाला है। उन्होंने पूरे बल के साथ द्विराष्ट्र के सिद्धांत को अस्वीकार किया है। इस उपक्रम में उन्होंने 1931 और 1941 की जनगणना के आँकड़ों का भी विश्लेषण किया है। पाकिस्तान निर्माण की कुल छः स्कीमों से जुड़ी सैद्धांतिकी का उन्होंने पूर्ण खंडन किया है। इस विषय पर इतनी गहनता से शायद ही कहीं और विचार किया गया हो। यह एक जरूर पढ़ी जाने वाली किताब है। यहाँ यह तथ्य रेखांकित करने योग्य है कि डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद स्वयं एक ऐसा एकीकृत, एकबद्ध सेकुलर भारतीय राज्य की आकांक्षा करते थे जिसमें विभिन्न समुदायों को सांस्कृतिक स्वायत्तता प्राप्त हो।

डॉ. राजेंद्र प्रसाद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गहरी दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट होता है कि वह भारतीय राज्य और समाज के विऔपनिवेशिकीकरण की जरूरत को सबसे अधिक और तीव्रता से महसूस करने वाले राजनेता थे। उनका भाषा-चिंतन और शैक्षिक विमर्श भारत में सच्चे स्वराज की स्थापना को प्रेरित और लक्षित है। वे यह बात गहराई से समझते थे कि भारतीय गाँवों में अभी प्राचीन भारत के गौरव के कुछ चिह्न मौजूद हैं, कि इस महादेश की संस्कृति और विराट मानव जीवन-व्यापार को विग्रह-दृष्टि और निरुद्ध भाव से नहीं देखा-समझा जा सकता। 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में उनके शब्द थे-' अपने विश्वविद्यालयों को पुनः संगठित करते समय हम भारत के प्राचीन महाविद्यालयों की उज्ज्वल परंपरा और आदर्श को न भूलें। अंग्रेजों ने हमारी शिक्षा पद्धति अभारतीय बना दी है। स्वतंत्र भारत की शिक्षा हमारे देश की प्राचीन संस्कृति के अनुरूप होनी चाहिए। उसकी जड़ इस भूमि में हो न कि विदेश की संस्कृति में। इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य देशों से हमें कुछ सीखना ही नहीं है। हमें गुणग्राहकता का पाठ तो सीखना है और सिखाना है। अपनी इस कल्पना को साकार करने के लिए 1951 में उन्होंने प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय को पुनर्जीवित करने के लिए 'नव नालंदा महाविहार' की आधारशिला रखी और इसे भविष्य के पूरे एशिया के ज्ञान-केंद्र के रूप में देखा।

1934 में ही डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद को 'हिमालय' में 'देशरत्न' से अभिहित किया गया था। 1934 में ही गदाधर प्रसाद अम्बष्ट ने उन पर पुस्तक लिखी थी 6 देशपूज्य श्री राजेंद्र प्रसाद'(बिहार हिन्दी मंदिर, पटना 1934)। वे सचमुच अनमोल रतन थे राष्ट्र के-देशरत्न। भारतीय लोक चेतना के वास्तविक प्रतिनिधि, भारतीय राष्ट्र के धीरोदात्त नायक, राष्ट्र पुरुष! लोकतांत्रिक राज्य-व्यवस्था को दृढ़ बनाने और संरक्षित करनेवाले, प्राचीन और अर्वाचीन को एक साथ साधने वाले, भारतीय राज्य को शुद्ध भारतीय मूल्यों में संस्कारित करने वाले राष्ट्र-उन्नायक!

305, शांति सुनयना अपार्टमेंट,
अभियंता नगर,
पटना-801503 (बिहार)
मो.-9835263930

भक्ति और प्रेम का उदात्त संस्कार

– कृष्ण बिहारी पाठक

जन्म – 16 अगस्त 1984।
जन्मस्थान – करौली (राज.)
रचनाएँ – दो पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – हिंदी प्रज्ञा सम्मान सहित अनेक सम्मान।

गोस्वामी तुलसीदास जी की रामभक्ति और रामानुराग के संदर्भों में दास्य भक्ति और दासानुदास भक्ति के साथ उनकी अनन्यता और एकनिष्ठता के लिए चातक प्रेम का आदर्श भी अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। तुलसी–राम के संबंधों और संबद्धता को रूपायित करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने चातक–मेघ की संबद्धता और संबंधों को ही सामने रखा है। चातक मेघ में निहित विहित भक्ति–प्रेम के उदात्त संस्कारों को तुलसी अपने लिये सर्वोपयुक्त और सर्वश्रेष्ठ मानकर चले हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी भक्ति पद्धति और उसके आदर्श का संकेत कमोबेश अपनी सभी कृतियों में किया है परंतु दासानुदास भक्ति का जैसा विस्तार विनय पत्रिका में और चातक प्रेम के आदर्श का जैसा अनुष्ठान दोहावली में किया है वह अन्यत्र उतना उदात्त और सर्वांगपूर्ण नहीं है।

दोहावली का चातक प्रसंग तो जैसे तुलसी के राम के प्रति प्रेम, एकनिष्ठता और अनन्यता की सैद्धांतिकी है। तुलसी बारंबार चातक–मेघ की पारस्परिकता को बहुत सूक्ष्मता से लक्ष्य करते हैं, अनन्य एकनिष्ठता की उच्चता पर मुग्ध होते हैं और उसी के अनुकरण का उपक्रम करते हैं।

प्रेमी और प्रिय की पारस्परिकता, एकनिष्ठता और अनन्यता का यह प्रतिमान अद्वितीय है। वीरता, धीरता, करुणा, प्रेम आदि के उत्कर्ष प्रकर्ष पर मुग्ध होना, उन पर श्रद्धा और आदर दिखाना और बात है तथा उनका अनुकरण–निर्वहन करना और। तुलसी अपनी गति–मति में निर्वहन की ओर बढ़े हैं और इसीलिए कवि कुल शिरोमणि तुलसीदास मूर्धाभिषिक्त हैं और काव्य लोकमानस का कंठहार।

चातक का मेघ लोकसुखदायी है, तुलसी के राम भी लोकमंगलकारी हैं। चातक तो मेघ का हो चुका, अब चाहे मेघ उस पर गरजे या बरसे, कोप करे या कृपा करे, उसे तो मेघ की हर अदा में उसकी अमोघ रागात्मकता का ही दिग्दर्शन होता है। मेघ के रोष में भी उसे दोष नहीं दिखाई देता। जिसके बिना संपूर्ण जीवन धारा ही खंडित होती जान पड़े, उसके दोषों का ध्यान कैसा? चातक को अपने ऊपर रोष करते मेघ के इस दोष पर भी कोई क्रोध नहीं आता कि उसे मेघ में दोष ही नहीं दिखता तो फिर उसके प्रति क्रोध कैसा –

'चढ़त न चातक चित कबहूँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख।। (दो. 281)
पबि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि।' (दो. 284)

मेघ अपने आवेग में वज्र गिराता है, दामिनी की गर्जना–तर्जना करता है। वह पत्थर सम ओले बरसाए, भयंकर बिजली चमकाए, गरजे, कड़कड़ाती आवाज के साथ वर्षा की झड़ी लगाए, आँधी के झकोरों से भारी रोष दिखाए, फिर भी चातक को अपने प्रिय मेघ का यह दोष देखकर रोष नहीं होता बल्कि इसे भी वह अपने प्रति मेघ का अनुराग मानकर और रीझता जाता है।

अपनी भक्ति पद्धति में चातक का अनुकरण करते तुलसी चातक से भी दो कदम आगे निकल गए हैं। चातक जहाँ मेघ के दोष देखकर रोष नहीं करता वहीं तुलसी को तो राम में दोषदर्शन की संभावना ही नहीं बनती। एक उदाहरण से बात स्पष्ट होगी। सेतु प्रसंग पर लिखी गई दिनकर की पंक्तियों को और रामचरित मानस के सेतु प्रसंग को एक साथ देखें।

दिनकर ने यह लिखकर कि 'तीन दिवस तक पंथ माँगते रघुपति सिंधु किनारे, बैठे पढ़ते रहे छंद अनुनय के प्यारे प्यारे' सायास – अनायास ही श्री राम को 'माँगते' से याचक और 'बैठे पढ़ते रहे' से आलस्य की भूमिका में ला खड़ा किया है वहीं तुलसी ने इस प्रसंग में राम को पूर्णत: निर्मल–निर्दोष दिखाया है। तुलसी दोष देखते हैं, पर राम में नहीं समुद्र में जो उनके राम को रास्ता नहीं दे रहा है। जड़ तो वह समुद्र है जो राम के प्रेम और मनुहार की

अवज्ञा कर रहा है। दोष दिखता है उन तीन दिनों में जो राम के काम न आ सके, उनका काम किए बिना ही बीत गए –

'बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥'

कहने की आवश्यकता नहीं कि चातक का आदर्श कितनी गहराई के साथ तुलसी के विचार संस्कार में रचा बसा है। दिनकर के कहन में जहाँ राम का माँगना और बैठे रहना केंद्र में आ गया है वहीं समान प्रसंग और समान परिस्थितियों में तुलसी का सारा रोष समुद्र की जड़ता पर और उन तीन दिनों की निष्फल अकर्मण्यता पर उतरा है।

तुलसी की भक्ति पद्धति आराध्य की निर्दोषात्मकता के प्रति इतनी आश्वस्त है कि भक्त स्वयं तो दोष की कल्पना से दूर ही रहता है परंतु यदि कोई अपर दोषारोपण करने आगे भी आए तो वह निश्छलता से 'छुअत टूट रघुपतिहि न दोषू' कहकर आरोपण का भी परिहार कर देता है।

तुलसी की अनन्यता और एकनिष्ठता की भूमि भी चातक के आदर्श पर प्रतिष्ठित हुई है। उधर चातक को मेघ से केवल प्रेम की ही आशा–प्रत्याशा है इधर तुलसी को राम से केवल कृपाकणों की मनोकामना –

'सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को।। (सो. 306)'

मेघ के प्रति प्रेम ही चातक का सर्वस्व है। प्रेम की निर्मल भूमि पर पहुँचे चातक की कोई चाह, कोई साध शेष नहीं रहती। प्रेम ही उसका सार है, वही उसका आधार है –

'एक अंग जो सनेहता निसि दिन चातक नेह।
तुलसी जासों हित लगै वहि अहार वहि देह।। (दो. 312)'

आठों याम चातक जिसके प्रेम को सेवता है, वही उसका आहार है, वही उसकी देह। अशोक वाटिका प्रसंग में चातक का यही आदर्श तुलसी ने राम के अनन्य भक्त हनुमान में सँजोया है। राम की कृपा ही राम के दास हनुमान और दासानुदास तुलसी के लिए सर्वस्व है। जिन वरदानों के लिए जन्म–जन्म तक कठोर तपस्या और साधना की जाती रहीं हैं, वे बहुत सहजता से सीता ने हनुमान को बिन माँगे ही आशीष में दे दिए –

'अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥ करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥'

अजरता–अमरता और गुणों का प्रथमत: आशीष देते हुए अंत में सीता ने यह भी कहा कि करहुँ सदा रघुनायक छोहू, अर्थात् राम की कृपा सदैव तुम्हें प्राप्त हो। तुलसी के चातक आदर्श में हनुमान जी ने अजरता, अमरता और गुणों को तो जैसे सुना ही नहीं। अजर–अमर होकर क्या मिलता है जिसे लेने हनुमान जाते उन्होंने तो सुनना इतना भर ही था कि–करहुँ कृपा प्रभु असि सुनु काना। तुलसी की चातक भक्ति पद्धति में तो भक्त का हित प्रभु कृपा से ही है, वही उसका आहार है, वही उसकी देह।

राम के वियोग में दशरथ के करुण मरण के वर्णन में भी तुलसी की दृष्टि में चातक–मेघ की ही प्रमाणकोटि रही है। चातक का मेघ लोकसुखदायी है कि वह आत्मविलीन होकर भी जगमंगल के लिए तत्पर है। तुलसी के राम भी तो ऐसे ही हैं लोकसुखदायी।

दोहावली के चातक प्रसंग में आई परवशता, बाज का चंगुल, और बधिक के हमले को दशरथ–कैकेयी प्रसंग के समानांतर देखें तो चातक और दशरथ एकरस भूमि पर ही प्रतिष्ठित होते जान पड़ते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मानस में कैकेयी वरदान प्रसंग में मर्माहत दशरथ की स्थिति–जनु सचान बन झपटेउ लावा, कहकर बाज के चंगुल का ही बिंब रखा गया है। यहाँ दोहावली में चातक की परवशता का मार्मिक चित्र है ही –

'चरग चंगु गत चातकहि, नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ पर, परिहै पुहुमी नीर।। (दो.301)
वध्यो बधिक पयो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहुँ लगी न खोंच।।'(दो.302)

उधर चातक, इधर दशरथ दोनों परवश हैं पर इस परवशता में उनका प्रेम संकल्प और अधिक दृढ़तर और भास्वर हो गया है। किसी लेनदेन या आशा आकांक्षा से परे यह केवल प्रेम के लिए किये जाने वाला प्रेम है जिसमें प्रेमी अपना जीना–मरना प्रेमी के होने न होने से जोड़कर देखता है। दशरथ ने जीते–मरते दोनों स्थितियों में प्रेम की इसी प्रतिष्ठा की लीक रखी है –

'जीवन मरन सुनाम जैसे दशरथ राय को।
जियत खिलाए राम राम बिरहँ तनु परिहरेउ।।'

प्रिय पात्र के बिछुड़ने पर भी यदि उसका अनन्य प्रेमी जीवित रहता है तो उसके प्रेम की सच्चाई में कुछ कसर समझनी चाहिए। वह प्रेम उस पूर्णता को नहीं पहुँचता। स्वर्ग से गिरे ययाति से, पंखहीन संपाति से, सुधाहीन चंद्रमा से, श्रीहत, होकर राजा दशरथ दयनीय मृत्यु को प्राप्त होते हैं। राम–राम कहते मरणासन्न दशरथ में तुलसी ने चातक का ही स्वरूप चित्रित

किया है –

'हा रघुनंदन प्रान-पिरीते ।
तुम बिन जियत बहुत दिन बीते।।
हा जानकी लखन हा रघुबर।
हा पितु-हित-चित-चातक-जलधर।।
राम राम कहि राम कहि। राम राम कहि राम।।
तनु परिहरि रघुबर बिरह। राउ गयउ सुरधाम।।'

दशरथ के मुँह से राम-राम की यह रटन्त अनन्यता और एकनिष्ठता की ही अनुगूँज है। तुलसी के एक भरोसो, एक बल, एक आस विश्वास की विनयोक्ति में इसी चातक मेघ प्रेम की दुहाई है जो केवल दशरथ को प्राप्त है।

तुलसी कभी सीधे-सीधे तो कभी अपने मानस के पात्रों के माध्यम से चातक भक्ति के आदर्श को ही परिभाषित करते हैं। भक्ति और प्रेम का उदात्त संस्कार तुलसी के विराट मानस में हिलोरें लेता है। अनन्य एकनिष्ठता के साथ ही चातक की भक्ति के माने तुलसी के लिए आन और मान की भक्ति है, भक्त का मान और भक्ति की आन दोनों अपने उत्कर्ष के साथ यहाँ चमकते हैं।

चातक की आन ऐसी कि मेघ अविरत अपार कृपावृष्टि करे या पूरा संवत सूखा ही निकाल दे चातक उसकी ओर तकना नहीं छोड़ता। वह भली-भाँति स्वाति की पहचान रखता है फिर भी बारहों मास मेघों के समक्ष 'पीउ-पीउ' की रट लगाता है। वह केवल स्वाति में ही पीउ की रट लगाए तो स्वार्थी कहलाए, उसके प्रेम की सचाई में फर्क आ जाए।

तुलसी के मत में सच्चा भक्त वही है जो अपनी भक्ति पर बिना किसी आशा-प्रत्याशा, अपेक्षा-उम्मीद के अविचल रहे। चातक का मेघ भी तो ऐसा ही है ऊसर-उर्वर सबके लिए समान, तुलसी के राम भी तो ऐसे ही हैं उगते-छिपते सम। राज्याभिषेक और वनवास दोनों के लिए समान भाव से प्रस्तुत। जब भक्त के भगवान ही हर ऊँच-नीच में समभाव से जीते हैं तो भक्त का आदर्श भी क्यों न ऐसा ही हो-

'जाँचै बारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन।। (सो.307)
तुलसी के मत चातकहि केवल प्रेम पिआस।
पिअत स्वाति जल जान जग जाँचत बारह मास।। (दो. 308)'

तुलसी तो भक्त की आन में चातक से भी दो कदम आगे बढ़ गए हैं, वे तो स्वाति में भी चिरतृषित चातक को प्यासा रहने की बात कहते हैं कि प्रेम की प्यास बनी रहने और बढ़ी रहने में ही श्रेयस्कर है।

यह तो सर्वविदित और स्वीकृत तथ्य है कि तुलसी की भक्ति दासानुदास पद्धति की है। दास्य भक्ति में मान का स्थान प्रायः नहीं होता परंतु तुलसी ने दोहावली के चातक प्रसंग में चातक का मान दर्शाया है। दास्य भक्ति के साथ मान का संयोग सम या विषम कैसा रसायन बनाकर उभरा है इसका निर्णय तो विज्ञ समाज ही करेगा, जहाँ तक मेरी समझ बनी है तुलसी ने ऐसा विरल संयोग दिखाकर दास के उस अधिकृत भाव को प्रतिष्ठित किया है जो स्वामी के प्रति सर्वस्व समर्पण के चलते उसे स्वतः सुलभ हो जाता है।

चिरतृषित, चिरप्रतीक्षित चातक की तृप्ति स्वाति की बूँद से है, वह उसे मेघ से मिलती है परंतु केवल इसीलिए वह मेघ की याचना, वंदना नहीं करता बल्कि वह तो मेघ पर इसलिए मुग्ध है कि उसका मेघ लोकसुखदायी है और इसीलिए कभी ऐसी दुविधा आन पड़े कि मेघ या स्वाति जल में से किसी एक को चुनना पड़े तो वह मेघ को चुनता है, चाहे उसे प्यासा ही क्यों न मरना पड़े। वह जीते जी और मरकर भी अपने प्रेम की आन रखता है यही उसके मान का हेतु है। तुलसी भी राम की कृपा के लिए नहीं बल्कि राम के लिए राम को भजते हैं।

दोहावली के चातक प्रसंग में चातक के मान को एकाधिक दोहों में तुलसी ने वर्णित किया है। चातक स्वाति बूँद के लिए ही मेघ को ताक रहा है, बूँद गिरती भी है पर संयोगात वह उसकी चोंच से तिरछी पड़ती है। चातक चोंच को तिरछी करके आसानी से प्यास बुझा सकता है परंतु ऐसा करने से मेघ को छोड़ दृष्टि दूसरी ओर जाती है-'बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम।' मेघ को छोड़ वह किसी और को देख भी नहीं सकता, भजना और जपना तो दूर की बात है।

चातक की आन मान की इसी 'बानि' पर मुग्ध होकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि जिससे बड़ा चातक और किसी को नहीं समझता, उसे छोड़ यदि और किसी के सामने वह दीनता प्रकट करे तो उसकी दीनता की सचाई में फर्क आ जाए, उसके प्रेम की अनन्यता भंग हो जाए।

तिरुपति नगर, हिंडौन सिटी,
जिला करौली-322230 (राज.)
मो.- 9887202097

सहस्रार्जुन

-चन्द्रप्रकाश जायसवाल

जन्म - 14 नवम्बर 1935।
जन्म स्थान - प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।
शिक्षा - एम.ए.।
रचनाएँ - 12 पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - तमिलनाडु हिन्दी अकादमी अलंकरण एवं अन्य संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

हमारे जीवन में प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये प्रतीक जो हमारे वातावरण में समाहित हैं वे ही हमारे चिंतन के आधार बड़ी सरलता से बन जाते हैं। वे प्रतीक के रूप में इतने अंतरंग हो जाते हैं कि हम उन्हें आत्मसात करके तदाकार हो जाते हैं। वे हमारे जीवन के संवाहक बन जाते हैं। जैसे घट और पट में कुंभकार और तंतुवाय के कार्य को महत्व देते चिंतन का गंभीर धरातल मिलता है। मानव देह घट जैसा ही है कब तक रहे, कब मिट्टी में मिल जाए, अज्ञात है। अत: जीवन पुनीत कार्य की सात्विक आहुति के लिए है उसी प्रकार पट में जीवन की चादर को ऐसे जतन से ओढ़ना चाहिए कि उसमें कोई दाग न लगे। जीवन भी एक रथ है जिसमें इन्द्रियों के घोड़े जुते हैं। वेगवान घोड़ों की भाँति इन्द्रियाँ भी शरीर को उन्मुक्त हो स्वेच्छा से जिधर चाहें ले जा सकती हैं किन्तु यदि उनका नियंता मन उन पर नियंत्रण रखे तो सही दिशा में गतिशील रहेंगी। इन्द्रियों की स्थिति दो ही दिशा में हो सकती है या तो उन्हें नियंत्रण में रखकर आचार-विचार, संस्कार-सदाचार की ओर गतिशील करें या पूर्ण मुक्त कर उन्हें निर्द्वंद्व छोड़ दें। मैंने तो इन्द्रियों को निरंकुश नहीं छोड़ा है जबकि लंकेश ने अपने मतानुसार उन्हें पूर्ण मुक्त छोड़ा है। तभी तो जिधर जाता है वहीं मुठभेड़ कर बैठता है। हमारी देवियाँ-काली, दुर्गा सिंह को साधकर दुर्दांत पशु की सवारी भी करती हैं। इसी प्रकार भगवान आशुतोष गरल पीकर भी लोक कल्याणकारी हैं। इन प्रतीकों का अर्थ, जीवन में संयम अपरिहार्य है। बिना संयम के संसार में संतुलन संभव नहीं है। जो आत्मसंयमी हैं वे ही सर्वशक्तिमान हैं। जो अपने ऊपर शासन करने में सक्षम है वही दूसरों पर भी शासन करता है। संयम वह पथ्य है जो संशय का विनाश करता है।

नासमंजसशीलैस्तु सहासीत कथंचन
सद्वृत्तसन्निकर्षो हि क्षणाधर्ममपि शस्यते

संशयशील व्यक्ति के साथ कभी नहीं रहना चाहिए, सदाचारी पुरुषों का तो आधे क्षण का भी संयोग प्रशंसनीय है। जैसे लोहे का मोरचा उसी से उत्पन्न होकर उसी को खाता है, उसी प्रकार सदाचार के उल्लंघन करने वाले मनुष्य के अपने ही कर्म उसे दुर्गति प्रदान करते हैं। जीवित रहने के लिए जिस प्रकार श्वास-प्रश्वास का एक संग्राम हमारे जीवन में नित्य प्रति-निरन्तर चलता रहता है जिसका आभास हमें किंचित मात्र भी नहीं होता। उस संग्राम के हम इतने अभ्यस्त होते हैं कि इसके न तो जय का अनुभव करते हैं और न ही पराजय का अनुभव करते हैं। यह संग्राम हमें जन्म से लेकर मृत्यु के मध्य तक मिला है। इसके अतिरिक्त मानसिक संग्राम भी हम नित्य ही करते हैं। एक समस्या सामने खड़ी हुई नहीं कि हम योद्धा की भाँति खड़े होकर विचारों के तरकश से तीर चलाने लगते हैं। यह क्रिया तब तक निरन्तर चलती रहती है जब तक समस्या शत्रु का अंत नहीं हो जाता। यह संग्राम भी प्राय: जीवन पर्यान्त चलता रहता है और प्रत्येक व्यक्ति को चाहे-अनचाहे युद्ध करना ही पड़ता है।

इस युद्ध में कभी हम विजय प्राप्त करते हैं तो कभी पराजय का स्वाद चखते हैं। इस मानसिक युद्ध में हम प्राय: मन के किसी विषय की ओर झुकाव से संघर्ष करते हैं। यह सद्-असद्, हिंसा-अहिंसा, परपीड़ा, परहितार्थ का संग्राम चलता रहता है। इसीलिए कहा जाता है कि जो मनोवृत्तियों को जनहित के कल्याण में लगा दे वही वास्तविक विजेता है। यही अपने ऊपर विजय प्राप्त करने का मूल मंत्र है। युद्ध भूमि में हजारों-लाखों व्यक्तियों का नरसंहार करना विजय नहीं है। यह तो बर्बर कार्य है। रक्त की नदियाँ, नाले, पनाले बहाना, हताहतों की चीख-पुकार, कराह, रुदन से आकाश, गुँजाना मात्र वीरता नहीं है। वीरता तो जन-मन पर विजय प्राप्त करने में है। शरीर की अपेक्षा मन पर विजय प्राप्त करना जितना कठिन है उतना ही चिरस्थायी है। मनुष्य की सबसे बड़ी विजय मन की दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करना है। यह कथन तो नितान्त सत्य है कि 'वीर

भोग्या वसुंधरा' अर्थात् वीर पुरुष की अपने पौरुष से धरा को विजय करते हैं। किन्तु विजय से श्रेष्ठ है धरा पर निवास करने वाले व्यक्तियों के हृदय को विजय कर उन पर राज्य किया जाए। मैं सहस्त्रार्जुन तो इस मत का प्रबल समर्थक हूँ और इस विजय को ही सर्वश्रेष्ठ विजय मानता हूँ।

इसके पूर्व मन के अनुरूप वास्तविक गुरु की खोज में मैं कहाँ-कहाँ नहीं भटका। निर्जन वन, पर्वत, उपत्यका, गुफा, कंदरा, नदी तट, तड़ाग, तरुवर, तलहटी, ताल, निर्जन, निकुंज सभी जगह मार्गदर्शी गुरु की खोज में मारा-मारा फिरता रहा। अधिकतर जिन्हें सिद्ध पुरुष मानते हैं वे प्राय: अपने में लीन योग-हठयोग की साधना में लिप्त हो कहीं प्राणायाम की क्रिया में लिप्त कुंडलिनी जाग्रत की क्रिया में मूलाधार चक्र में स्थित शक्ति को जाग्रत करने के ध्येय में संलिप्त मिले या बलपूर्वक नेती-धौती द्वारा जिसमें पेट में वस्त्र की लंबी-पतली पट्टी डालकर आँतों की सफाई क्रिया करते हैं, त्राटक धारणा ध्यान द्वारा हठयोग से ब्रह्मरंध्र में लगाने का यत्न करते मिले या अपने चारों ओर गोलाकार अग्नि प्रज्जवलित कर उसके मध्य में बैठकर तप करते मिले या दीर्घकाल तथा शीर्षासन की स्थिति या महीनों खड़े आसन में रहना, उर्ध्व हस्तासन, वृक्षासन, अघोर पंथी और शैव मतावलंबी शवसाधना में लिप्त मुर्दे पर बैठकर सिद्धि प्राप्त करने वाले मात्र अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए घोर जप-तप कर सिद्धि में डूबे मिले। उनकी सिद्धि में परमार्थ या लोक मंगल के लिए कोई स्थान नहीं देखा। इससे निराश होकर मृगतृष्णा के लिए व्याकुल मृग की भाँति मैं अग्रसर हो भागता रहा किन्तु कहीं से भी मेरी तृष्णा का शमन नहीं हो रहा था। बड़ी विचित्र मन:स्थिति से मैं जूझ रहा था। न तो मुझे दिन में चैन और न रात्रि में शांति। दिन में तो प्यासे पक्षी की भाँति मैं इधर भटकता तो रात्रि में निद्रा मुझसे रूठकर जाने कहाँ चली जाती थी। मैं इस मनोदशा में अवसाद ग्रस्त हो गया था। इस स्थिति में मेरी दुर्दशा जलहीन मीन जैसी थी जिससे मैं छुटकारा पाने के लिए छटपटा रहा था।

संयोग से मैं विंध्याचल पर्वत की कंदराओं-वनांचलों में भटक रहा था। तभी अनुरणित ध्वनि में एक टेर मुझे सुनाई दी। मैं चकित हो चारों और देखने लगा किन्तु मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। मैंने ध्वनि का पीछा करने का निर्णय किया और उस दिशा की ओर अग्रसर हो गया। मुझे शीघ्र ही अनुमान हो गया कि मैं प्रतिध्वनि की दिशा में ठीक कदम बढ़ा रहा हूँ। जैसे-जैसे मेरे कदम ध्वनि की दिशा में अग्रसर होते गए वैसे-वैसे ध्वनि मेरे निकट आती सी प्रतीत होती गई। एक स्थिति ऐसी आई कि ध्वनि मेरे अत्यन्त निकट सी लगी। मैं लड़खड़ाते कदमों से ध्वनि से मात्र कुछ ही कदम दूर था। मेरे पैरों की दशा बड़ी विषम थी। ठोकर-ठमक से पैर लहूलुहान हो गए थे फिर भी पता नहीं किस आकर्षण से वे अनवरत चलते ही जा रहे थे। लगभग चार बाँस की दूरी पर मैंने देखा एक महापुरुष जो योगियों जैसे वस्त्र धारण किए थे तेज वलय से पूर्ण थे। मेरी ओर एक रीक्ष पर बैठे चले आ रहे थे। सिर-दाढ़ी मूँछ के बाल उनके वृद्ध होने पर भी एकदम श्याम थे। मैं उन्हें कुछ-कुछ पहचानने का प्रयास कर ही रहा था कि उन्होंने गूँजती वाणी में कहा-'वत्स तुम भले ही मुझे पहचानने में असमर्थ हो किन्तु मैं तो अपने गुरुकुल के एक-एक ब्रह्मचारी को पहचानता ही नहीं था वरन् भविष्य में वे किस दिशा में जाएँगे इसका भी मुझे परिज्ञान था। तुम तो वही अर्जुन हो न जो सदा ज्ञानार्जन में प्रवृत्त रहते थे। तुमने तो हमारे गुरुकुल का सूत्र वाक्य आत्मसात कर लिया था-' आरोह तमसो ज्योति: ' (अविद्या से निकल कर ज्ञान की ओर प्रयाण करो) कदाचित उसी की खोज में निकले हो। तुम्हें अभिज्ञान कराया गया था-' यथार्थ सर्व विज्ञानम्' (ज्ञान मात्र ही सत्य होता है) मैं गुरुकुल से मुक्त होकर संन्यास आश्रम में प्रविष्ट होकर पर्वत-वनांचल में हिंस्त्र पशुओं के मध्य रहकर उनके आचरण में परिवर्तन की शिक्षा के कार्य में संलिप्त हूँ। देख रहे हो न यह रीक्ष मुझे बैठाकर यहाँ तक लाया है। मुझे ज्ञात है कि तुम्हें ज्ञान की अदम्य पिपासा है। कोई भी सिर के बाल श्वेत होने से ज्ञानी नहीं हो जाता। बालक होकर भी यदि कोई ज्ञान सम्पन्न है तो वह वृद्ध परिपक्व ही माना जाता है। गुरु से ज्ञान की ज्वाला निकलती है और अज्ञान को जलाकर क्षार कर देती है। तुम्हारी अर्जन वृत्ति के कारण जितना ज्ञान मैं गुरुकुल में दे सका था दिया। ज्ञान तो अनन्त है। जैसे जल से अग्नि को शान्त किया जाता है वैसे ही ज्ञान से भ्रमित होते मन को शान्त किया जाता है। मुझे यह भी अभिज्ञान है कि तुम सर्वभूत हिताय को जीवन का उद्देश्य मान चुके हो। वस्तुत: जीवन का चरम उद्देश्य यही होना भी चाहिए।' मैं उनके इस मानिक-मोती वचनों को आत्मसात करते माला बनाकर मन को पहनाने लगा। तभी वन के पूर्व दिशा से एक सिंह मन्द गति से आकर गुरुवर के चरणों में लोट गया जिसे देखकर मैं किंचित चिंतित तथा भयग्रस्त हुआ तो मुझे आश्वस्त करते हुए कहा-'वत्स निश्चिंत रहो। ये मेरे पालतू प्रहरी हैं। देखो कितने स्नेह से ये हमारे तलुए चाट रहे हैं। तुम सह्याद्रि पर्वत की निविड गुफा में भगवान दत्तात्रेय की शरण में अमर ज्ञान प्राप्त करने हेतु अब जाओ।' इस सिंह की पीठ पर बैठकर विंध्याचल की तलहटी तक निर्भय चले जाओ तत्पश्चात् वे अंतर्धान हो गए।

मेरे संस्कारों में गुरु को सर्वाधिक महत्व प्राप्त है। वे तो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा संहारकर्ता महेश-त्रिदेवों से भी श्रेष्ठ उनकी गणना है-'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर:, गुरुदेवपरब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नम: ।' गुरु अंधकार से प्रकाश की ओर असत से

सत्य की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जानेवाला ऐसा पथ प्रदर्शक है जिसका ऋण इस जीवन में तो क्या सात जीवन में भी उससे उऋण नहीं हुआ जा सकता। जीवन को वह जीने योग्य बनाने का मंत्रदाता है। हमारे जीवन को अभिमंत्रित करने ऊर्ध्वमुखी बनाने का कृत्य गुरु ही करते हैं। वस्तुत: हमारा जीवन मात्र हमारे लिए ही नहीं होता वरन् वह तो वैश्विक सम्पदा होती है। विश्व के कल्याण के लिए धरोहर होता है उसे उस हेतु ही व्यय करना अपरिहार्य है। मानव जीवन सर्वोत्तम होता है। उसका कुछ विशेष उद्देश्य होता है। उसके ही लिए सम्पूर्ण समर्पण होना चाहिए।

गुरु में गुरुत्व अर्थात् गौरव तो होता ही है। उसी गुण के कारण उसमें गुरुता स्वयमेव होती है। वह शिष्य को अपने तेज वलय के कारण सदा आकर्षित किए रहता है जैसे पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण होने के कारण प्रत्येक वस्तु को अपनी ओर सदा खींच लेती है। यही पृथ्वी की विशेषता है। वह ऊपर से नीचे की ओर आकृष्ट करने में समर्थ है जबकि गुरु चारों दिशाओं, विदिशाओं, ऊपर- नीचे सहित सभी क्षेत्र से अपने वलय का प्रभाव दर्शाता है। इसी प्रकार आचार्य से संबोधित महामहिम आचरणीय गुणों से युक्त होता है। वह तो अन्तर्बाह्य दोनों ओर से आचरण करने योग्य अनुकरणीय होता है। ऐसे गरिमामय अनुकरणीय व्यक्तित्व के प्रति कौन आकर्षित नहीं होता। ऐसे गुरु की खोज ईश्वर की खोज से कम नहीं। यह तो परम सौभाग्य है जिसे ऐसे गुरु प्राप्त हो जाए अन्यथा सम्पूर्ण जीवन ही व्यतीत हो जाता है। जिसे वास्तविक गुरु बृहस्पति जैसा सान्निध्य प्राप्त हो जाए उसका जीवन सफल है। यह तो मणि-कांचन संयोग रहा कि मैं भगवान दत्तात्रेय को गुरु बना सका। भगवान विष्णु के चौबीस अवतारों में से छठें की गणना में भगवान दत्तात्रेय जी का स्थान है। दत्तात्रेय जी अत्रि मुनि जो एक मंत्र दृष्टा ऋषि और सप्तर्षियों में उनकी गणना होती है के पुत्र हैं। प्रत्येक अवतार का कुछ विशेष प्रयोजन होता है। यही विचार कर श्री विष्णु जी ने सद्गुरु श्री दत्तात्रेय जी के रूप में अवतार ग्रहण किया। अवतार अर्थात् अविनाश जिसका कभी अंत न हो। इन्हें सिद्धि प्राप्त होने पर सिद्धराज भी कहते हैं। इतना ही नहीं योग विद्या में असाधारण अधिकार प्राप्त करने अर्थात् 'न तस्य रोगों न जरा न मृत्यु: प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्' जिसने योगाभ्यास की अग्नि में अपने शरीर को खूब तपा लिया हो उसे न तो रोग सताता है और न वृद्धावस्था। मृत्यु भी उसके निकट आने में डरती है। इसी से अत्रि मुनि को योगराज या योगींद्र भी कहते हैं। अपने योग चातुर्य से देवताओं के संरक्षण करने से इन्हें देवदेवेश्वर भी कहा जाता है।

मुनिवर अत्रि जी ने प्राणियों के समस्त कष्ट निवारण तथा लोकमंगल की कामना करने वाले पुत्र के लिए विष्णु जी का घनघोर तप किया जिससे प्रसन्न होकर विष्णु जी ने प्रकट होते हुए कहा-'हे! मुनिश्वर मैंने अपने को ही आपको दान स्वरूप दे दिया है। पुत्र के रूप में आपके घर जन्म लूँगा। इस भाव से इनकी संज्ञा 'दत्त' हुई तथा अत्रि मुनि के पुत्र होने से आयेत्र कहा गया। 'दत्त' तथा 'आत्रेय' दोनों के संयोग से दत्तात्रेय का उद्भव हुआ। इस रूप में अवतरित होकर भगवान विष्णु ने लोक कल्याण के अनेक कार्य किए। वे परमतपस्वी अत्रि तथा अनसूया के पुत्र तथा दुर्वासा ऋषि के सगे भाई थे। इनके चौबीस गुरु थे जिससे दत्तात्रेय जी ने चौबीस प्रकार की शिक्षा ग्रहण की थी। यद्यपि इनके ये गुरु कोई मौखिक या लिखित शिक्षा इन्हें प्रदान नहीं की थी किन्तु इनके गुणों को सांकेतिक शैली में ग्रहण किया था और जीवन में आत्मसात किया था। प्रथम गुरु के रूप में धरती को स्वीकार किया था। धरती माता जी की भाँति हमारी सुरक्षा तथा सुख प्रदान करती है। अनेक प्रकार के कष्ट सहकर मौन रहती है। खोदने-कुरेदने पर भी खनिज पदार्थ रत्न, कोयला, तेल, मीठे जल के भण्डार दोनों हाथों हमें लुटाती है। इतना ही नहीं कृषि के द्वारा हमें विभिन्न प्रकार के अन्न-साग-सब्जी विपुल मात्रा में देकर हमारा पालन-पोषण करती है। उन्होंने धरती से सहनशक्ति, सद्भाव की शिक्षा ग्रहण की।

दूसरी शिक्षा वायु से ग्रहण की जो श्वास लेने के लिए अपरिहार्य है। शुद्ध वायु से हमारे जीवन की रक्षा होती है। हम वायु के सागर में रहते हुए उसे नि:शुल्क ग्रहण करते हैं। कोई भी जीव बिना वायु के जीवित नहीं रह सकता। आकाश तीसरा गुरु है जो संकेत देता है कि हमारी आत्मा भी आकाश की भाँति अनादि अविनाशी है। ईश्वर भी तद्नुरूप सर्वव्यापी-सर्वशक्तिमान है। जल उनका चौथा गुरु जिससे शीतलता तथा मधुरता की शिक्षा ग्रहण की। इसकी उपयोगिता तो सर्वविदित है। बिना जल के जीव जीवित ही नहीं रह सकता। जल की भाँति साधक को शुद्ध विमल-मृदुभाषी-शीतल स्वभाव का होना चाहिए। पाँचवें गुरु उनका अग्नि थी। अग्नि के समान पवित्रता होनी चाहिए। हृदय में यदि विवेक रूपी अग्नि होगी तो पाप कृत्य नहीं होगा। किसी भी व्यक्ति के दुर्व्यवहार को मन में नहीं रखना चाहिए। दूसरों के पापों को विवेक रूपी अग्नि से जला जो आवागमन के बंधन से मोक्ष प्रदान करता है। मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में भी इसकी गणना है।

ई 1/103, ग्लोबस ग्रीन एकर्स,
फेस-1, नयापुरा, लालघाटी,
भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो.-8989541455

वर्तमान विश्व और हिंदी साहित्य

– उमराव सिंह चौधरी

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर के कुलपति रहे। आपने एक सौ पचास अंग्रेजी कविताओं का अनुसृजन 'समय के हृदय की धड़कन' नाम से किया।

विश्व कभी भी स्थिर और समरूप नहीं रहा। समय-समय पर सभी देश अपनी-अपनी क्षेत्रीय सीमाओं की बाँहों में आबद्ध रहते थे। लेकिन आज मार्शल मॅक्लुहान द्वारा 1964 में प्रयुक्त दो शब्दों में वह एक 'एक ग्लोबल विलेज' या 'वैश्विक गाँव' बन गया है। ऐसे घरों का संसार कि जिनसे झाँककर हम एक-दूसरे को देख सकते हैं। संचार और यातायात की अपूर्व तकनीकी सुविधाओं ने यह संभव किया है। बर्बर और हत्यारी बीसवीं शती की दुनिया से 21 मैं शताब्दी का संसार भिन्न है। यह गुणवत्ता, नैतिकता, सृजनशीलता और व्यावसायिक उद्यमशीलता की ओर अग्रसर हो रही है। दो युद्धों के हिंसक आघात ने शांति की चाह को बढ़ाया है। कलह, क्रोध, कटुता और कपट-कर्म के शमन की माँग हो रही है। यह महसूस किया जा रहा है कि कविता अपने मृदुल मधुर आग्रह से समाज में सद्भाव और शांति स्थापित करने में सहायक हो सकती है। प्रथम विश्वयुद्ध की सौवीं वार्षिकी, 5 अगस्त 2014, को संयुक्त राष्ट्र में संपन्न हुए कार्यक्रम में विश्व के पन्द्रह देशों के राजदूतों ने अपने-अपने देश के कवियों की युद्ध-विरोधी कविताएँ प्रस्तुत की। भारत के राजदूत अशोक कुमार चटर्जी ने इस अवसर पर नोबेल पुरस्कार विजेता महाकवि टैगोर की काव्य-कृति 'गीतांजलि' से 96 वीं कविता का पाठ किया।

टैक्नोलॉजी द्वारा मनुष्य का अवमूल्यन :- साहित्य सबसे पहले प्रतिरोध और नैतिक आक्रोश का समाज-शास्त्र है और बाद में सौन्दर्य शास्त्र। साहित्य के आग्रह स्थानीय और वैश्विक दोनों ही प्रकार के हैं। उसके सरोकार भी दो अर्थात् सामयिक और सनातन हैं। आजकल, एक ओर तो असहिष्णुता और आक्रामकता बढ़ती जा रही है तथा दूसरी ओर संस्कृति को क्रमश: विस्थापित करती हुई क्रूर सभ्यता और कठोर प्रौद्योगिकी भी अपने पाँव पसार रही है। काव्य के प्रोफेसर मैथ्यू ऑरनोल्ड का यह कथन चरितार्थ हो रहा है कि जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती है, वैसे-वैसे कविता घटती जाती है। उधर डिजिटलवाद आर टैक्नोमैनिया सामाजिक दूरियाँ बढ़ाकर मानव-संबंधों को उत्तरोत्तर क्षति पहुँचा रहे हैं। मानवीय संबंधों की गुणवत्ता घटने से मानवीय और सामाजिक मूल्यों में आई कृत्रिमता और सतहीपन साफ-साफ दिखाई देने लगे हैं। अमानवीय प्रौद्योगिकी और निर्दय सभ्यता मिलजुलकर मानव अंगों और कार्यों को उससे अलग करके बुद्धिमान मशीनों को सौंप रही हैं। रोबोट और कृत्रिम बुद्धि मनुष्य को एक निरावयव, रिक्त और निष्क्रिय अस्थिपंजर बनाकर बुद्धि सज्जित मशीनों पर आश्रित कर रही हैं। विलियम गिब्सन ने अपने विज्ञान-आधारित उपन्यास 'एजेन्सी' में सौ वर्ष बाद की दुनिया का भयावह काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किया है। इनका कहना है कि आर्टिफिशियल (कृत्रिम) बुद्धि (ए.आई.) मनुष्य की चेतना को इतना प्रभावित करेगी कि वह अपने शरीर में पूरा इंसान नहीं रह पाएगा। वह एक प्रणाली या 'सिस्टम' बना दिया जाएगा।

शतरंज या चेस खेलने में कम्प्यूटर मनुष्य से अधिक दक्ष और विज्ञ हो गया है। 'फार्च्यून' के वरिष्ठ संपादक जिओफ कॉल्विन ने 2015 में 'ह्यूमन्स आर अंडररेटेड' (अर्थात् मनुष्य का अवमूल्यन) पुस्तक लिखकर मनुष्यों के कान खड़े कर दिए और आँखें मिचमिचा दीं। कॉल्विन की मुख्य सलाह यह है कि मनुष्य को मशीन से प्रतिस्पर्धा करना छोड़ देना चाहिए, क्योंकि उसकी निपुणता (इफिसियंसी) दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इस कारण उसे परास्त करना संभव नहीं है। मनुष्य को अपने मानवीय गुणों और विशिष्टताओं पर ध्यान केन्द्रित करके उनका परिष्कार और संवर्द्धन करते रहना चाहिए। उदाहरण के रूप में, उसे संवेदनशीलता, तद्नुभूति (इंपथि), पारस्परिकता, परोपकार, अनासक्ति, नैतिकता, योग और सृजनशीलता आदि गुणों को

उनके चरमोत्कर्ष तक विकसित करना पड़ेगा। प्रौद्योगिकी अतिवादी उत्थायक है, वह यदि मनुष्य को ईश्वर के सिंहासन पर बैठा सकती है, तो उसे अप्रासंगिक या अनुपयोगी भी बना सकती है।

विज्ञान और मानविकी के बीच असंतुलन :- एकाधिकारवादी प्रौद्योगिकी और वर्तमान वस्तुवादी सभ्यता के दुष्प्रभावों और अनुचित हस्तक्षेप को सीमित संतुलित करने में साहित्य तथा विशेषकर काव्य की भूमिका प्रभावी होती है। विमानवीकरण (डिह्युमनाइजेशन) की प्रक्रिया का प्रतिकार करना इनकी सहज प्रवृत्ति है। इसलिए, काव्य-साहित्य के सृजन, उन्नयन और प्रचार-प्रसार को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। विकसित औद्योगिक देशों में कविता के प्रति लगाव और उत्साह घट रहा है। अमेरिका, योरप और जापान में काव्य-साहित्य को बढ़ावा देने के प्रयास आरंभ हो गए हैं। अमेरिका में तो कविताएँ छापकर उनका सार्वजनिक स्थानों पर वितरण एवं प्रदर्शन किया जा रहा है। यहाँ तक कि टॉयलेट्री पर भी कविताएँ छापी जा रही हैं। युवा पीढ़ी में मानविकी के अध्ययन के प्रति उदासीनता और उच्चाटन से विश्वभर के उच्चतर शिक्षा संस्थान चिन्तित हैं। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी तथा अमेरिकी अकादमिक एवं सांस्कृतिक परिषदों द्वारा प्रकाशित अध्ययनों और प्रतिवेदनों में विज्ञान-प्रौद्योगिकी और मानविकी के बीच बढ़ते हुए अंतराल एवं असंतुलन पर गहरा क्षोभ और चिन्ता व्यक्त की गई है। विख्यात कवि विलियम ब्लैक ने तो उन्नीसवीं शताब्दी में ही चेता दिया था कि काव्य के प्रवाह को रोकना मानव प्रजाति की गतिशीलता को बाधित करना है।'Poetry fettered, fetters human race'

अज्ञेय ने 'काँच के पीछे मछलियाँ' नामक कविता में वर्तमान उपभोग-मुखी सभ्यता के मानव-संबंधों पर पड़ रहे दुष्प्रभावों पर बड़ा पैना व्यंग्य किया था :

'ज़िन्दगी के रेस्तराँ में यही आपसदारी है,
रिश्ता-नाता है-कि कौन किसको खाता है।'

जापानी कवि तामुरा यूची ने भी उनकी कविता 'मेरा साम्राज्यवाद' में वस्तुवादी दृष्टिकोण पर बड़ी मार्मिक टिप्पणी की है :

'कपड़ों और खाद्य पदार्थों की भरमार से होकर त्रस्त,
जब हो जाते हो तुम साठ से ऊपर-
तब न रह पाते हो वस्तु और न मनुष्य।'

यह सच है कि अपने ही द्वारा बिछाई गई वस्तुओं के बोझ तले दबा आदमी 'चीं' भी नहीं बोल सकता। फिर भी साहित्यकार, 'नंगे फकीर' गाँधी को भूलते जा रहे हैं।

साहित्य समावेशी और बहुसांस्कृतिक :- अंतःकरण से उद्भूत साहित्य मानव समुदाय की ही देन है और मनुष्य मात्र के लिए रचा गया है। ये कभी भी भौगोलिक सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। नरेश मेहता या कुँवर नारायण, चाहे भारत में जन्मे हों, उनका साहित्य तो सारे विश्व की धरोहर है। 'हिन्दी के विशाल मंदिर की सरस्वती महादेवी वर्मा ने ठीक ही कहा है कि- 'सच्चा साहित्य व्यक्ति को समष्टि से एकाकार करने वाली निरन्तर गतिमान कर्मधारा है।' 2020 के साहित्य के नोबल पुरस्कार से विभाषित अमेरिका की कवि और निबंधकार विदुषी लुइस ग्लूक भी मानती हैं कि लेखन में स्वयं को लाँघकर व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वजनीन अनुभव में रूपांतरित करने की उद्दाम आकांक्षा ही साहित्यकार की सच्ची प्रेरणा होती है। साहित्य किसी एक लेखक या रचनाकार का आत्मलेख भर नहीं होता। यह एक बहुसांस्कृतिक प्रक्रिया है। उसमें मनुष्य को सभ्य, संस्कारित और सहृदय बनाए रखने की शक्ति एवं ऊर्जा भी निहित होती है। वह जीवन-दृष्टि और जीवन-शैली दोनों को ही परिष्कृत करता है। साहित्य की उत्कृष्टता और संवेदनाएँ मानवीय मूल्यों को एक नया जीवन-आधार और पहचान देती हैं।

दुर्योग यह है कि वर्तमान विश्व में विज्ञान और प्रौद्योगिकी 'प्राणियों की थोक में हत्या कर रही है और खैरची में उन्हें बीमारियों से बचा रही है।' पीड़ित-वंचित लोगों के प्रति हमारी उदासीनता और निर्दयता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। समाज का उच्च वर्ग भौतिक विलासिता के हिंडोलों में झूल रहा है। मध्यम वर्ग छद्म सभ्यता की वेशभूषा ओढ़ कर इठला रहा है, तथा निम्न वर्ग अपनी अमानुषिकता को छुपाने के लिए कोई आवरण जुटा नहीं पा रहा है। समाज में इस तरह की विषमता और आडंबर बढ़ते ही जा रहे हैं। दुराव-छिपाव तथा अनुकरण और अनुसरण की प्रवृत्ति पर प्रभावी प्रहार नहीं होने से व्यक्ति का मौलिक रूप और स्वभाव सामने आ नहीं पा रहा है। ये विकृतियाँ वृहत्तर समाज के लिए शुभ नहीं कही जा सकतीं। पाखंड का खंडन, विकृतियों का विनाश, विषमताओं का विसर्जन करने और आडंबर में आग लगाने वाले साहित्यकारों का घाटा ही नहीं टोटा होता जा रहा है। निराशाजनक तो यह है कि आग को राख से ढँकने वालों का आँकड़ा बढ़ता जा रहा है।

साहित्यकारों में शब्द और कर्म की दूरी :- प्रत्येक युग में साहित्य को चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। कभी धर्म, कभी राजनीति, कभी किसी विचार की तानाशाही और मनुष्य के बौनेपन से भी संघर्ष करना अनिवार्य हो जाता है। वर्तमान में, सत्ता, धन, ज्ञान और प्रौद्योगिकी की निरंकुशता भी एक बड़ी चुनौती बन गई है। साहित्य मूल्यों और आदर्शों के आग्रह द्वारा इन्हें मर्यादित और अनुशासित करके लोक-मंगलकारी बनने के लिये अभिप्रेरित कर सकता है। ज्ञान, भावना और क्रिया का अलगाव और दूरी भी साहित्य का, और साहित्य के लिए एक निकटतम संकट है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'जन्म-शताब्दी-स्मरण' के दौरान हो रहे लेखन में यह उजागर किया गया है कि पुराने लेखकों के लिये शब्द और कर्म एक ही सिक्के के पहलू थे, लेकिन आज के साहित्यकारों की रचनाओं और उनके कर्म आचरण में अलगाव दिखाई दे रहा है। भारतीय पाठक लेखक और उसकी रचना में फर्क करके नहीं देखता। इसलिए, शब्द और कर्म को अलग-अलग मान लेना भी आज साहित्य का एक गंभीर संकट है। जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में इस संकट को जीवन की विडंबना कहकर इससे मुक्त होने का आह्वान किया है :-

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है इच्छा पूरी हो कैसे मन की,
एक दूसरे से न मिल सके यही विडंबना है जीवन की।'

आत्मा का विकार और सर्वभाव :- जिस भौतिक समृद्धि के आकर्षण ने संसार को दो विश्वयुद्धों की ज्वाला में धकेल दिया था, उसका मूल कारण प्रो. बियटी (चांसलर, मैक्गिल युनिवर्सिटी) के अनुसार 'आत्मा का विकार' था, मस्तिष्क का नहीं। साम्राज्यवादी निरंकुश शासकों की आत्मा के संकुचन ने ही यह विकार या रोग उत्पन्न किया था। युद्ध की विभीषिका के विनाशकारी परिणाम मनुष्य-जाति को यही सीख देते हैं कि अध्यात्म या आत्मा का विस्तार ही हमारी लोलुपता को मर्यादित कर सकता है। महात्मा गाँधी ने इसीलिए जोर देकर कहा था कि इस वसुन्धरा पर हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त साधन-सामग्री उपलब्ध है, किन्तु प्रलोभन' या लालच से प्रेरित असीम और अवैध माँगें यह पूरी नहीं कर सकती। आज यही समझने और अंगीकार करने की आवश्यकता है कि शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के स्वाभाविक सामंजस्य का निर्वाह करके ही व्यक्ति और राष्ट्र सुखी एवं संतुष्ट रह सकते हैं। आध्यात्मिक मूल्यों से विमुख होकर, मस्तिष्क की उपलब्धियों पर अधिक ज़ोर दने से हम दुखी हो रहे हैं। इसलिए पूर्वी और पश्चिमी देशों को मानसिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के एकीकरण के लिए गंभीर प्रयास करने चाहिए। साहित्य आत्मा का विस्तार करता है। मस्तिष्क को खुला और हृदय को विशाल बनाता है। हर तरह के तनाव और विषाद को दूर करने के लिए साहित्य, कला और संगीत हमारे विश्वस्त साथी और चिकित्सक सिद्ध हो सकते हैं। मानवीकीय दृष्टि और साहित्यिक संवेदनशीलता मनुष्य को स्थानीय सरोकारों से आगे वैश्विकता तथा उसके भी पार अलौकिकता की अनुभूति कराने में सहायक होते हैं। भारतीय संस्कृति और साहित्य का मूल स्वभाव और दिशा सर्वभाव या कौटुम्बिकता की ओर ले जाने वाली है। 'मेरा-तेरा' के संकीर्ण सोच से ऊपर उठकर ही 'उदार चरित्र' के उद्देश्य की प्राप्ति हो सकती है :

'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसां
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकं।

मनुष्य के बड़प्पन का ह्रास और साहित्य का संबल :- 'एतरेय ब्राह्मण' में उल्लेख है कि विधाता ने जब मनुष्य का सृजन कर दिया तब उसके संस्कारित स्वरूप को देखकर वह इतना मुग्ध हुआ कि उसने तीन बार 'सुकृतं, सुकृतं, सुकृतं' कहकर अपनी पीठ थपाथपा ली। तब से अब तक मनुष्य ने भौतिक प्रगति करके बाह्य जगत को तो खूब सजाया-सँवारा, लेकिन आंतरिक जगत् की घोर उपेक्षा कर उसे खोखला बना दिया। मार्टिन लूथर किंग (जूनियर) ने बड़ी समयोचित बात कही है कि 'वैज्ञानिक शक्ति ने हमारे आत्मिक बल को भस्म कर दिया'। एक आयामी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के वैभव-विलास ने मनुष्य को उस मुकाम पर पहुँचा दिया जहाँ जाकर बड़े-बड़े साम्राज्य, सभ्यताएँ और धन-कुबेर अपना पतन स्वयं अपनी आँखों से देख चुके हैं।

वैज्ञानिक ज्ञान और कौशल के बल पर मनुष्य ने 'गाइडेड मिसाइल' तो बना लिए मगर वह स्वयं दिशाहीन होकर एक समस्या बन गया। आज जानकारी और ज्ञान का अंबार लगा हुआ है, फिर भी मनुष्य जाति की बुनियादी समस्याओं का समाधान नहीं हो पा रहा है। जीवन के रक्षा-कवच अर्थात् पर्यावरण को अकूत क्षति पहुँचाकर मनुष्य ने सामूहिक हत्या का आयोजन कर दिया है। पैसों की दौड़ और ले-लपक में

सामाजिक और मानवीय संबंधों के ताने-बाने को ही तोड़ दिया है। आदमी अपने पड़ोसी के बजाय हथियारों पर ज्यादा भरोसा करने लगा है। परन्तु, क्या अस्त्र-शस्त्र से हमारी स्थायी सुरक्षा हो सकती है? अन्ततः मनुष्य को मनुष्य का ही रक्षक बनना है (मनुष्य मनुष्यां परिपातु विश्वतः)। यह कितना घिनौना कृत्य है कि मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अपने शिकार के साथ तब तक मित्रवत् बना रहता है, जब तक उसे मारकर खा नहीं जाता। क्या यह सब मनुष्य की नैतिक-आत्मिक चेतना, अंतःकरण और विवेक का विकृतिकरण नहीं है?

मनुष्य के बड़प्पन का ह्रास वर्तमान विश्व की 'महा-त्रासदी' है। वैदिक काल में भी मनुष्य के पतनशील होने का अनुमान लगाकर 'मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने का आग्रह ऋग्वेद में किया गया है। कहा गया है कि 'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्'। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन का अभिमत है कि 'मनुष्य का मनुष्य बने रहना उसकी जीत है, दानव बनना उसकी हार है और महामानव बनना चमत्कार है।' महामानव बनने के लिए उसकी आत्मा का बलवान होना आवश्यक है। आध्यात्मिक विकास के बिना भौतिक समृद्धि अधूरी और निरंकुश है। इसीलिए भारतीय परंपरा में 'अभ्युदय' और 'निःश्रेयस' के बीच संतुलन अनिवार्य माना गया है। वैश्विकता के दौर में विविधता और बहुलता को अपनाए बिना कोई भी व्यक्ति या समूह समसामयिक या आधुनिक नहीं कहा जा सकता।

गुरुओं के गुरु और मुनियों के मुनि वेदव्यास ने 'नहि श्रेष्ठ-तर मानुषात् किंचित' कहकर मनुष्य को सृष्टि का सिरमौर बना दिया था। लेकिन मनुष्य अपनी श्रेष्ठता को स्थायित्व नहीं दे पाया। उसके बड़प्पन का पतन होता ही जा रहा है। प्रौद्योगिकी का उन्माद पालकर या उसकी दासता स्वीकार करके मनुष्य अपनी श्रेष्ठता की पुनर्प्राप्ति सुनिश्चित नहीं कर सकता। उसके लिए तो साहित्य, संगीत और कला की साधना ही एकमात्र विकल्प है। भर्तृहरि ने पाँचवी शताब्दी में ही यह मार्ग मानव-जाति को बता दिया था :

'साहित्य संगीत कला विहीनं / साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनं।'

हिन्दी साहित्य का विश्व स्तरीयता :- भारत का सत्य उसका 'विश्व-बोध' है। इसे यहाँ के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य में देखा और पढ़ा जा सकता है। यह न तो कोई वणिक वृत्ति है और न ही स्वदेशिकता या स्वराज्य। इस सत्य की साधना भारत के तपोवन में हुई थी। इसका उच्चारण उपनिषदों में और इसकी व्याख्या गीता में हुई है। ज्ञान के क्षेत्र में, भारत का सत्य 'अद्वेत तत्त्व' में, भाव के क्षेत्र में 'विश्वमैत्री' में और कर्म के क्षेत्र में 'योग-साधना एवं लोक-रक्षण' में अभिव्यक्त हुआ है। वर्तमान समय में इसका संप्रेषण हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य द्वारा हो रहा है।

शासकीय दृष्टि से भले ही हिन्दी भारत की 'राज-भाषा' कहलाती हो, मगर अनौपचारिक रूप से यह भारत के 'जन-मन-गण' की भाषा है। विश्वस्तरीयता के मानकों पर यह न्यूनाधिक खरी उतरती है। चीनी भाषा के बाद यह विश्व की दूसरी बड़ी भाषा है। हिन्दी की सृजन परंपरा लगभग 1200 वर्ष पुरानी है। इसका काव्य-साहित्य, संस्कृत के बाद विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की बराबरी करने की क्षमता रखता है। इसके पास लगभग 25 लाख शब्दों का भण्डार है। विश्व के अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद भी किया जा चुका है। यूनेस्को के 'अनुवाद आयोग' के सहयोग से साहित्येतर विषयों के महान ग्रंथों का अनुवाद भी बढ़ता जा रहा है।

डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल द्वारा 2005 में किए गए अध्ययन के अनुसार, विश्व में हिन्दी बोलने वालों की संख्या एक अरब तीस करोड़ से अधिक है। यह संपूर्ण विश्व में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली भाषा है। विश्व के 206 देशों में इसका उपयोग हो रहा है। हिन्दी का संवेदनात्मक साहित्य उच्च कोटि का होते हुए भी, इसका अन्य विषयों से संबंधित 'ज्ञानात्मक साहित्य' अंग्रेजी में उपलब्ध साहित्य के स्तर का नहीं है। डिजिटल क्षेत्र में हिन्दी ने अंग्रेजी का एकाधिकार लगभग समाप्त कर दिया है। विश्व के विकसित देशों के सैकड़ों विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखे गए ग्रंथों का अनुवाद अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में भी हो चुका है। फिर भी, देशी और विदेशी भाषाओं में अनुवाद एवं अनूदित साहित्य के प्रचार-प्रसार की गति काफी धीमी है। आशा है, भारत शासन द्वारा 'अनुवाद मिशन' की स्थापना के बाद, अनुवाद कर्ताओं के प्रशिक्षण और अनुवाद-प्रक्रिया की गति में तेजी आएगी। अनुवाद के कला-कौशल से संबंधित साहित्य और बहुभाषिक शब्दकोशों की कमी भी अनुवाद कार्य के मार्ग में बाधक है। विश्वविद्यालयों में चल रहे अनुवाद पाठ्यक्रमों में कसावट लाना भी आवश्यक है। तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान के लोकव्यापीकरण के लिए लोकभाषाओं, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं में शब्दकोशों और पुस्तकों की रचना करके बहुसंख्यक भारतीय ग्रामीणों की ज्ञान-पिपासा को संतुष्ट किया जाना शेष है। प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु और शिवमूर्ति द्वारा प्रयुक्त देशज

भाषा का स्वरूप ज्ञान के मानवीयकरण और लोकव्यापीकरण के लिए काफी उपयोगी हो सकता है।

हिन्दी जिस गति और ऊर्जा से विश्व पटल पर आगे बढ़ रही है, उसे देखकर लगता है कि 2030 तक यह दुनिया की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा बन जाएगी। भाषा अपने आप में तो जड़ और मूक ही होती है। उसमें जीवन, गति और समृद्धि तो विभिन्न भाषाओं के उसके रचनाकार ही ला सकते हैं। विकसित देशों की समुन्नत भाषाओं के समकक्ष हिन्दी तभी खड़ी हो सकती है, जबकि उसका संरक्षण और पोषण करने वाले साहित्यकार अपनी प्रतिभा, परिश्रम और दूरदृष्टि के द्वारा विभिन्न विषयों से संबंद्ध उच्च स्तरीय, नवीनतम और भविष्योन्मुख ज्ञान एवं साहित्य का गुणवत्तापूर्ण सृजन कर पाएँगे। भाषा और साहित्य की श्रेष्ठता उसके रचनाकारों के श्रेष्ठतर चिन्तन-मनन और सृजन पर निर्भर करती है। हिन्दी में सर्वाधिक साहित्य का सृजन और प्रकाशन करने वाले हमारे देश भारत के किसी भी हिन्दी के साहित्यकार को आज तक 'नोबेल' पुरस्कार के योग्य नहीं समझा गया, जबकि पेरू जैसे छोटे से देश के उपन्यासकार मारियो वर्गास लोसा (Mario Vargas Llosa) 2010 में ही 'नोबेल पुरस्कार' से विभूषित हो गए थे। नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के लिए, पहली शर्त यह है कि आपके श्रेष्ठतम साहित्यिक कार्य का अंग्रेजी में उपयुक्त अनुवाद और उसकी समीक्षा-सराहना का अमेरिका और यूरोप के मीडिया (पत्र-पत्रिकाओं) में प्रचार-प्रसार हो। इस दिशा में, भारतीय मूल के अंग्रेजी में लिखने वाले साहित्यकार ही सफलता एक अच्छा उदाहरण है।

डॉ. राधाकृष्णन का अभिमत है कि 'हमारे अतीत में बहुत कुछ ऐसा है जो दोषपूर्ण और नीचे गिराने वाला है, परन्तु बहुत कुछ ऐसा भी है जो जीवनदायी और ऊपर उठाने वाला है। अतीत को यदि भविष्य के लिए प्रेरणा बनाना है, तो हमें उसका विवेक और सहानुभूति से अध्ययन करना होगा। यह भी याद रखना होगा कि मानव-मन और आत्मा की उच्चतम उपलब्धियाँ केवल अतीत तक सीमित नहीं हैं। भविष्य के द्वार पूर्णतया खुले हैं। मूल प्रेरणाएँ और जीवन को संचालित करने वाले विचार जो कि हमारी संस्कृति की सारभूत भावना का निर्माण करते हैं, हमारी सत्ता या अस्तित्व का ही एक भाग हैं। आवश्यक यह है कि परिस्थितियों के अनुरूप उनकी अभिव्यक्ति में परिवर्तन होता रहना चाहिए।' डॉ. राधाकृष्णन की इस सलाह के साथ मैं यह भी जरूरी समझता हूँ कि हम मिलजुलकर उस भंडार को उलटते-पलटते रहें, जो इस संसार के मनीषी हमारे लिए छोड़ गए हैं। यदि ऐसा करते हुए हम अर्थात् पूर्व और पश्चिम के साहित्यकार, मित्र बन जाते हैं तो यह और अधिक प्रसन्नता की बात होगी।

के. 404, शालीमार टाउनशिप,
ए. बी. रोड, इंदौर-10 (म.प्र.)
मो.- 9826803229

वीर नारी सम्मान

प्रेमचंद के कथा-साहित्य में बाजारवाद

- कृष्ण कुमार मिश्र

जन्म - 15 मार्च 1966।
शिक्षा - एम.एस.सी., पीएच.डी.।
रचनाएँ - पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - केन्द्रीय हिंदी संस्थान द्वारा आत्माराम पुरस्कार।

भारत एक उत्सवधर्मी देश है। हम खुशियाँ मनाने के लिए हर छोटे-बड़े अवसर को उत्सवधर्मिता में बदल देते हैं। काशी में तो कहावत है, सात वार, नौ त्यौहार। यानी जितने दिन, उससे ज्यादा त्यौहार। वैसे मानसून के बाद देश के अधिकांश हिस्सों में तमाम तीज त्यौहारों का मौसम शुरू हो जाता है। यह दौर करीब होली तक तो व्यापक रूप से चलता रहता है। इस समय त्यौहारों का मौसम चल रहा है। लग्न मुहूर्त का भी समय चल रहा है। शादी ब्याह से गाँव नगर गुलजार हैं। बाज़ारों में रौनक है। खरीदारी का दौर चल रहा है। मीडिया में विज्ञापनों का शोर है। बाज़ारवाद से भला आज कोई कैसे बच सकता है?

बकौल अकबर इलाहाबादी;
दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ।
बाज़ार से गुज़रा हूँ खरीदार नहीं हूँ।।

बाज़ार से कोई भला इतना अप्रभावित कैसे रह सकता है। साहित्य भी इससे जुदा कैसे रह सकता है। वह तो समाज का दर्पण है। प्रेमचंद की गिनती दुनिया के श्रेष्ठतम कहानीकारों में की जाती है। भारतीय उपमहाद्वीप में प्रेमचंद सरीखा कथाकार कोई दूसरा नहीं है। प्रेमचंद ने कहानी को जीवन से जोड़ दिया। प्रेमचंद के पहले कहानियों में तिलिस्म, ऐय्यारी का बोलबाला था। वह फंतासी का दौर था। लेकिन कथाकार प्रेमचंद ने कहानियों को समाज के किसान, मजदूर, शोषित, वंचितों, के संघर्ष से जोड़ दिया। उन्होंने पुरानी दकियानूसी, पुरातनपंथी तथा रूढ़ियों पर प्रहार किया। वे प्रगतिशील रचनाकार थे। उन्हें समाज की बुराइयों तथा चुनौतियों की गहरी समझ थी।

कहानी एक सम्मोहन की कला है। इसमें व्यक्ति कथा के साथ चलते हुए उससे बहुत गहरे जुड़ जाता है। कहते हैं, कहानी मानव सभ्यता की पहली बौद्धिक अभिव्यक्ति है। जिस क्षण आदिमानव ने अपनी अनुभूतियाँ अपने किसी परिजन या साथी को किसी भी तरीके से संप्रेषित की होंगी, उस क्षण वह विश्व की पहली कहानी सुना रहा होगा। इस दृष्टि से कहानी सभ्यता के आदिकाल से ही मनुष्य के अनुभवों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो कहानी जीवनानुभवों को व्यक्त करने की साहित्य की सर्वाधिक प्राचीन विधा है। साहित्य समाज का दर्पण है तो कोई कहानी अपने समय की समझ, चिंतन तथा परिस्थितियों का आईना है। कहानियों के द्वारा हम साहित्य की खिड़की से उस दौर के यथार्थ को देख सकते हैं। युग विशेष की कहानी पढ़कर युगीन विशेषताओं की वीथिका में सहज झाँका जा सकता है। हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हर कालखंड में बाजार कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में दृष्टिगोचर होता रहा है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि अनेक कवियों के काव्य में भी बाजार की उपस्थिति है। बाजार और मेलों के साथ जीवन का आनंद और उल्लास जुड़ा हुआ है। एक समय में सामाजिक जीवन में वस्तु-विनिमय बाजार के माध्यम से हुआ करता था। कबीर तो सब की खैर पूछते थे बीच बाजार खड़े होकर। और सबकी खबर भी लेते थे, बिना किसी भय के।

बाज़ार की व्याप्ति :- बाजार मूल्य प्राप्ति का साधन है। मानवीय संवेदनाओं के लिए बाजार में जगह प्राय: कम ही होती है। कभी मनुष्य बाजार में गुलामों के रूप में बिकता था। आज इंसान घर बैठे हुए बाजार का गुलाम है। यद्यपि इस गुलामी का

भान बहुतों को नहीं हो पाता। बाजार की अवधारणा नई नहीं है। जातक कथाओं में नागर समाज में बाजार का उल्लेख बार-बार आया है। बाजार मानव सभ्यता में समाज की अवधारणा के स्थापित होने की प्रक्रिया के साथ ही आकार लेता गया है। बाजार वस्तुओं के क्रय-विक्रय के केन्द्र मात्र नहीं हैं बल्कि मिलने-जुलने के, सांस्कृतिक तथा वैचारिक विनिमय के स्थान भी रहे हैं। अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में यदि कोई ग्रामीण किसी सामग्री को बेचने के लिए हाट-बाजार जाता है तो वह बीच राह में अपनी वस्तु नहीं बेचता है, भले ही उसका दाम ज्यादा मिल रहा हो। वह अपनी वस्तु को बाजार जाकर ही बेचता है भले ही इसके लिए दूरी तय करनी पड़े, और वस्तु की कीमत भी कम मिले। इस प्रकार बाजार की अवधारणा वस्तुतः सामाजिक अवधारणा रही है। हमारे पारंपरिक ग्रामीण हाट-बाजारों ने सामाजिकता व जनसंगठन की भावनाओं को पुष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

घर में दाखिल है बाजार :- बाजार कभी हमारी जरूरतों की पूर्ति का साधन था। पहले लोगों को बाजार तक जाना पड़ता था। अब वह बाजार हमारे घरों में दाखिल हो चुका है। विज्ञान तथा तकनीकी की उन्नति के साथ समाज में सूचना एवं संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। संचार क्रांति ने बाज़ारवाद को खूब बढ़ावा दिया है। बाजार अब केवल जरूरतों की पूर्ति का साधन मात्र ही नहीं है। वह जरूरतें पैदा करने, तथा उन्हें बढ़ाने का जरिया बन गया है। बाजार हमें प्रेरित करता है कि अमुक वस्तु या सुविधा हासिल कर लेने से हमारा जीवन सुखमय हो जाएगा। वह निजी या पारिवारिक सुख, सामाजिक हैसियत की खातिर खरीदारी को ललचाता है। समय के साथ-साथ बाजार का चेहरा, चरित्र और मूल्य भी बदल गया। यह सर्वविदित है कि अंग्रेज मूलतः व्यापारी बनकर बाजार के उद्देश्य से ही हिन्दुस्तान आए थे। उन्होंने बाजार की जड़ें इतनी पक्की कर दीं कि वे यहाँ के शासक बन गए। भारत सदियों के लिए उनका उपनिवेश बन गया। बीसवीं सदी में बाज़ारवाद को खूब प्रश्रय मिला। इक्कीसवीं सदी में हमारी लगाम बाजार के हाथों सुपुर्द हो चुकी है। यह बाजार हमारे खानपान, स्वास्थ्य, चिकित्सा, फिटनेस, सौंदर्य, मनोरंजन से लेकर हथियारों तक व्यापक तौर पर फैला है। इसने समाज, सत्ता और संवेदना, तीनों को अपने नियंत्रण में ले लिया है। बाजार हमारी भौतिक जरूरतों जैसे रोटी, कपड़ा, मकान, रहन-सहन, सभी को नियंत्रित करने लगा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बाज़ारवाद के इस दौर में तमाम देशों की सांस्कृतिक विविधता को खतरे में डाल रही हैं।

ईदगाह :- प्रेमचंद की कहानी 'ईदगाह' को बालमनोविज्ञान की श्रेष्ठतम् कहानी माना जाता है। इसमें बाजार पूरी शिद्दत से मौजूद है। कहानी का मुख्य चरित्र हामिद अपने साथियों के साथ ईदगाह के मेले में जाता है। वहाँ बाजार सजधज कर मौजूद है। मिठाइयों से लेकर, खिलौनों तक, चरखी हिंडोले से लेकर घरेलू इस्तेमाल की चीजों तक। हामिद के साथी मनपसंद मिठाइयाँ खरीदते खाते हैं, अपनी पसन्द के तरह-तरह के खिलौने भी खरीदते हैं। हामिद का भी मन ललचाता है लेकिन वह अपने लोभ, अपनी भावनाओं पर काबू पा लेता है। उसके पास कुल तीन पैसे ही हैं जिनसे वह मोल-तोल करके घर के लिए एक चिमटा खरीदता है जिससे रोटियाँ सेंकते समय उसकी दादी माँ का हाथ न जले। बालमनोविज्ञान तथा शिक्षाशास्त्री कहते हैं बच्चे सहज ही बाजार की चीजों की ओर आकर्षित होते हैं। लेकिन हामिद बाजार की चमक-दमक तथा प्रलोभनों से खुद को बचाते हुए अपने घर के लिए एक बेहद जरूरी चीज खरीदकर घर लाता है। इस कहानी में यह दिखाया गया है कि बाजार एक मनुष्य के जीवन मूल्यों तथा आदर्शों पर हावी नहीं हो सका है। वास्तव में यह कहानी बाज़ारवाद पर मानवीय संवेदना की जीत का जीवंत दस्तावेज है। इस कहानी का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि बाज़ारवाद से खुद को बचाने का त्याग एक बालक द्वारा किया गया है जो बड़े आसानी से आकृष्ट हो जाता है।

कफ़न :- बाज़ारवाद के संदर्भ में प्रेमचंद की ही एक अन्य कहानी 'कफन' का जिक्र करना जरूरी है। यह कालजयी कृति है जिसे प्रेमचंद ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष में लिखा है। साहित्य के समालोचक इसे महान कथाकार की सबसे पुष्ट रचना कहते हैं। यह कहानी ईदगाह के बरक्स एक-दूसरे धरातल पर खड़ी नजर आती है। इसमें यह साफ दिखाई पड़ता है कि बाजार ने किस तरह मनुष्य तथा मनुष्यता को अपनी आगोश में

ले रखा है। कहानी के पात्र घीसू तथा माधव पिता-पुत्र हैं जो गाँव में बेहद गरीब हैं, अभावग्रस्त है, तथा दुखी हैं। कहानी में माधव की औरत रात में प्रसवपीड़ा से छटपटाती हुई दम तोड़ देती है। सुबह उसके क्रिया कर्म के लिए वे दोनों गाँव के जमींदार के पास जाते हैं जहाँ से उन्हें कुछ रुपए मिल जाते हैं। फिर जमींदार के रुपए का हवाला देकर वे अन्य ग्रामीणों से भी पैसे इकट्ठा करते हैं। इस तरह उनके पास कुल पाँच रुपए की ठीक-ठाक राशि जुट जाती है जिसे लेकर वे बाजार में कफन लेने जाते हैं। इधर-उधर कई दूकानों पर वे गए लेकिन कुछ पसन्द नहीं आया। फिर विचरण करते वे मधुशाला में दाखिल हो जाते हैं। वहाँ काफी पैसा वे शराब तथा चखने पर खर्च कर रहे हैं। उनका यह आचरण मानव मूल्यों के पतन की पराकाष्ठा है। घीसू-माधव लोक और लाज, दोनों से बेफिक्र दूकान पर छक रहे हैं। यह कहानी दिखाती है कि बाजार किस कदर मानव मूल्यों पर हावी ही नहीं है बल्कि उसने इंसान के जमीर को भी मार देने में कोई कसर बाकी नहीं रखी है। घीसू-माधव दोनों इस बात पर खुश हैं कि जीवन में उन्हें पहली बार इस तरह भरपूर बिना रोकटोक खाने-पीने का सुअवसर मिला है। कहानी में इस परमतृप्ति पर उनका परस्पर संवाद हमारी चेतना को झकझोर देता है। जब जीवन की समस्त तृष्णाएँ जिह्वा पर आ टिकें, तथा उसकी पूर्ति के लिए इंसान कुछ भी कर गुजरने को तत्पर हो जाए, तो समझिए बाज़ारवाद अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हो गया है। यह कहानी बाज़ारवाद से उपजे मूल्यहीन चेहरे को हमारे समक्ष अनावृत्त करती है। कथ्य, शिल्प और संदेश की दृष्टि से यह एक विलक्षण रचना है।

दो बहनें :- प्रेमचंद की एक अन्य कहानी 'दो बहनें' में भी बाजार मौजूद है। कहानी में रामदुलारी तथा रूपकुमारी दो बहनें हैं जो लम्बे समय बाद किसी रिश्तेदार के यहाँ मिलती हैं। रामदुलारी के पति किसी कंपनी के एजेन्ट हैं। रामदुलारी सुविधासंपन्न है जब कि रूपकुमारी उसके मुकाबले आर्थिक तौर पर कमजोर है। वहाँ रामदुलारी अपनी संपन्नता का बखान करती है, वह सोने-चाँदी से लदी लकदक पोशाक में है। दोनों में वार्तालाप होता है जिसमें रामदुलारी अपनी बहन को हेयदृष्टि से देखती है। यद्यपि रूपकुमारी के पति बहुत शिक्षित हैं लेकिन पैसे कमाने की दृष्टि से कमजोर हैं। रामदुलारी का कथन द्रष्टव्य है-एम.ए. तो सभी पास हो सकते हैं लेकिन एजेन्टी बिरले ही आती है। आलिम-फाजिल हो जाना दूसरी बात है, रुपए पैदा करना दूसरी बात। अपने माल की श्रेष्ठता का विश्वास पैदा कर देना, यह दिल में जमा देना की इससे सस्ता तथा टिकाऊ माल बाजार में मिल ही नहीं सकता, कोई आसान काम नहीं है। एजेंटी में बड़े-बड़े राजाओं तथा रईसों का मत फेरना पड़ता है जब जाके कहीं माल बिकता है। इस संवाद के बाद रूपकुमारी घर आती है। उसे अपना घर कब्रिस्तान जैसा लगने लगता है। न कहीं फर्श, न फर्नीचर, न गमले, न झाड़-फानूस। दो चार टूटी-टाटी तिपाइयाँ, एक लँगड़ी मेज, चार-पाँच पुरानी-धुरानी खाटें। यही उस घर की बिसात थी। अब तक रूपकुमारी इसी घर में खुश थी लेकिन आज उसे यह घर खाए जा रहा है। वह अपने भाग्य को कोस रही है। दरअसल बाजार की चकाचौंध ने उसमें गहन असंतोष भर दिया। उसका चित्त अशांत हो गया था। वास्तव में बाजार यही करता है। जो व्यक्ति के पास नहीं है, उसे प्राप्त करने के लिए कुरेदता है। जो प्राप्त है उससे संतुष्ट होने नहीं देता। जो अप्राप्त है, उसे हासिल करने के लिए हमेशा इंसान को कोंचता रहता है।

आखिर मानव-निर्मित बाजार मानव पर ही इतना हावी क्यों हो गया? इसके कारणों पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के साथ जैसे-जैसे सपने यथार्थ से दूर होते गए हैं वैसे-वैसे बाजार हमारे मानस पर हावी होता गया है। पुराने जमाने के बाजार जरूरतों के सौदागर थे। लेकिन आज के आधुनिक बाजार एक तरह से सपनों के सौदागर हैं। आलीशान घोड़ा, गाड़ी, बँगला, दुनिया की सैर, जैसे चकाचौंध के हसीन सपने बाजार के पंख पर सवार हमें बेचैन किए हुए हैं। अब तो स्थिति यह हो गई है कि व्यक्ति स्वयं भी वस्तुओं यानी जींसों में तब्दील हो कर बाजार में पहुँच चुका है। यह बाज़ारवाद की सबसे दु:खद तथा त्रासद परिणति है जो एक विकट भविष्य की ओर संकेत करती है जिसमें विशेष करके मध्यवर्ग बुरी तरह से उलझा हुआ है।

असोसिएट प्रोफेसर
होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र,
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान,
(डीम्ड यूनिवर्सिटी)
मुंबई-400088 (महा.)
मो.-9969078625

सपने न हुए अपने

– कैलाश मड़बैया

जन्म – 2 दिसंबर 1943।
शिक्षा – एम.एस.सी., एल.एल.बी., एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ – तेईस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – पद्मश्री सहित राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित।

सपने कौन नहीं देखता? अर्थात् सभी प्राणी सपने देखते हैं। दरअसल सामान्य तौर पर सोते समय आने वाले तन्द्रात्मक विचारों की शृंखला को स्वप्न/सपना कहा जाता है। जिन्हें अन्त:चेतन मन के सन्निहित, उभरे विचारों की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि सपने अन्तर्निहित विचारों पर ही आश्रित होते हैं। जो विचार कहीं मन के किसी कोने में अनचीह्ने सुप्त से पड़े रहते हैं वे मौका पाते ही सपनों के रूप में बन्द आँखों में सोते समय कभी-कभार बिफर पड़ते हैं जिन्हें हम तत्काल भले न पहचान पाए पर होते यह हमारे मन की औरस उपज ही हैं। मन तो चंचल होता ही है, सदैव चलायमान। कहते हैं मन कभी नहीं सोता। जब हम विश्राामावस्था माने नींद में होते हैं तब भी मन जागता है, ठहरता नहीं। वह सपने बन कर हमें भी घुमाता है। मतलब हमें साथ रखता है इसलिए सपने पराए नहीं, आधारहीन या निरर्थक तो किंचित नहीं होते। ठीक वैसे ही जैसे बिना आग के धुआँ नहीं हो सकता। हाँ, सपनों का अपना गणित या विज्ञान अवश्य होता है जो हर व्यक्ति उनके शिल्प को नहीं समझता।

अनेक विज्ञजन तो इन सपनों के निहितार्थ निकालते ही रहते हैं जो कभी अनुमानित भी हो सकते हैं तो कभी गणित ठीक होने पर सत्य पर खरे भी उतरते हैं। हाँ, पर आते यह बन्द आँखों में ही हैं। तन्द्रा में लिप्त होने पर। इसीलिए एकदम हमारी द्रष्टि के अनुरूप सटीक कदाचित नहीं माने जाते। खुली आँखों में आने वाले विचार कल्पना कहलाते हैं जो हमारे मानस के स्तर पर निर्भर करते हैं। कल्पना भविष्य पर और सपने प्राय: अतीत पर आधारित होते हैं हालाँकि भविष्य की कल्पना भी कभी-कभी सपने सँजोए रहते हैं। सपनों के विज्ञान की विभिन्न अवधारणाएँ होती हैं। पौराणिक गाथाएँ तो आप-हम पढ़ते, सुनते और जानते ही हैं कि सपनों की व्याख्याएँ किस कदर गूणार्थ लगाकर की जाती हैं, की भी गईं हैं। जैन मतावलम्बी जानते मानते हैं कि तीर्थंकर की माताएँ सोलह सपने भगवान के जन्म के पूर्व रात्रि में देखतीं है यथा गज, लक्ष्मी, कमल, सरोवर आदि आदि और जिनके बहुत गंभीर मायने बताए जाते हैं, इन्हीं पावन सपनों को तीर्थंकर अपने जीवन में साकार भी करते दिखते हैं। पुराने काल के राजा-रानियों के अनेक किस्से सुने सुनाए जाते हैं और उनके भावार्थ भी तत्कालीन ज्ञानियों द्वारा बताये जाते थे। कभी-कभी यह अतिरंजित भी होते रहे तो कभी-कभी निरर्थक भी। पर सार यह कि सभी सपने बेकार कह कर टाले नहीं जा सकते। अगर गंभीरता से लें तो सपने बिना आधार के होते ही नहीं हैं। सपनों की यह प्रक्रिया कुछ लोग तो अनचाहे दिन में भी पूरी कर लेते हैं जिन्हें लोग खुली आँखों के सपने कहते हैं। इन्हें दिवा स्वप्न भी कह लेते हैं।

व्यावहारिक सच्चाई यह है कि सपनों को सामान्यत: आमजनों द्वारा नजरअंदाज ही किया जाता है कि सपने भले स्वयं के हों पर-सपने नहीं अपने क्योंकि सपने तो सपने हैं, यथार्थ से दूर, इनमें क्या उलझना? चूँकि बन्द आँखों से तन्द्रा में सपने देखे जाते हैं एवं यह अनचाहे आते-जाते हैं जिनका कभी तो लगता कि कोई सिरपैर तक नहीं होता है। दरअसल व्यावहारिक रूप से सपनों को भुलाना ही श्रेयस्कर माना जाता है अन्यथा कितना सारा कोई दिमाग में कब तक रख सकता है? क्योंकि सपने

अवांछित सतत् आते ही रहते हैं अनचाहे, अनजाने। कहाँ तक इनसे कोई मगजमारी करे? आदमी के सामने जीवन की जो यथार्थ अनेकानेक समस्याएँ हैं उनसे तो आदमी दो-चार हो, निपट नहीं पाता तो रातों की बातों का कोई क्या करे? पर हाँ अवश्य याद रखें कि कभी कोई चीज निराधार व निरर्थक नहीं होती। फिर सपने तो किन्हीं मानसिक क्रियाओं की प्रतिक्रियाएँ ही होतीं हैं। यह मूल तथ्य सदैव अवश्य विचारणीय है।

चूँकि सपने भी एक प्रक्रिया के तहत भले ही अनजानी कन्दरा से उपजते हों, अन्धकूप के जैसे गहन भी होते हैं। अन्यथा, सपना देखने के बाद मनुष्य जागने पर भी कुछ देर तक अनचाहे उसी में लिप्त/ मूर्छित सा क्यों बना रहता है? आँख खुलने पर तुरन्त सपनों से उबर क्यों नहीं पाता? कई लोग तो इतने दुष्प्रभावित हो जाते हैं सपनों से, कि काफी समय तक भी देखे गए सपनों में डूबे ही रहते हैं, उनसे उबर ही नहीं पाते। बुरे सपनों पर लोग जागने पर भी, रोते और अच्छे सपनों पर हँसते तक देखे गए हैं। एक फिल्मी गाने की पंक्ति याद आ रही है- 'रुला के गया सपना, मेरा'। यह सही है कि सपने अपने आगोश में व्यक्ति को जागने के बाद कुछ समय तक संलग्न रखते हैं। सोचिए ऐसा क्यों?

कहा तो और आगे जाकर आध्यात्मिक विज्ञों द्वारा बताया जाता है कि जीवन में अन्तिम समय के विचार ही, आत्मा के साथ मृत्यु के बाद, पर भव तक में साथ रहते हैं और जीव का अगला जन्म तक इन्हीं अन्तर्निहित विचारों के आधार पर तय होता है। इसीलिए कहा जाता है कि विचारों को निर्मल रखो। जैनों के समाधि मरण की एक प्रार्थना में भाया जाता है कि- 'दिन रात मेरे प्रभु यह भावना मैं भाऊँ, देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ।' शाम चाहे रात के पहले सोने की हो या जीवन की हमेशा पावन विचारों युक्त होना चाहिए। तभी जागने पर या नए जन्म पर खैर मना सकते हैं। सपनों की यह जड़ता क्यों व कैसे होती है? अल्प वैज्ञानिक द्रष्टि से सतही तौर पर यहाँ भी न्यूटन के गति के नियम काम करते हैं कि हर वस्तु तब तक अपनी जड़ता नहीं छोड़ती जब तक कि कोई बाहरी बल उस पर परिवर्तन के लिए नहीं लगाया जाता। मतलब चलने वाली चलती रहेगी और ठहरने वाली तब तक अपनी स्थिति में स्थिर बनी रहेगी जब तक कि कोई बाहरी बल उस पर बदलाव के लिए प्रयोग नहीं किया जाता। इसीलिए सपना देखने वाला व्यक्ति जागने के बावजूद भी उसी गति में तब तक रहता है जब तक कि उसे चेतना झिंझोड़ कर अपनी वर्तमान स्थिति में नहीं ला देती।

सपने केवल डरावने या बुरे ही नहीं, अच्छे भी होते हैं बशर्ते आँखें मींचने के पहले भाव निर्मल हों। परिणामों से परिणति बनती है। सपने देखना पथ प्रशस्त करने के लिए आवश्यक हैं, नहीं देखोगे तो पूरे क्या करोगे? इसीलिए सपने अविष्कारक भी माने जाते हैं।

इस सिक्के का एक अन्य पहलू और होता है स्मृति का। दरअसल स्मृतियाँ भी अतीत पर आधारित ही होती हैं पर यह सटीक होतीं हैं। यह अलग बात है कि चाहने पर स्मृति आने के अलावा, न चाहने पर भी कभी-कभी स्मृतियाँ पीछा ही नहीं छोड़तीं। कहा जाता है कि-'जिन्हें हम भूलना चाहें वो अक्सर याद आते हैं।' स्मृतियों का अलग गणित होता है और अलग आख्यान। स्मृति जीवन के लिए जरूरी भी होती है। स्मृति को बनाए रखने के लिए आदमी अथक प्रयास भी करता है। हाँ, पर स्मृति की एक सीमा के साथ विस्मृति भी आवश्यक मानी जाती है। वरना अनर्थ हो सकता है। खैर इन पर फिर कभी।

इस तरह आपने देखा कि सपने, कल्पना और स्मृति सबके पृथक-पृथक मानसिक हिसाब होते हैं। तो आइए अब जीवन के लिए कोई सुखद सपना देखें।

75 चित्रगुप्त नगर, कोटरा,
भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.- 09826015643

नई शिक्षा नीति 2020 हिंदी और भारतीय भाषाएँ

- किरण खन्ना

जन्म - 23 जून 1969।
शिक्षा - एम. ए., पीएच. डी.।
जन्म स्थान - अमृतसर, पंजाब।
रचनाएँ - दो पुस्तकें प्रकाशित ।
सम्मान - क्षेत्रीय सम्मान।

भूमिका और केन्द्रीय भाव :- किसी भी राष्ट्र की आत्मनिर्भरता प्रतिष्ठा और स्वायत्तता का रास्ता उस राष्ट्र की शिक्षा और शिक्षा नीति से होकर गुजरता है।

किसी भी राष्ट्र का युवा वर्ग और विद्यार्थी वर्ग वैश्विक चुनौतियों को अवसर में तभी बदल सकता है जब उसकी शिक्षा (प्राइमरी/ माध्यमिक और उच्च शिक्षा) एक सुसंगठित, सुनियोजित और व्यवस्थित शिक्षा नीति के अन्तर्गत सम्पन्न हुई है। प्रखर बौद्धिक व्यक्तित्व प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी और तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक द्वारा भारत की समूची कायाकल्प हेतु निर्धारित नई शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था को व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप से भारतीय युवा वर्ग के भविष्य को सुनियोजित करने का सार्थक उपक्रम है। 29 अगस्त 2020 को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में और प्रज्ञा पुरुष, केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश निशंक पोखरियाल के निर्देशन में कैबिनेट द्वारा जिस नयी शिक्षा नीति को मंजूरी दी गई इस शिक्षा नीति का प्रारूप पूर्व इसरो प्रमुख के कस्तूरी रंगन की अध्यक्षता में विशेषज्ञों की समिति द्वारा तैयार किया था। नई शिक्षा नीति 2020 उच्च शिक्षा के क्षेत्र में समग्र पुनर्गठन को नए भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाए जाने की पूरी कोशिश की गई है। डॉ. रमेश निशंक पोखरियाल ने स्वयं इस विषय में कहा है कि 'मुझे खुशी है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 34 वर्ष के बाद आई है जो 21वीं सदी की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए छात्रों का पूर्णत: सक्षम बनाएगी। इसकी मदद से छात्र के व्यक्तित्व को अधिक अनुभावात्मक, समग्र, लचीला एकीकृत, खोज-उन्मुख, चर्चा आधारित व संपुष्ट बनाया जाएगा। पाठ्यक्रम में भाषा, विज्ञान व गणित के साथ बुनियादी कला, शिल्प, खेले भाषा-साहित्य, संस्कृति व मूल्य शामिल रहेंगे। इस का उद्देश्य मूल्य आधारित समग्र शिक्षण के साथ वैज्ञानिक स्वभाव का विकास और भारत के युवाओं का कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना है। यह नीति राष्ट्र के मेक इन इण्डिया, स्किल इण्डिया, स्टार्टअप इण्डिया और आत्मनिर्भर भारत के मिशन को साकार बनाने के लिए मानवीय मूल्यों के साथ ज्ञान-विज्ञान अनुसंधान, तकनीक व नवाचार को समाहित करते हुए भारत को विश्व बनने के संकल्प में पथ प्रवर्तक सिद्ध होगी।

नई शिक्षा नीति 2020 : राज/ राष्ट्र भाषा हिन्दी : कार्यान्वयन :- सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का प्रयोग उतरोत्तर बढ़ रहा है किन्तु अभी भी काफी काम अंग्रेजी में हो रहा है। राजभाषा नीति का उद्देश्य है कि सामान्यत: सरकारी कामकाज में अधिकाधिक हिन्दी का प्रयोग हो। यही भारतीय संविधान की मूल भावना के अनुरूप होगा। कहने की आवश्यकता नहीं है कि जन साधारण की भाषा में सरकारी कामकाज करने से विकास की गति तेज होगी और प्रशासन में पारदर्शिता आएगी।

वर्तमान युग में कोई भी भाषा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से जुड़े बिना नहीं पनप सकती। यह स्पष्ट है कि वर्तमान समय में केंन्द्र सरकार के कार्यालय में कम्प्यूटर-ई-मेल, बेबसाइट सहित सूचना प्रौद्योगिकी सुविधाएँ उपलब्ध होने से वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों में अधिक से अधिक हिन्दी का प्रयोग करना और भी आसान हो गया है।

वार्षिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिंदु विशेष रूप से विचारणीय हैं -

1. यह जरूरी है कि संसदीय राजभाषा समिति की रिपोर्ट के नौ खंडों पर जारी किए गए राष्ट्रपति के आदेशों का केन्द्र सरकार के कार्यालय द्वारा अनुपालन किया जाए।

2. संबंधित विभाग वैज्ञानिक व तकनीक साहित्य हिन्दी में तैयार करवाने के लिए आवश्यक कदम उठाए और उसे जनसाधारण के उपयोग हेतु उपलब्ध करवाने के लिए आवश्यक उपाय करें।

3. हिन्दी भाषा/हिन्दी टंकण/आशुलिपिक के प्रशिक्षणों में तेजी लाई जाए और सभी संबंधितों को प्रशिक्षण दिया जाए।

4. राजभाषा विभाग द्वारा बताए जा रहे विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों में केन्द्र सरकार के कार्यालय नियमित रूप से अपने कर्मचारियों को नामित करें और नामित कर्मचारियों को निर्देश दे कि वे नियमित रूप से कक्षाओं में उपस्थित रहे और पूरी तत्परता से प्रशिक्षण प्राप्त करें तथा परीक्षाओं में बैठे। प्रशिक्षण के बीच में छोड़ने या परीक्षाओं में न बैठने वाले मामलों से कड़ाई से निपटा जाए।

5. केंद्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान द्वारा केन्द्रीय सचिवालय राजभाषा सेवा के अधिकारियों के लिए उनकी पदोन्नति के समय 06 सप्ताह 30 (कार्यदिवस) का प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाता है।

6. केन्द्र सरकार के कार्यालय अपने केन्द्रीय सेवाओं के प्रशिक्षण संस्थानों में राजभाषा हिन्दी में प्रशिक्षण की व्यवस्था उसी स्तर पर करें जिस स्तर पर लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी में कराई जाती है। वे अपने विषयों से संबंधित साहित्य का सृजन हिन्दी में करवाएँ ताकि प्रशिक्षण के बाद अधिकारी/कर्मचारी अपना सरकारी कामकाज सुविधापूर्वक राजभाषा हिन्दी में कर सके। इस वार्षिक कार्यक्रम में क, ख, ग, क्षेत्र के लिए केन्द्र सरकार के सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अनिवार्यत: हिन्दी माध्यम से प्रशिक्षण दिए जााने हेतु लक्ष्य निर्धारित किए गए है। इसस संबंध में अनुपालन हेतु संबंधित प्रशिक्षण केन्द्रों को आवश्यक दिशानिर्देश जारी किए जाने की आवश्यकता है।

7. कार्यशालाओं का आयोजन कर सभी कार्मिकों को राजभाषा नीति की जानकारी दी जाए जिससें वे अपने दायित्वों को अच्छी तरह निभा सके।

8. केन्द्र सरकार के कार्यालय अपने विषयों से संबंधित संगोष्ठियाँ हिन्दी माध्यम में आयोजित करें।

9. संबंधित अधिकारियों व राजभाषा विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों (उप सचिव/निदेशक/संयुक्त सचिव) द्वारा केन्द्र सरकार के कार्यालयों का समय-समय पर राजभाषा संबंधी निरीक्षण किया जाए।

10. देश भर में कार्यरत नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ (नरकास) हेतु राजभाषा विभाग द्वारा संयुक्त नराकास वेबसाइट (**http/narakasrajbhasha gov.in**) का निर्माण किया गया है यह वेबसाइट पूर्णत: नि:शुल्क है। सभी नराकास इस वेबसाइट पर अपना नराकास संबंधी डाटा (सूचना) साझा कर सकती है। नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियाँ बनाने का उद्देश्य केन्द्र सरकार के देश भर में फैले कार्यालय में राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने और राजभाषा नीति के कार्यान्वयन के मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ को दूर करने के लिए एक संयुक्त मंच प्रदान करना है। इस मंच पर नराकास के सदस्य हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए उनके द्वारा अपनाई गई उत्तम रीतियों के बारे में जानकारी पर विचार-विमर्श करके तथा उसका आदान-प्रदान करके अपनी उपलब्धियों के स्तर में सुधार ला सकते हैं। वर्ष में समिति की दो बैठकें आयोजित की जाती हैं। नगर विशेष में स्थित केन्द्र सरकार के कार्यालयों के प्रशासनिक प्रमुखों द्वारा इस सीमित की बैठकों में व्यक्तिगत तौर पर सहभागिता करना अपेक्षित है। राजभाषा नियम 1976 के नियम 12 के द्वारा प्रशासनिक प्रमुखों को राजभाषा नीति के कार्यान्वयन और इस संबंध में समय-समय पर राजभाषा विभाग द्वारा जारी आदेशों के अनुपालन का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। राजभाषा विभाग (मुख्यालय) क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालयों के अधिकारी इन बैठकों में भाग लेते हैं। राजभाषा विभाग द्वारा तय किए गए मानदंडों के अनुसार राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में सर्वोत्कृष्ट कार्य करने वाली नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों को राष्ट्रीय स्तर पर 'राजभाषा कीर्ति पुरस्कार' तथा क्षेत्रीय स्तर पर 'राजभाषा पुरस्कार' देकर सम्मानित किया जाता है। नराकास की बैठकों में विचारार्थ बिन्दुओं की चेक लिस्ट नराकास के गठन के समय आवश्यक कार्यवाही सुनिश्चित करने हेतु उपलब्ध कराई जाती है।

11. तिमाही प्रगति रिपोर्ट प्रत्येक तिमाही की समाप्ति के 30 दिनों के भीतर राजभाषा विभाग को आनलाइन उपलब्ध करा दी जाए। इसी प्रकार, वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट 30 जून तक अवश्य उपपलब्ध करा दी जाए। केन्द्र सरकार के सभी कार्यालय से अपेक्षित है कि तिमाही प्रगति रिपोर्ट व वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट आनलाइन ही भेजे। यह प्रणाली विभाग की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

12. मंत्रालय/विभाग अपने यहाँ हिन्दी सलाहकार समितियों का गठन/पुनर्गठन शीघ्रातिशीघ्र करें तथा उनकी बैठकें में नियमित आधार पर करना सुनिश्चित करें। इन बैठकों में माननीय सदस्यों के विचारार्थ राजभाषा विभाग द्वारा दिए गए महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की चैक लिस्ट को ध्यान में रखा जाए। यह चैक लिस्ट राजभाषा विभाग की वेबसाइट **www.rajbhasha.gov.in** पर उपलब्ध

है। इन बैठकों में लिए गए निर्णयों का अनुपालन किया जाए।

13. राजभाषा के प्रचार एवं प्रसार के बारे में सरकार की नीति यह है कि सरकारी कामकाज में हिन्दी को प्रेरणा, प्रोत्साहन और सद्भावना से बढ़ाया जाए। इसके साथ ही, नियमों और आदेशों के अनुपालन में दृढ़ता बरती जानी चाहिए। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि राजभाषा नियम 1976 के नियम 12 के तहत केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व है कि वह सूचित करें कि राजभाषा अधिनियम और राजभाषा नियम तथा इनके अंतर्गत जारी निर्देशों का समुचित अनुपालन हो यदि कोई कर्मचारी या अधिकारी जानबूझकर राजभाषा के बारे में लागू प्रावधानों की अवहेलना करता है तो प्रकरण से संबंधित नियमों एवं आदेशों के उल्लंघन होने के आधार पर कार्रवाई की जा सकती है।

14. केंद्र सरकार के कार्यालयों द्वारा जो भी विज्ञापन अंग्रेजी/ क्षेत्रीय भाषाओं में दिए जाते हैं उन्हें हिंदी भाषा में भी अनिवार्य रूप से प्रकाशित कराया जाए। हिंदी के समाचार-पत्रों में हिंदी में ही विज्ञापन दिए जाए तथा अंग्रेजी समाचार पत्र में अंग्रेजी में विज्ञापन दिए जाएँ। जब अंग्रेजी समाचार पत्र में विज्ञापन दिए जाते हैं तो विज्ञापन के अंत में या अवश्य उल्लेख कर दिया जाए कि अधिसूचना/विज्ञापन/रिक्ति संबंधी परिपत्र का हिंदी रूपांतर वेबसाइट पर उपलब्ध है। इसके लिए पूर्ण लिंक भी दिया जाए।

15. केंद्र सरकार के कार्यालयों द्वारा यह सूचित किया जाए कि सभी कंप्यूटर में यूनीकोड की सुविधा हो ताकि उन पर हिंदी में सरलता और सहजता से काम किया जा सके।

16. प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी और माननीय गृह मंत्री श्री अमित शाह जी के कुशल मार्गदर्शन तथा प्रेरणादायक नेतृत्व में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने निम्नलिखित कार्यकलापों की शुरुआत करके कोविड की चुनौती को अवसर में बदल दिया है।

अपनी राजभाषा नीति और प्रधानमंत्री जी द्वारा प्रयुक्त स्मृति विज्ञान से प्रेरणा लेकर निम्नलिखित स्तंभों पर आधारित '12 प्र' की रूपरेखा और रणनीति को तैयार किया गया है।

प्रेरणा, प्रोत्साहन, प्रेम, प्राइज अर्थात् पुरस्कार, प्रशिक्षण, प्रयोग, प्रचार प्रसार, प्रबंधन, प्रमोशन, पदोन्नति, प्रतिबद्धता, प्रयास।

राजभाषा विभाग के अधिकारीगण विभिन्न राजभाषा बैठकों तथा विभिन्न मंत्रालयों/विभागों/केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों/राष्ट्रीय बैंकों तथा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समितियों की बैठकों में आयोजित होने वाली कार्यशालाओं में उपयुक्त कार्यढाँचे का प्रयोग करते हैं।

राजभाषा विभाग के दो प्रशिक्षण संस्थानों केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान और केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो ने इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफार्म (ई-प्रशिक्षण) के माध्यम से हिंदी भाषा/ हिंदी टंकण/ हिंदी आशुलिपि/ हिंदी अनुवाद में प्रशिक्षण देना प्रारंभ कर दिया है।

राजभाषा विभाग के क्षेत्रीय कार्यान्वयन में कार्यालयों ने डिजिटल प्लेटफार्म (ई-निरीक्षण) के माध्यम से वर्चुअल निरीक्षण प्रारंभ कर दिया है। हिंदी कार्यशाला और नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति नराकास की बैठकों का आयोजन सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के साधनों की बैठक के माध्यम से किया जा रहा है।

केंद्र सरकार के विभिन्न संगठनों के गृह पत्रिकाओं के सहज तथा सुलभ पठन में सुविधा प्रदान करने के लिए राजभाषा विभाग की अधिकारिक वेबसाइट पर ई-पत्रिका पुस्तकालय प्लेटफार्म की शुरुआत की गई है।

प्रधानमंत्री जी के आत्मनिर्भर भारत स्थानीय के लिए मुखर के आवाहन से प्रेरित होकर राजभाषा विभाग स्वदेशी स्मृति आधारित कंप्यूटर अनुप्रयोग सी-डैक पुणे के संगठनों में इसका विस्तार करने के सभी प्रयास कर रहा है इस प्रयोग में और अधिक एकरूपता और उत्कृष्टता लाने के लिए स्वस्थ प्रतियोगिता और पुरस्कारों के माध्यम से भी प्रयास किया जा रहा है।

शिक्षा मंत्रालय के केंद्रीय हिंदी संस्थान और सीडैक पुणे के सहयोग से लीला राजभाषा और लीला को उन्नत करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

नई शिक्षा नीति की स्वीकृति के एक वर्ष के अंदर ही आठ राज्यों के कुछ इंजीनियरिंग कालेजों में भारतीय भाषाओं में अध्यापन प्रारंभ होना भारतीय इतिहास की युगांतकारी घटना है जो सही संदर्भों में मैकाले को खारिज करते हुए भारत के लोगों के लिए देष की जुबान में शिक्षा हो इसका पथ प्रदर्शित करती है। औपनिवेशीकरण की पूरी प्रक्रिया में भाषा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। शिक्षा के भारतीयकरण का अभियान भी भाषा के माध्यम से ही होगा। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस प्रकार के दृढ़ विश्वास का प्रतिपादन है। आजादी के बाद भारत में शिक्षा के तंत्र और प्रक्रिया को राष्ट्रीय अपेक्षाओं के अनुकूल करने की चुनौती थी। इस दिशा में राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न भी

आरंभ हुए।

शिक्षण शोध अनुसंधान काम काज और संप्रेषण की भाषा के विकल्प के रूप में हिदी को मजबूत करने का कार्य भाषा प्रौद्योगिक है कि वर्तमान नीति भाषा के साथ कला की बात कर रही है। इसमें भाषा के द्वारा कला और सांस्कृतिक संवर्धन का लक्ष्य है। यह लक्ष्य स्वाभाविक भी है क्योंकि सांस्कृतिक बोध मातृभाषा में ही संभव है और जब भारतीय भाषाएँ विकसित होती है तो संस्कृति भी विकसित हो जाती है। भारतीय भाषाओं के बढ़ने के साथ सांस्कृतिक बोध के बढ़ने के साथ इस देश के लोगों में एकत्व का भाव दृढ़तर होगा।

नई शिक्षा नीति और हिन्दी तर भारतीय भाषाएँ संरक्षण और संर्वधन

भारतीय भाषाओं पर बल एनईपी की एक महत्त्वपूर्ण प्रमुख विशेषता है। 108 पृष्ठों वाले एनईपी (हिन्दी वाला पाठांतर) के परिचय में ही जिन आधार सिद्धांतों का उल्लेख है उनमें बहुभाषिकता और अध्ययन-अध्यापन के कार्य में भाषा की शक्ति को प्रोत्साहन देना शामिल है। इसी सिद्धांत के मद्देनजर स्कूली शिक्षा से लकेर उच्च शिक्षा तक में 'भारतीय भाषाओं के अध्यापन' के साथ-साथ 'भारतीय भाषाओं के अध्यापन' पर बल दिया गया है। शैक्षणिक मनोविज्ञान के शोध अथवा यूनेस्को रिपोर्ट 2008 के अनुसार मातृभाषा में सीखना आसान होता है क्योंकि इसमें सम्प्रेषण और संज्ञान सहज व शीध्र होता है। मातृभाषा या स्थानीय भाषा में बच्चा चीजों को समझता है जबकि इतर भाषाओं में उसे रटना पड़ता है। यह अकारण नहीं कि अमेरिका, इग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, कोरिया से लेकर चीन आदि दुनिया के विकसित देशों में स्कूली शिक्षा मातृभाषा या स्थानीय भाषा में ही होती है। यहाँ तक कि मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षा के लाभ को देखते हुए उच्चतर शिक्षा का माध्यम भी इन देशों में आमतौर पर उस देश की अपनी भाषा होती है। शिक्षा के माध्यम के रूप में देसी (स्थानीय) भाषाओं के महत्त्व और साथ ही आम जनता की भाषायी परिस्थिति को समझते हुए एनईपी भी भारतीय भाषाओं में उच्चतर शिक्षा की वकालत करता है। एनईपी 2020 के चौदहवें अध्याय उच्चतर शिक्षा में समता और समावेश में स्पष्ट उल्लेख है भारतीय भाषाओं और द्विभाषी रूप से पढ़ाए जाने वाले अधिक डिग्री पाठ्यक्रम विकसित करना। उच्चतर शिक्षा में भारतीय भाषाएँ कितनी जरूरी और महत्त्वपूर्ण हैं, इस बात को दुबारा बाईसवें अध्याय 'भारतीय भाषाओं, कला और सस्कृति का सवंधर्न में रेखांकित करते हुए कहा गया है कि मातृभाषा स्थानीय भाषा का शिक्षा के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करने और /या कार्यक्रमों को द्विभाषित रूप में चलाने के लिए निजी प्रशिक्षण संस्थानों को भी प्रोत्साहित किया जाएगा एवं बढ़ावा दिया जाएगा। यहाँ उल्लेखनीय है कि इन प्रावधानों के कार्यान्वयन की दिशा में तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ. पोखरियाल की अध्यक्षता में एक बैठक के बाद यह घोषणा की गई थी कि भारतीय प्रौद्योगिकी सस्थान (आईआईटी) और राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी सस्थान (एनआईटी) जैसे कुछ सस्थानों में आगामी शैक्षणिक सत्रों 2021-22 से मातृभाषा में इजीनियरिंग पाठ्यक्रम की पढ़ाई शुरू कराई जाएगी।

भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा के लिए हमें विभिन्न भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षण सामग्री लिखित और श्रव्य-दृश्य (ऑडियो-विजुअल) तरह की सामग्री की आवश्यकता होगी। एनईपी इस जरूरत के बारे में पूर्ण सजग है और कहता है, 'सर्वसाधारण को विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में उच्चतर गुणवत्ता वाली अधिगम सामग्री और अन्य महत्त्वपूर्ण लिखित एवं मौखिक सामग्री उपलब्ध हो सके, इसके लिए एक इंस्टीटयूट ऑफ ट्रांसलेशन एंड इटंरप्रिटेशन (आई.आई.टी.आई) की स्थापना की जाएगी। इन सबके अलावा भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं (और उनके साथ उनसे जुड़े साहित्य, संस्कृति व कला) को बढ़ावा देने के लिए भी एनईपी विशेष सजग है। इसमें कहा गया है कि भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित प्रत्येक भाषा के लिए अकादमी स्थापित की जाएगी। जिनमें हर भाषा से श्रेष्ठ विद्वान एवं मूल रूप से वह भाषा बोलने वाले लोग शामिल रहेंगे। एनईपी आठवीं अनुसूची के इतर भी भाषायी स्तर पर लोकतांत्रिक है, और बहुत कम बोली जाने वाली भाषाओं के प्रति भी पूर्ण सवंदेनशील है। इसमें कहा गया है कि आदिवासी और विलुप्तप्राय भाषाओं के संरक्षण और बढ़ावा देने के लिए प्रौद्योगिकी की मदद से विशेष प्रयास किए जाएँगे। सभी भारतीय भाषाओं और उनसे सबंधित समृद्ध स्थानीय कला एवं संस्कृति के संरक्षण हेतु सभी भारतीय भाषाओं एवं और उनसे सम्बन्धित स्थानीय कला एवं संस्कृति का आधारित प्लटेफार्म पोर्टल/विकिपीडिया के माध्यम से दस्तावेजीकरण किया जाएगा। नि:संदेह एनईपी के उपयुक्त बिंदु भारतीय भाषाओं तथा संस्कृति दोनों की मजबूती की दिशा में मील के पत्थर साबित होगी।

एनईपी के अध्याय चार में यह भाषा स्कूलों में छठीं क्लास से शुरू कर कम से कम दो साल के लिए संस्कृत या शास्त्रीय

भाषाओं का अध्ययन कराया जाएगा। यह भी स्वागत योग्य है कि उच्च शिक्षा में भी संस्कृत पर बल दिया जाएगा। बल्कि सस्कृत के महत्त्व को समझते हुए इसे अन्य समकालीन और प्रासंगिक विषयों जैसे कि गणित, खगोल विज्ञान, दर्शन, भाषा विज्ञान आदि से जोड़ा जाएगा।

हालाँकि भारत की पहली शिक्षा नीति में भी त्रिभाषा में शिक्षा व्यवस्था की परिकल्पना दौलत सिंह कोठारी आयोग ने रखी थी, कतिपय राजनैतिक कारणों से पहली शिक्षा नीति भी न तो त्रिभाषा फार्मूला और न ही मातृभाषा में अनिवार्य शिक्षा का मसौदा अपना पाई किंतु वर्षों की तपस्या और माँग अनुरूप वर्ष 2020 में जारी शिक्षा नीति ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी एवं शिक्षा मंत्री या कहें मानव संसाधन विकास मंत्री रमेशचंद्र पोखरियाल निशंक द्वारा प्राथमिकी शिक्षा में मातृभाषा की अनिवार्यता को अपना कर भारत भर में निज भाषा में शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित किया है।

नई शिक्षा नीति में जिस तरह से प्राथमिक तौर पर मातृभाषा के प्रभाव को समायोजित करते हुए हिंदी भाषा के महत्व को भी सम्मिलित किया है के प्रभुत्व को स्थापित करते हुए भविष्य में हिंदी युग की स्थापना का कारक बनेगा। हिंदी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं का भी महत्व बने और अंग्रेजी का आधिपत्य समाप्त हो यही मूल ध्येय है।

हिंदी युग का आरंभ तभी माना जाएगा, जब बाजार हिंदी भाषा सहित भारतीय भाषाओं को अपनाएगा। भाषा जब तक बाजार अपनाता नहीं तब तक भाषा का विकास खोखला है। उदाहरण के लिए चीन को देखें, चाइनीज भाषा को स्थानीय बाजार ने अपना रखा है, वे अपना कार्यव्यवहार चाइनीज भाषा में करते हैं तो उनका सास्कृतिक ढाँचा भी सुरक्षित है और भाषा का महत्व भी स्थापित है। ऐसे ही भारतीय बाजार को हिंदी भाषा को स्वीकारना होगा, क्योंकि भारत भी विश्व का दूसरा बड़ा बाजार है।

आधुनिकीकरण की भ्रमपूर्ण व्याख्याओं के कारण हमारी नई पीढ़ी में धुरीहीनता आ रही है। वह न तो परंपरा से पोषण पा रही है और न ही उसमें पश्चिम की सांस्कृतिक विशेषताएँ नजर आ रही हैं। मातृभाषा में शिक्षण के साथ अनेक अन्य आवश्यकताएँ भी हैं जो हर भारतीय को भारत से जोड़ने और विश्व कोस समझने में सक्षम होने के लिए आवश्यक है। मातृभाषा का इसमें अप्रतिम महत्व है, इससे इनकार बेमानी होगा।

ऐसे में शिक्षा में राजनीतिक लाभ को ध्यान में रखकर बदलाव करने के स्थान पर शैक्षणिक दृष्टिकोण से आवश्यक बदलाव लाना आज की परिस्थिति में सबसे सराहनीय कदम होगा। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में हिंदी का पर्याप्त प्रचार एवं बाजार आधारित शिक्षा व्यवस्था की अनुपालना अनिवार्यत: होना चाहिए, इसी के सहारे भारत का लोकतांत्रिक और सास्कृतिक विकास संभव है।

नई शिक्षा नीति का प्रमुख लक्ष्य यह भी है कि 2035 तक 50 प्रतिशत बच्चे उच्च शिक्षा में दाखिला लें। वर्तमान परिस्थितियों में विद्यार्थियों और युवाओं की जरूरतों को देखते हुए 'मल्टीपल एट्री एग्जिट सिस्टम' का प्रावधान रखा गया है ताकि कोई भी विद्यार्थी अगर किसी कारण से अपना अध्ययन बीच में छोड़े देता है तो उसे प्रथम वर्ष के बाद सर्टिफिकेट द्वितीय वर्ष के बाद 'डिप्लोमा' तथा तृतीय/चतुर्थ वर्ष के बाद डिग्री प्रदान की जा सके। अगर कोई विद्यार्थी एक निश्चित अवधि के बाद अपना अध्ययन पुन: आरंभ करना चाहता है तो वह अपनी शिक्षा को जारी रख सकता है। इससे उसके 'क्रेडिट बैंक' में रखा क्रेडिट स्कोर उसके काम आएगा।

नई शिक्षा नीति वर्षों बाद व्यापक स्तर पर भाषा के विकास के सवालों को उठाती है जो उससे पूर्व के कोठारी आयोग व की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मुखर होकर नहीं उठाए गए भारत सरकार द्वारा जारी यह शिक्षा नीति भारत की भावी शिक्षा व्यवस्था और राष्ट्र के उन्नयन के लिए मार्ग प्रशस्त करने वाली नीति है यह नीति ईमानदारी पूर्वक क्रियान्वयन में नही लाई जाती है तो यह अपने पूर्व की नीतियों के समान केवल महज दस्तावेज बनकर रह जाएगी जैसा कि इतिहास के आइने में वर्धा शिक्षा योजना के साथ हुआ था जिसमें मातृभाषाओं के प्रयोग सहित कई ऐसे बिंदुओं को उठाया गया था जो सही क्रियान्वित नहीं होने के कारण सिर्फ सुझाव व दस्तावेज ही बनकर रह गए। ऐसे में आवश्यक है कि नई शिक्षा नीति को प्रभावी तरीके से लागू किया जाएगा इससे न केवल हमारी भाषाए समृद्ध होगी बल्कि हमारी युवा पीढ़ी भी भाषाई बंधनों से आजाद होकर अपनी मातृभाषाएँ क्षेत्रीय भाषा व हिन्दी के माध्यम से ज्ञान के नए रास्तों को तलाश सकेगी व राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे सकेगी।

एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
डी. ए. वी. कालेज,
अमृतसर-143001 पंजाब
मो. - 9501871144

कुमाउँनी लोकसाहित्य में ज्ञान परम्परा

- प्रभा पंत

जन्म - 7 जुलाई 1962।

शिक्षा - एम.ए,. पीएच.डी।

रचनाएँ - सत्रह पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान - राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य पाठकों और शोधार्थियों को कुमाउँनी लोकजीवन में परिव्याप्त ज्ञान की परम्परा से परिचित कराना है। उन्हें यह भी अवगत कराना है कि लोकसाहित्य किस प्रकार बाल्यकाल से ही बुद्धिचातुर्य, प्रत्युत्पन्नमति, तथा बौद्धिक विकास में सहायक बनकर, बच्चों के लिए ज्ञानार्जन में सहयोगी बना रहा है, और बना रह सकता है।

किसी भी समुदाय, क्षेत्र अथवा देश के लोकसाहित्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन उस समाज की बोली/भाषा और उसकी संस्कृति। निश्चित ही लोकसाहित्य ने भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में नवजात शिशु की भाँति घुटनों के बल चलने का प्रयास किया होगा। समय की गति के साथ गतिमान होता हुआ वह एक जिज्ञासु बालक की भाँति विकसित होकर, उत्तरोत्तर वैविध्यपूर्ण बनता चला गया होगा और युवावस्था में पदापर्ण करने तक उसने इस छोर से-उस छोर तक तक की यात्राएँ प्रारम्भ कर दी होंगी। प्रस्तुत बिम्ब के परस्पर आदान-प्रदान, व्यावहारिक एवं सामाजिक ज्ञान के परिणामस्वरूप वह मानव समाज को सुसंस्कृत बनाता हुआ, शनैः-शनैः विकासपथ पर अग्रसर होता चला गया; प्राचीन एवं पौराणिक ग्रंथ, अभिलेखादि ही नहीं लोकसाहित्य भी इसका साक्षी है। ऐसे अनेक तथ्य जिनकी जानकारी हमें भित्तिचित्रों, भोजपत्रों, शिलालेखों अथवा ऐतिहासिक ग्रंथों द्वारा भी नहीं मिल पाती लोकसाहित्य के अनुसंधान द्वारा सहज ही प्राप्त हो जाती है।

लोकसाहित्य ज्ञान का वह माध्यम है जो मौखिक परम्परा में विकसित होता हुआ, किंचित परिवर्तन के साथ परिवर्धित होता रहा, तथा उत्तरोत्तर एक पीढ़ी से-दूसरी पीढ़ी तक पहुँचता रहा। प्रकाशन के संसाधन उपलब्ध होने के पश्चात् लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति-मर्मज्ञों द्वारा इसे संकलित करके संरक्षित किया जाने लगा। भारतवर्ष के उत्तरी भाग में स्थित देवभूमि उत्तराखण्ड में भी लोकसाहित्य की समृद्ध परम्परा रही है। उत्तराखण्ड राज्य दो मण्डलों में विभक्त है जो गढ़वाल एवं कुमाऊँ नाम से विख्यात हैं।

किसी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र का सर्वांगीण विकास उसके बालक-बालिकाओं के सर्वांगीण विकास पर निर्भर करता है। एक सुदृढ़ राष्ट्र की नींव होते हैं, वहाँ के स्वस्थ्य एवं हृष्ट-पुष्ट बच्चे। हमारे पूर्वज इस सत्य से पूर्णतः भिज्ञ थे; अतः उन्होंने जहाँ एक ओर लोककथाओं, लोकोक्तियों तथा मुहावरों आदि के माध्यम से अपने समुदायों तथा परिवारजनों को वनवासी जीवनयापन के कौशल में पारंगत किया, वहीं दूसरी ओर बालमन के अनुरूप अपने बालक-बालिकाओं के बौद्धिक विकास हेतु विविध मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद माध्यम भी विकसित किए। उन बालप्रिय माध्यमों में से एक माध्यम है, पहेली। पहेली लोकसाहित्य की प्रमुख विधाओं में से एक महत्त्वपूर्ण विधा है। रामनरेश त्रिपाठी की मान्यता थी कि पहेली बुद्धि पर शान चढ़ाने का यंत्र या स्मरण शक्ति बढ़ाने की कला है। पहेली का आरम्भ वेदकाल से ही हो गया था। पहेलियों की विशेषताएँ बताते हुए लोकसाहित्यविद् मोहनलाल बाबुलकर जी ने लिखा है, 'पहेलियाँ वाग् विलास की वस्तु हैं। बुद्धि परीक्षा के साधन हैं। इससे बुद्धि व्यायाम होता है, तथा रसनिष्पत्ति रहित मनोरंजन भी होता है।' भारतीय लोकसाहित्य में पहेलियों का अक्षय भंडार है। कुमाउँनी लोकजीवन में भी पहेलियों की समृद्ध परम्परा रही है।

'कोस-कोस में पानी बदले, चार कोस पर बानी' यह कहावत 'पहेली' शब्द पर भी चरितार्थ होती दिखाई देती है; अतः बोलियों में उच्चारणगत भिन्नता के कारण कुमाऊँ में पहेली को आण, आ्हण, ऐन तथा ऐण आदि कहकर संबोधित किया जाता है। लोककथाओं, लोकगाथाओं, लोकगीतों, लोकोक्ति-मुहावरों की भाँति विषय वैविध्य की दृष्टि से पहेलियों को भी उपयोगी वस्तु संबंधी, खाद्य-पदार्थ संबंधी, प्रकृति संबंधी, कृषि संबंधी, शारीरिक अंग-प्रत्यंग संबंधी, पशु, पक्षी तथा कीटादि संबंधी वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहेलियों की विशेषता है कि इनमें ध्वन्यात्मकता के साथ ही काव्यात्मकता के भी दर्शन होते हैं। यद्यपि पहेलियाँ स्वयं में पूर्ण वाक्य होती है, किन्तु इनमें विषय का संकेतमात्र होता है। पहेलियों को लक्षणा और व्यंजना के आधार पर सहज ही

सुलझाया जा सकता है। बुद्धिप्रयोग के कारण पहेलियाँ बालक–बालिकाओं का बौद्धिक विकास करने में सहायक होती हैं। इसके अतिरिक्त एक ओर, बच्चों के बुद्धिकौशल को विकसित करती हैं और दूसरी ओर, अपनी बोली–भाषा, परिवेश, तथा लोकजीवन से परिचित कराती हुई, उन्हें सहज ही अपने मूल से भी जोड़ देती हैं।

लोकसाहित्य की विशेषता है कि उसमें क्षेत्र विशेष का लोकजीवन प्रतिबिम्बित होता दिखाई देता है। लोकसाहित्य रूपी विशाल वृक्ष की लोकप्रिय शाखाओं में से दो ऐसी प्रमुख शाखाएँ हैं जो बालमन को विशेषत: आकर्षित एवं प्रभावित करती हैं। इनमें से एक है, लोककथा और दूसरी है, पहेली। पहेलियाँ जहाँ एक ओर उनका मनोरंजन करती हैं, वहीं दूसरी ओर वे बालक–बालिकाओं को अपने घर–परिवार, परिवेश, प्रकृति, समाज एवं स्वयं से भी जोड़ती हैं। कुछ पहेलियाँ ऐसी हैं, जैसे खा्ण हूँ सबै खानी बीं क्वे नि धरन–लूण (खाता हर कोई है, किन्तु बीज कोई नहीं रखता अर्थात् 'नमक'), या जा्मण हूँ त जा्मूँ पै पुङनि दिन–दै (जमता तो है पर अंकुरित नहीं होता–दही)। पार गध्या में एक मैंस टाँक पाड़ि भै रौ–लिडुण (बरसाती नाले के किनारे एक व्यक्ति सिर पर पगड़ी बाँधे बैठा है, फर्न की प्रजाति विशेष का पौधा) इन पहेलियों का उत्तर खोजते हुए, बच्चा पुस्तक पढ़े बिना ही सीख लेता है कि नमक पेड़ पर नहीं लगता और न दही को खेत में उगाया जाता है। इस तरह पहेलियाँ उसे जिज्ञासु बनाती हैं और अंतत: वह उत्सुक होकर पूछ ही लेता है कि नमक आता कहाँ से है? दही कहाँ से आता है, अथवा कैसे जमता/बनता है? जब कभी वह नदी–नाले के निकट जाता है, या उसके समीप से गुजरता है तो अनजाने ही उसकी आँखें उस फर्न को खोजना प्रारम्भ कर देती हैं और जैसे ही उसकी दृष्टि 'लिडुण' अर्थात् उस 'फर्न' पर पड़ती है, जिसका काल्पनिक चित्र पहेली सुनते हुए उसने मन–ही–मन बनाया था तो उसे प्रत्यक्षत: देखकर, उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता।

एक ठाड़ि, एक पड़ि एक दमादम नाचनै–र्वोट। (एक खड़ी, एक पड़ी एक नाच रही है– रोटी) इस पहेली का उत्तर जानने के बाद वह सहज ही इसे स्वीकार नहीं कर लेता, वरन् इस पहेली के उत्तर की पुष्टि के लिए, जब तक वह मिट्टी के चूल्हे पर अपनी माँ, दादी, चाची या ताई को रोटी बनाते हुए नहीं देख लेता, तब तक संतुष्ट नहीं होता। एक बार जब वह किसी पहेली के उत्तर से संतुष्ट हो जाता है तो उसका कोमल मन कल्पना लोक में विचरण करता हुआ, पहेलियाँ गढ़ने का प्रयास करने लगता है, और अंतत: कोई–न–कोई पहेली गढ़ ही लेता है। तभी तो लाल बा्कर पाणि पिबेर उनौ, सुकिल बा्कर पाणि पिण हूँ जनौ– पूड़ी/लगड़ (लाल बकरी पानी पीकर आ रही है और सफेद बकरी पानी पीने जा रही है–अर्थात् पूड़ी)। इस पहेली को सुनकर वह सोचता है, यह पहेली ऐसे भी तो पूछी जा सकती है– पाणि पिण हूँ सेतू गौ, लाल हैबेर ऐ गौ– पूड़ी (पानी पीने सफेद गया, लाल होकर लौटा– पूड़ी) और ऐसे भी–ताल में ताल, झाल में झाल, मा्थ बै टक्कर फूल गुलाब–लगड़/पुरि (ताल में ताल, झाल में झाल, ऊपर से लगी टक्कर खिल गया गुलाब– पूड़ी)।

इस तरह पहेलियाँ मित्र अथवा सखीवत् खेल–ही–खेल में बच्चों का ज्ञानवर्धन करने के साथ ही उनका बौद्धिक विकास करने तथा कौशल विकसित करने में भी सहायक होती हैं। लोक में, लोक के लिए लोकमानस में उपजी ये पहेलियाँ लोकजीवन को प्रतिबिम्बत करने के कारण अपने लोक का परिचय देते हुए, जहाँ एक ओर यह बताती हैं कि वह किस क्षेत्र से संबंध रखती हैं, वहीं दूसरी ओर यह प्रत्येक क्षेत्र के लोकजीवन में परिव्याप्त साम्यता एवं वैविध्य के कारणों को भी सिद्ध करने में सक्षम होती हैं। मनोरंजक होने के कारण पहेलियाँ प्रत्येक आयुवर्ग के लोगों को आकर्षित करती हैं।

जिस तरह आज माता–पिता तथा शिक्षक अपने बच्चों/विद्यार्थियों को खिलौनों, चित्रों, मोबाइल, आइपैड आदि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से शिक्षित करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं; उसी प्रकार सभ्यता के प्रारम्भिक काल में भी माता–पिता तथा गुरुजनादि बच्चों को शिक्षित करने के लिए, तत्कालीन उपलब्ध संसाधनों द्वारा उनका मनोरंजन करते हुए, रोचक ढंग उनका ज्ञानवर्धन करने के लिए भी प्रयासरत रहते थे। समूह में बैठकर पहेली पूछना, प्रतियोगिता जीतने के लिए प्रतिभागियों द्वारा नवीन पहेलियाँ गढ़ना जैसे, ठेकिम ठेकि, मा्थ बै भैगौ हरकू नेगि– गन्ना (ठेकि अर्थात् दही जमाने के उपयोग में आने वाला लकड़ी का पारम्परिक पात्र, ठेकी के ऊपर ठेकी, उसके ऊपर बैठा हरकू नेगी अर्थात् गन्ना)। देखण में गठिल खा्ण में रसिल– रिखु/रिख (देखने में गठीला, खाने में रसीला अर्थात् गन्ना)। भैंस पसरि रौ खा्उन, ज्यौड़ न्है गौ दूर–कद्दू की बेल (भैंस पसरी है तलैया में, रस्सी चली गई दूर–कद्दू की बेल)। एक मैंसा्क कल्ज में बाव–आम (एक व्यक्ति के कलेजे/सीने में बाल–आम)। लाल बटू में चान्दिक सिक्क–मर्च/(लाल बटुए में चाँदी के सिक्के–मिर्च)। धरतिक मुणि दूदैकि कसिनी–मुल/मूली (जमीन के नीचे दूध की पतीली–गोल मूली) सुकिल बा्कर्ा्क ख्वार में सौंव–मूली (सफेद बकरी के सिर पर हरी टहनियाँ–मूली)। नाना–न्ान सालिगिराम लुकुड़ पैरनी थानू थान– प्याज (छोटा–सा सालीग्राम, पहने कपड़े कई थान–प्याज)। न्ानू–न्ान रामदास, लुकुड़ पैरूँ सौ–पचास–प्याज (छोटे से रामदास, पहने कपड़े सौ–पचास–प्याज)। अगास मारि पताव पायो, यो जोगिल लै ठाड़ै खायो–अखोड़ (आकाश में मारा, पाताल में मिला, इसे जोगी भी खाए खड़ा–अखरोट)। लुतणि गोरुक चुपड़ बा्छ–गहत (दुबली–पतली गाय की चिकनी बछिया–कुल्थ)। का्इ तौलिम लाल भात–बेडु (काली पतीली में लाल भात–अंजीर)। सबुहैं ज्यौ्ठ मैं,

पिठिक द्‌द्‌, इज हुणि मैंल देखि्‌ खतड़िम बा्‌ब–दूध, दही, मक्खन (सबसे बड़ा मैं, बड़ा भाई, माँ को जन्म लेते मैंने देखा–दूध, दही, मक्खन)। पेड़ धमरधुस पात चकैया, देखण में रँगिल–चंगिल खा्‌ण में मिट्ठैया– क्यव' (पेड़ लम्बा–घना पत्ते चौड़े, देखने में रंग–बिरंगा खाने में मीठा–केला)। धानसिडैक च्यौ्‌ल मानसिङ ऐ रौ, कठौतिक गंग बै हुलरि रौ; ऊँछा त अओ नतरि शीतलाखेत हूँ जनौ– चाड्वौ्‌क माण (धानसिंह का बेटा मानसिंह आया है, कठौती की गंगा से उतर रहा है, आना है तो आओ वरना शीतलाखेत को जा रहा है–चावल का माण)।

प्रयोग में आने वाली वस्तुएँ–अहा रे! अहा! छ खुट्टी बाँ, पुठम पुछड़ी तेरि, यो तमास काँ–तराजू (वाह रे वाह! छ पैर हैं और पीठ में पूछ है तमरी, एसा तमासा कहाँ–तराजू)। सुकिलो–सुकिल नस्स जस, द्विये खाप एक्कै जा–सिगरेट (सफेद–सफेद नस जैसा, दो खप एक जाता है–सिगरट)। एक बुड़ी रत्ती ब्याँण ना्‌चै– छाँ रिड़ूणी/फिरका (एक बुढ़िया सुबह–सुबह नाचती है– मथनी)। एक पर्यातम्‌ तीन चम्मच, बार अंड, बतूँछै बता नतरि खलै डंड–घड़ि (एक चौड़ी थाली में तीन चम्मच बारह अंडे, बताता है तो बता नहीं तो नहीं तो पड़ेगा डंडा–घड़ि)। पाणि खितो त गइ जाँ, आ्‌ग लगाओ त जइ जाँ–कागज (पानी डालो तो गल जाता है आग तगाओ तो जल जाता है–कागज)। पेटम पाणि ख्वारन आ्‌ग–हुक्का–चिलम (पेट में पानी सिर में आग– हुक्का–चिलम)। टेपुलिया पुछड़ि में डेढ़ बाव–स्यूड़–धा्‌ग (टेपुलिया के पूछ में डेढ़ बाल–सुई–धागा)। लमकनी मैंसै्‌कि, चमकनी धृति–स्यूड़–धा्‌ग (लम्बे आदमी की चमकती धोती–सुई–धागा)। आ्‌पण का्‌वपट्ट मूख सुकिल–मुसव (खुद काला परन्तु मुँह सफेद–मूसल)। ठनठन गोपाल, अणकसी चाल–रुपया–पैसा (पास उसके कुछ नहीं, अनोखी उसकी चाल–रुपया–पैसा)। एक मैंस रत्तै–ब्याव सरग चै रूँ–उखव (एक आदमी सुबह–शाम स्वर्ग की ओर निहारे–ओखली)। पूरबै्‌कि राणि मूख बटिक ब्याणी–उखल (पूरब की रानी मुँह से बच्चे जनती–ओखली)। तीन भाइनै्‌कि एक्कै पाग/ट्‌पि–जाँति/जा्‌तुर (तीन भाइयों की एक ही पगड़ी–तिपाई)। एक सींगी बल्द पुर परवार कैं पा्‌ऊँ–चा्‌क (एक सींग वाला बैल पूरे परिवार को पालता है–हथ चक्की)। बिन खुटै हिटूँ, नि मुखै बुलाँ–जाँठि (बिना पैर के चलता है और बिना मुँह के बोलता है–लाठी)। आपूँ छ लुतका–पुतका काम करूँ साप–झाड़ू/लिपणी–घैंसणी (खुद तो है दुबला–पतला/लचीला–पतला पर, काम करता है साफ– झाड़ू/पोंछा)। ना्‌नी–ना्‌नि बा्‌मणिक हात भरी चुड़– झाड़ू (नन्हीं–मुन्नी ब्राह्मणी के चूड़ी भरे हाथ) चर बा्‌करी चर, पाणि नि पिनी त मर–द्यूकि बा्‌ति (चर बकरी चर,पानी नहीं पिएगी तो मर–दिए की बाती)। राजा्‌क कुकुर कै जतुक मारो उतुक भुकूँ–ढोल (राजा के कुत्ते को जितना मारो उतना भौंके–ढोल)। पेटन आ्‌ङुल, ख्वार में ढुङ–अँगुठि (पेट में अँगुली, सिर पर पत्थर–अँगूठी)। बण जा्‌ण हूँ घर हूँ मूख, घर ऊँण हूँ वण हूँ मूख–बनका्‌ट (जंगल जाते समय घर की ओर मुँह, घर आते समय जंगल की ओर मुँह–कुल्हाड़ी)। पिसुवा्‌क छ्पारि में नारिडाक दा्‌ण–सगड़ (आटे की टोकरी में नारंगी के दाने–अँगीठी) गोठ छाँ फाननी, भितेर नौनि गाड़नी–घट (गोशाला में मट्ठा बनाएँ, घर में निकालें मक्खन–चक्की)। काठैकि घ्वा्‌ड़ि गोरि सवारि, एका्‌क बाद दुहरैकि्‌–चकला और रोटी (काठ की घोड़ी गोरी सवारी, एक के बाद दूसरे की बारी–चकला और रोटी)। सौ घ्वौ्‌ड़नौ्‌क एक्कै सवार–एक रुपै (सौ घोड़ों का एक सवार–एक रुपया)। चार खुट छन पर हिट नि सकन–चारपाई (चार पैर हैं पर चल नहीं सकता–चारपाई/टेबिल)। जतुक फूँक मारला उतुक बा्‌जुल–साँक (जितनी फूँक मारोगे उतना ही बजूँगा –शंख)। एक मैंस रत्ते उठबेर दुल भितर हाथ हा्‌लूँ–कोटक बउ (एक व्यक्ति सुबह उठकर गुफा में हाथ डालता है–कोट की बाँह)। बिन मुखक बोलछ बिन खुटाक हिंटछ–जाँठि (बोलता है, पर मुँह नहीं, चलता है बिन पैर–लाठी/छड़ी।) खा्‌ण हूँ खाँ पचै नि सकन, जै लिजी डाण हालूँ बचै नि सकन–बंदूक (खाता है पर पचा नहीं पाए, रोता जिसके लिए उसे बचा न पाए–बंदूक)। एक चड़ै पुछड़ैल पाणि पिछ–लम्फू (एक चिड़िया पूँछ से पानी पीती है–दिए की बाती)। तू हिट मैं ऊँ–द्वार (तू चल मैं आया–दरवाजों की जोड़ी)। दिनमानभरि पड़ि रूँछि, रात भरि ठड़ी रूँछि–गयूँ (दिन भर पड़ी रहती है, रात भर खड़ी रहती है–जानवर बाँधने के लिये खूँटी में बँधी रस्सी)। एक स्यैंणि धार में झाँकरि फिजैबेर भै रै–बाबिलैकि घाँच (एक महिला पहाड़ में बाल फैलाकर बैठी है–शैलशैवाल)।

'पहेली' एक ऐसा बिम्ब प्रस्तुत करती है, जो अस्पष्ट होते हुए श्रोता के मस्तिष्क में स्पष्ट चित्र को उकेर देता है। यद्यपि पहेली कहने–सुनने में सामान्य और साधारण सा प्रश्न प्रतीत होती है, किन्तु इसमें ज्ञान–विज्ञान तथा गूढ़ अर्थ समाहित रहता है। कुमाऊँ में प्रचलित पहेलियों का अध्ययन करने मात्र से ही यह ज्ञात हो जाता है कि कुमाऊँनी लोकसाहित्य में ज्ञान का अक्षय भंडार है। पहेलियों की भाँति यहाँ की लोककथाओं, लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोकोक्ति, लोकचिकित्सा आदि में ज्ञान–विज्ञान समाहित है; किन्तु अपनी मातृभाषा के प्रति लोगों के उपेक्षाभाव ने लोकबोली–भाषाओं को विलुप्ति के कगार पर ला खड़ा किया है; इससे अधिकांश क्षेत्रों की अनेक बोलियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। लोकभाषा का क्षेत्र विशेष के लोकसाहित्य तथा लोकसंस्कृति से घनिष्ठ होता है, अत: लोकभाषाओं के साथ ही हमारा लोसाहित्य तथा उसमें निहित ज्ञान भी विलुप्त होता जा रहा है। ऐसे में हमारा दायित्त्व है कि हम लोकसाहित्य का गहन अध्ययनकर अपने पूर्वजों की ज्ञान–परम्परा से भावीपीढ़ी को परिचित कराने का प्रयास करें; जिससे कि वह अपने अतीत की ज्ञानगंगा से वर्तमान को अभिसिंचितकर अपनी दुदबोली, (मातृभाषा) अपने लोकसाहित्य और संस्कृति पर गर्व कर सकें।

प्रशांति निलयम्, 6/861,
खोलिया कम्पाउण्ड, नवाबी रोड,
हल्द्वानी–263139 (उत्तराखंड)
मो.–7534002062

प्रदीप कुमार शुक्ल के नवगीतों में भाव पक्ष

- सुभाष जाटव

जन्म - 3 फरवरी 1991।
जन्मस्थान - मंडीदीप (म.प्र.)
शिक्षा - एम. ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।

साहित्य की कोई भी विधा हो, वह सदैव दो पक्षों के सकारात्मक सामंजस्य से सिद्ध होती है। इन दोनों पक्ष के नाम कला पक्ष एवं भाव पक्ष हैं। कविता के बाहरी आवरण जिसके अंतर्गत भाषा, छंद, अलंकार, शैली का सही उपयोग रचनाकार अपनी कविता को प्रभावी बनाने में करता है उसे उस रचना का कला पक्ष कहा जाता है। इसी प्रकार कविता के आंतरिक भाव बिन्दु जिसमें रचनाकार की रस योजना, विचार, कविता का संदेश, कल्पना शक्ति उसके भाव पक्ष के अंतर्गत आते हैं। साहित्य में काव्य या लेख की तुलना मानवीय शरीर से करने पर हम पाते हैं कि काव्य का बाह्य पक्ष या उसका आवरण कला पक्ष से सुगठित होता है एवं उसकी अंतरात्मा या आंतरिक पक्ष भाव पक्ष से प्रकाशमान होती है।

जिस प्रकार कोई जौहरी हीरे को उद्भासित करने हेतु उस पर कितनी ही चोटें, खरोंचें आरोपित करता है, उसी प्रकार साहित्य में कविता रूपी हीरे को चमकाने हेतु ऊपर परिभाषित किए गए दोनों पक्षों पर कार्य किया जाना आवश्यक है। भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों ही कविता को सटीक रूप में कविता बनाते हैं। साहित्य का पाठक उस गीत/कविता/लेख में निहित रस की निष्पत्ति कर अपने मन को उस रस का रसास्वादन कराना चाहता है, जिसमें उसकी सहायता रचना/ साहित्य का भाव पक्ष करता है। या दूसरे शब्दों में कहा जाए तो 'साहित्य का वह अंतरंग पक्ष जिसकी सहायता से पाठक मन में उसका रस विवेचन पूर्णत: सटीक रूप से हो, उस लिखित साहित्य का भाव पक्ष कहलाता है।'

भाव पक्ष प्राय: काव्यगत भावनाओं, कल्पनाओं एवं विचारों की सुमेलित अभिव्यंजना है, जिसकी सहायता से कोई साहित्य कालजयी सिद्ध होता है। यदि किसी रचना के भाव पक्ष में कोई अभाव आता है तब वह पूर्ण रूप से साहित्यिक रचना कही जाए इसमें संशय हो सकता है साथ ही पाठक मन उसे पढ़कर रस-आस्वादन की दृष्टि से संतुष्ट नहीं हो पाता है।

नवगीत हिन्दी साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें समान्यत: भाव पक्ष की प्रधानता पाई जाती है। व्याकरण या मात्राभार में गीत की अपेक्षा नवगीत में छूट ली जा सकती है परंतु भाव पक्ष की दृष्टि से नवगीत में सदैव सुदृढ़ता रहनी चाहिए। वर्तमान में जितने भी रचनाकार नवगीत लेखन का कार्य कर रहे हैं, उनमें से लगभग हर नवगीतकार का भाव पक्ष बहुत परिष्कृत स्थिति में है। वीरेंद्र आस्तिक, रमेश रंजक, माहेश्वर तिवारी, श्रीराम परिहार, शलभ श्रीराम सिंह, यतींद्रनाथ राही, जगदीश पंकज, प्रदीप कुमार शुक्ल, मधुकर अष्ठाना, गोविंद प्रसाद इत्यादि के नवगीतों में भाव पक्ष बहुत सुदृढ़ दिखाई देता है।

इन्हीं नवगीतकारों में से वर्तमान में एक बहुत पढ़े जाने वाले नवगीतकार का नाम नवगीत के पाठकों व समालोचकों की लेखनी में बार-बार पुनरावृत्ति कर रहा है। लखनऊ में जन्मे प्रदीप कुमार शुक्ल जी वर्तमान में लखनऊ में ही बालरोग विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत हैं। उनकी रचनाधर्मिता बहुत विस्तृत है जिसमें उन्होंने दो हिन्दी नवगीत संग्रह (अम्मा रहती गाँव में, गाँव देखता टुकुर-टुकुर) एक अवधी नवगीत संग्रह (यहै बतकही है) तीन बालगीत व बाल कहानी संग्रह(गुल्लू का गाँव, कहो चिरैया, जुगलबंदी) प्रकाशित हो चुके हैं। इस शोध पत्र में हम उनके नवगीत 'अम्मा रहती गाँव में' एवं 'गाँव देखता टुकुर-टुकुर' के भाव पक्ष पर प्रकाश डालेंगे।

'नये साल में आस पुरानी / दुनिया में सुख शांति अमन हो
'आयलान' अपने घर में हो / नहीं जलधि में जलमग्न हो।'
(शुक्ल, प्रदीप, कुमार, अम्मा रहतीं गाँव में, पृ.35)

रचनाकार की दृष्टि सदैव वसुधैव कुटुंबकम की दृष्टि होती है लखनऊ में बैठा एक कवि या नवगीतकार जब सीरिया के रिफ्यूजी बच्चे 'आयलान' की मृत्यु पर अपनी शब्द एवं भाव रूपी श्रद्धांजलि अर्पित करता है एवं अन्य ऐसे ही बच्चों की कुशलक्षेम की प्रार्थना कर रहा है तब उसके काव्य-भाव उपर्युक्त

प्रार्थना का शब्द गठन करते हैं। अन्य किसी बच्चे के साथ ऐसा व्यवहार न हो दुनिया में हर बच्चा सुरक्षित अपने घर में रहे यही जताते हैं –

'गाँव से आया हुआ संदेश / खेत में हैं धान के अवशेष
हड्डियों पर बस बची है खाल / पर अभी रुकता नहीं है
थक गया है बहुत होरीलाल /पर अभी रुकता नहीं है।' (वही 72)

भारत के कृषि प्रधान प्रधान देश होते हुए भी यहाँ किसान की दयनीय अवस्था आज किसी से छिपी नहीं है। बाढ़ और सूखा दो ऐसी प्राकृतिक आपदाएँ हैं जिनसे आज भी लगभग 90 प्रतिशत किसान जूझते दिखाई देते हैं और कई आर्थिक रूप से अभी भी इन परिस्थितियों से उबर नहीं पाते। उन पर पीढ़ीगत समस्याएँ आरोपित रहती हैं। ऊपर से छोटे किसान जिन्होंने किसी आर्थिक संस्था से ऋण लेकर कृषि कार्य किया हुआ होता है वे अगर किसी प्राकृतिक आपदा के शिकार होते हैं तो उनके जीवन की स्थिति अत्यंत दयनीय गंभीर हो जाती है। होरीलाल यहाँ पर एक किसान ना होकर पूरे मध्यमवर्ग के किसान–समूह का परिचायक है। होरीलाल के माध्यम से नवगीतकार शुक्ल ने आज भारत के अधिकतम छोटे किसानों की समस्या को चिह्नित किया है जो अपने ही खेत में मालिक न होकर एक आम मजदूर का जीवन जीते हैं –

'मानवता को भैया हमने / पीट–पीटकर मारा
अहा! क्या सुंदर देश हमारा।' (वही 58)

यह बात सर्वविदित है कि यदि सबसे ज्यादा मानवीय सिद्धांत, जीवन–दर्शन, अध्यात्म जिस देश ने दुनिया को दिए हैं, जिस देश से दर्शन, आध्यात्मिक–सदाचार के गुणों को दुनिया ने आत्मसात किया है आज वही देश भारत मानवीयता को नित्य विखंडित करता हुआ, नए–नए वीभत्स उद्धरण प्रस्तुत कर रहा है। उपर्युक्त पंक्तियों में मानवीयता का हनन करने का प्रयास करते हुए एक बड़े वर्ग को प्रदर्शित किया गया है।

'अरे सुनो / तुम फिर / पच्चीस में बाईस लाये / चलो बताओ
बाकी / किस–किस में फुल आए / देखो तुमसे, / स्पेलिंग फिर से
गलत हुई है /सूख रही है डाली कोई नंदन वन की।' (वही पृ. 92)

वर्तमान में पठन–पाठन करने वाले बालक–बालिकाओं का मन प्रतियोगिता की भावना के नीचे दबकर क्षरित हुआ जा रहा है। कई बार तो इस भावना के आरोपण से नए युवा वर्ग को मानसिक समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है और जब ऐसे में उन बालक–बालिकाओं को उनके अभिभावकों की सहानुभूति एवं साथ की आवश्यकता होती है तब उनके अभिभावक उनकी सहायता न करके उन्हें अंकों के जाल में निर्लिप्त करने का प्रयास करते रहते हैं। बड़ी विडंबना है इस प्रतियोगी जीवन में बच्चे अपने बचपन को सही–सही जी भी नहीं पाते। नवगीतकार प्रदीप कुमार शुक्ल इतनी भाव–विभोर पंक्तियों से इस समस्या को इंगित करते हैं। हर बालक का मन प्रतियोगिता सहने के लिए नहीं बना। कई बालक छात्र जीवन के इतर अपने मन का कार्य करना चाहते हैं, पर समाज में व्याप्त प्रतियोगिता की भावना उन्हें वह सब करने नहीं देती और वे कई बार अवसादित भी हो जाते हैं।

इससे पहले सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने हिन्दी साहित्य में शोकगीत लिखने की परंपरा का बीजारोपण किया है। प्रदीप शुक्ला की लेखनी हर विषय को गंभीरता पूर्वक प्रस्तुत करने हेतु प्रतिबद्ध दिखाई देती है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति ए. पी. जे. अब्दुल कलाम जी के निधन पर वे एक सटीक आध्यात्मिक रचना लिखते हैं, जिसका भाव एक शोकगीत से मिलता–जुलता है। वे इस रचना में निराला की परिपाटी को आगे बढ़ाने का परिचय देते हैं। उनके नवगीत 'पंछी चला गया' में वे लिखते हैं –

'हलचल रहती थी / जब तक था रौनक थी घर में / रहती थी कुरआन की आयत / वीणा के स्वर में / हिंदू मुस्लिम, सिख ईसाई सबको रुला गया / मन उदास है, पिंजरा खाली पंछी चला गया।' (वही पृ. 95)

इस रचना में लेखक पिंजरे (शरीर) से पंछी (आत्मा) के उड़ जाने पर अपनी निराशा व्यक्त करते हैं और पूरा एक श्रद्धांजलि रूपी नवगीत लिखकर अपना शोक प्रकट करते हैं। उनका यह 'शोक–नवगीत' बहुत स्पष्ट तरह से उभर कर आया है।

'रिमझिम, बारिश की / बातें तो बुधिया ही जाने।
कैसे उसकी रात कटी / बिस्तर के पैताने।
पुरवाई में रुदन भरे सुर उसके लहराएँ।' (वही पृ. 107)

बड़े घरों में बारिश की मौसम को रूमानी रूप में देखा जाता है किंतु ग्रामीण जीवन में उसे अभी भी गरीब ग्रामीण जन–जीवन बहुत दुरूह होता है। घास–फूस के छत वाली कुटिया में बारिश का पानी पूरे कच्चे फर्श को गीला कर देता है जिससे उसमें रहना और सोना दूभर हो जाता है। बुधिया रूपी गरीब ग्रामीण का जीवन इतना असह्य है कि वह अपना रोना तक नहीं रोक पाता। यहाँ नवगीतकार ने ऐसा दीन भाव प्रस्तुत किया है कि पाठक भी एक समय पर भाव विभोर हुए बिना नहीं रह पाता। प्रदीप कुमार शुक्ल जी अपने नवगीतों में अभावों, जीवन–मूल्यों के साथ पर्यावरण के प्रति भी अपने भाव प्रकट करना भली–भाँति जानते हैं। अग्रलिखित पंक्तियाँ देखिए :–

'बिना तुम्हारे सब उजाड़ है / सन्नाटा पसरा है पेड़ों का
मेड़ों का देखो सबका मुँह उतरा है / तालों से बेदखल हो गई
मछली जल की रानी / कहाँ गए तुम पानी?' (वही पृ. 07)

बचपन से सुनते आ रहे हैं कि 'जल है तो कल है' परंतु जल का मोल प्राणी ने अभी तक नहीं जाना। आज हमें इसके दुष्परिणाम दिखाई भी देने लगे हैं। हर बड़े-छोटे शहर, गाँव में पानी की किल्लत सामने आने लगी है। असमय वर्षा, असमय सूखा की अवस्था में पानी की कमी बहुत हो रही है। किसान भी अपने खेती में कम पड़ रहे पानी के लिए रोते हैं। जल-ताल, नदियाँ भी बहुत अव्यवस्थित दिखाई देती हैं। बिना जल के जलीय जंतुओं की अलग समस्या दिखाई पड़ती है। अत: पारिस्थितिक संतुलन दिनों-दिन बिगड़ जाने से भविष्य बहुत दुरूह दिखाई देता है-

'माता-पिता गुरु थे मेरे / थे वह मेरे गुइयाँ / बरमदेव पीपल पर रहते / नीचे देवी भुइयाँ / हर टेढ़े सवाल का उत्तर / मिलता सीधा-सादा पितरपक्ष में याद आ रहे / मुझको मेरे दादा।' (वही पृ. 48)

हम सब अपने पूर्वजों की परवर्ती पीढ़ियाँ हैं। हम अपने दादा-दादी, माँ-पिता के बाद उन्हीं के द्वारा दिए गए जीवन की ही नई पीढ़ी होते हैं। दादा और पोते-पोती का रिश्ता हमारी पारिवारिक संस्कृति में बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। जिस भाव से दादा-दादी अपने पौत्र-पौत्री को स्नेह देते हैं वह शायद दुनिया का कोई संबंध नहीं देता। हमारे यहाँ संस्कृति में पितृपक्ष पूर्वज जो देह से इस मृत्युलोक में नहीं रहते उन्हें अनुष्ठान कर बुलाए जाता है, मनाया जाता है, याद किया जाता है व अन्य पूजन विधियाँ की जाती हैं जिससे उनकी आत्मा को शांति प्राप्त हो। श्राद्ध के सोलह दिनों में कवि प्रदीप कुमार शुक्ल जी भारतीय संबंधों की सांस्कृतिक दृष्टि प्रस्तुत करने में सफल रहते हैं-

**'यूँ तो सारा गाँव मगन है / चिंता की कुछ बात नहीं है
जब से उधर तनाव बड़ा है / जिज्जी भी आ गई यहीं है
अच्छा होता तुम भी होते / बाबा भी सुकून से सोते
कटे न हमसे रातें काली।' (वही पृ. 59)**

हमारे देश में नौजवान देश की सीमाओं के रक्षक बन कर फौज में नौकरी करते हैं तब उनके घर के नातेदार संबंधी होने चिट्ठियाँ लिखकर क्या-क्या बात करते हैं यह चित्र प्रदीप शुक्ल जी ने नवगीत में खींचने का सटीक प्रयास किया है। इस दौरान घरवालों की मन:स्थिति किस प्रकार की होती है किस प्रकार से वे अपने भाव प्रकट करते हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में यही बताया गया है -

'चाँदी से छोटे पहाड़ / दिखते हैं भूसे के / सोने से दाने आँखों में / दिखे भरोसे के / कुछ दिन तक तो दुख के बादल / लगते यहाँ छँटे।' (वही पृ. 79)

मई-जून में उत्तर भारत में गेहूँ की जो फसल होती है उसे आम किसान जब काट लेता है। उसे शुक्ल जी ने उपर्युक्त पंक्तियों में प्रस्तुत किया है। गेहूँ आदि की फसल कटने के बाद किस प्रकार गाँव में खलिहान में भूसे के पहाड़ नुमा ढेर लगे हुए होते हैं। गेहूँ के दाने जो किसान की आँखों की चमक को परावर्तित करते हैं। उनके भरोसे व विश्वास से किसान परिवार अपने जीवन के कुछ दिन बिना अभाव के बिता पाते हैं और प्रसन्नता से कुछ समय जीवन व्यतीत करते हैं।

**'मन के अंदर बच्चा जब तब / शोर मचाता है।
ओ बचपन तू कितना तो / यादों में आता है।' (वही पृ. 94)**

कवि/लेखक अपने जीवन के पक्ष भी जब तक अपनी रचनाओं में छूता रहता है, उन्हें वह समय-समय प्रकट करता रहता है। अपने बचपन को याद करने का कितना सरल तरीका शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया है। हम हमेशा अपने अंदर एक बालक मन लिए फिरते हैं पर उसे परिस्थितिवश हमें सख्त करना पड़ता है -

'नाइट ड्यूटी पर गई माँ / हॉस्पिटल से फोन करती / दिल धड़कता / खिड़कियों पर / जब कभी बिजली कड़कती / बेटियाँ घर में अकेली / बिजलियों से डर गई हैं।' (शुक्ल, प्रदीप, कुमार, गाँव देखता टुकुर-टुकुर, पृ. 97)

वर्षा के मौसम में किसी मध्यमवर्गीय परिवार की क्या मन:स्थिति होती है विशेष कर जब घर में कमाने वाली केवल माँ हो, तब घर में बच्चे अकेले कैसे रह पाते हैं, एवं कार्यस्थल पर माँ कितनी व्याकुल रहती है। अपने छोटे बेटे, बेटियों के बारे में क्या-क्या सोच कर वह जबरदस्ती अपने मन को काम में लगाती है। दूरभाष के साधनों का उपयोग कर वह बार-बार घर में स्थिति जानने का प्रयास भी करती है। यह पंक्तियाँ मध्यमवर्गीय परिवारों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करती हैं। नवगीत एवं गीत के मध्य अंतर बता पाना वर्तमान विशेषज्ञ के लिए कठिन काम है क्योंकि नवगीत जनवाद की मुखरता के लिए जाने जाते हैं किन्तु वर्तमान में गीत विधा में भी कई ऐसे विषय प्रकाश में लाए जाने लगे हैं। नवगीत तभी सार्थक होता है जब वह आम जनमानस के भाव-भाषा का प्रदर्शन सटीक रूप से कर पाए। अपनी दो नवगीत की काव्य कृतियों में प्रदीप कुमार शुक्ल ने बिना किसी विशेष लाग-लपेट के जो आम जनमानस के भावों का चित्रण किया है वह बहुत सराहनीय कार्य है। हमें आशा है वे यह कार्य अपनी रचनाधर्मिता निकट भविष्य में बार-बार प्रदर्शित करते रहेंगे एवं आम जनमानस की व्यथाएँ एवं भाव-कथाएँ ऐसी ही लिखते रहेंगे।

**द्वारा रमेश जाटव, वार्ड नं.-3,
लवकुश नगर, मंडीदीप,
जिला रायसेन-462046 (म.प्र.)
मो.-9752069010**

हिंदी सिनेमा के गीतों में गंगा

– अमन वर्मा 'दीप अमन'

जन्म – 7 जुलाई 1998।
जन्स्थान – लालगंज, रायबरेली (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – एक पुस्तक प्रकाशित।

भारत की संस्कृति बहुत प्राचीन है। यह प्रारम्भ में नदियों के किनारे विकसित हुई। सिंधु घाटी की सभ्यता इस बात की साक्षी है। नदियाँ वास्तव में किसी देश और संस्कृति की वाहिनी होती हैं। नदियों में केवल जल का प्रवाह नहीं होता अपितु राष्ट्र का इतिहास, भूगोल तक उसी में समाहित होता है। गंगा भारत की ऐसी ही नदी है जिसमें भारत का गौरव स्थान पाता है। गंगा के कल-कल करते स्वर में भारत का संगीत सुना जा सकता है। यह देश के लाखों लोगों के लिए जीवन का स्रोत है। गंगा के इस कल-कल निनाद को फिल्मकारों ने बड़े ध्यान से सुना है। गीतकारों की सहायता से फिल्मों के गीतों में गंगा की आवाज को शब्द दिए गए हैं। गंगा के बहाने देश की संस्कृति और आध्यात्म को प्रकट किया गया है।

गंगा भारत की सांस्कृतिक पहचान है। इसे भारत की राष्ट्रीय नदी माना गया है। गोमुख से निकलकर भारत के कई प्रान्तों से होती हुई लगभग 2500 किलोमीटर का सफर तय करते हुए गंगासागर में विश्राम लेती है। भारत के कई बड़े शहर गंगा के तट पर स्थित हैं। यह नदी मात्र शहरों को ही अपनी गोद में नहीं समेटे है, अपितु भारत की संस्कृति को अपने आँचल में बसाए हुए है। गंगा भारत के एक बड़े समुदाय के लिए आय का स्रोत है। गंगा के जल से किसान सिंचाई करते हैं, मछुआरे मछली पकड़ते हैं, नाविक नाव चलाते हैं और व्यापारी जलमार्ग से माल ढोने का काम करते हैं। हिमालय की गोद से निकलकर कल-कल करती हुई गंगा अंत में गंगासागर में मिल जाती है। यह उसकी निरंतर गतिशीलता और अनथक जीवन की प्रेरणा है। दरअसल भारत के संदर्भ में कहें तो गंगा मात्र नदी नहीं, अपितु भावना है। गंगा की विशेषताएँ ही इसे देवनदी बनाती हैं। भारतवासी इसे 'गंगा माता' की संज्ञा से अभिहित करते हैं। इसकी सांस्कृतिक पहचान और जीवनोपयोगिता ने फिल्मकारों, कलाकारों, संगीतकारों, कवियों, शायरों, संस्कृति कर्मियों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। गंगा की गोद में बैठकर तमाम चित्रकारों ने चित्र बनाए, संगीतकारों ने तान छेड़े और कवियों ने कविताएँ लिखीं। जब फिल्मकारों का ध्यान इस ओर गया तो उन्होंने गंगा को केंद्र में रखकर तमाम ऐसे गीतों को फिल्मों में स्थान दिया जो कहीं न कहीं भारत की संस्कृति को दर्शा रहे थे। फिल्मकार इन गीतों के माध्यम से भारत की आस्था, इतिहास, पवित्रता आदि की झाँकी प्रस्तुत कर रहे थे। फिल्मों के इन गीतों के माध्यम से न केवल गंगा अपितु भारतीय संस्कृति की झलक भी देखने को मिल जाती है।

भारतीय साहित्य में गंगा रमणीयता का प्रतीक मानी गई है। प्राचीन काल में साधु-संन्यासी अपने आश्रम इस नदी के तट पर बनाया करते थे। कुछ कलमकार तो गंगा पर इतना मुग्ध हुए कि इसे भारत के गले का हार और कुछ भारत का आभूषण तक मानते हैं। हेमन्त कुमार अभिनीत फिल्म 'काबुलीवाला' में गंगा के सांध्यकालीन सौंदर्य को चित्रित करता हुआ गीत रेखांकित करने योग्य है। इस गीत में गुलजार ने गंगा की निरंतर यात्रा और और उसके सौंदर्य को कुछ इस प्रकार दिखाया है–

'रात कारी दिन उजियारा मिल गए दोनों साए
साँझ ने देखो रंग रूप के कैसे भेद मिटाए रे
लहराए पानी में जैसे धूप-छाँव रे
गंगा आए कहाँ से, गंगा जाए कहाँ रे
लहराये पानी में जैसे धूप-छाँव रे' **(गंगा आए कहाँ से गीत-फिल्म काबुलीवाला, 1961 गीतकार गुलजार)**

गंगा, यमुना के बिना अधूरी है। गंगोत्री से आ रही गंगा और यमुनोत्री से आ रही यमुना जहाँ प्रयागराज में मिलती है, वह स्थान 'संगम' के नाम से जाना जाता है। यह स्थान श्रद्धालुओं के लिए आस्था का केंद्र है। दूर-दराज से आकर लोग यहाँ संगम के जल में डुबकी लगाते हैं और अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। प्रत्येक बारह वर्ष बाद गंगा-यमुना के इस संगम तट पर कुम्भ का आयोजन किया जाता है। कुम्भ में लोगों के खोने और मिलने की बहुत सी कहानियाँ फिल्मकारों ने भुनाई हैं। इस संगम का एक पहलू प्रेम भी है। गंगा और यमुना परस्पर प्रेम के कारण एक-दूसरे से मिलती हैं। गंगा और यमुना के इस संगम को प्रेम का प्रतीक मानकर भी साहित्यकारों ने कई गीत, कहानियों आदि की सर्जना की। जब प्रेम की पवित्रता का उदाहरण देना होता है तो अक्सर संगम की पवित्रता से ही उसकी तुलना की जाती है। कवियों और गीतकारों के लिए संगम, प्रेम का सबसे आसान रूपक बन गया है। फिल्म 'बैजू बावरा' में लता मंगेशकर और मोहम्मद रफी के स्वर से सजा गीत 'तू गंगा की मौज मैं जमुना का धारा' में प्रेम के आदर्श रूप को दिखाया गया है। इस गीत में नायक स्वयं को गंगा और नायिका को यमुना की धारा बताता है और यह इस बात से आश्वस्त होता है कि गंगा और यमुना की धाराओं की भाँति उनका मिलन भी एक दिन होगा-

'तू गंगा की मौज मैं जमुना का धारा/हो रहेगा मिलन, ये हमारा
हो हमारा तुम्हारा रहेगा मिलन/ ये हमारा तुम्हारा' (तू गंगा की मौज, गीत-फिल्म बैजू बावरा, 1952 गीतकार शकील बदाँयुनी)

गंगा भारत की ऐसी सांस्कृतिक चेतना है जिस पर सभी भारतवासी गर्व करते हैं। भारत को गंगा से अलग नहीं देखा जा सकता। हिन्दू परंपराओं में गंगा, गीता और गायत्री को विशेष महत्व दिया गया है। इन पर हिन्दू न केवल आस्था रखता है अपितु गर्व भी करता है। गंगा की पवित्रता को फिल्मकारों ने भी पहचाना और फिल्मों के माध्यम से गंगा की पवित्रता का गौरवबोध सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित किया। गंगा भारत की श्रेष्ठता के प्रतीकों में एक है। भारतवासी गंगा का नाम लेते हुए गर्व से भर उठते हैं। यह मात्र गंगा के तटीय क्षेत्रों में ही नहीं अपितु भारत के सुदूर प्रांतों के लोग भी गंगा पर अपनी आस्था और गर्व प्रकट करते हैं। फिल्मकारों ने गंगा के इस महत्व को समझा और राजकपूर अभिनीत फिल्म 'जिस देश में गंगा बहती है' में गंगा और देश के प्रति गौरव के भावों को अभिव्यक्ति दी। मुकेश के स्वर में बजता यह गीत आज भी भारतीयों को अपनी संस्कृति के प्रति गर्व करने को मजबूर कर देता है-

'होंठों पे सच्चाई रहती है / जहाँ दिल में सफाई रहती है/
हम उस देश के वासी हैं/ जिस देश में गंगा बहती है।' (जिस देश में गंगा बहती है, गीत-फिल्म जिस देश में गंगा बहती है, 1961-गीतकार शैलेन्द्र)

इसी गीत में आगे चलकर संस्कृतियों को अपनाने और सीखने की बात भी कही गई है। गैरों को अपना बनाना भारतीय संस्कृति की विशेषता है जिसे इस गीत में स्थान मिला। गीतकार इस गीत में लिखता है कि मात्र स्वार्थ भाव के वशीभूत होकर केवल अपना पेट भरना हमारी संस्कृति नहीं रही। इस सबमें उसने गंगा का प्रभाव ही माना है और वह यह भी मानता कि अब भारतीय ही नहीं बल्कि सारी दुनिया ही इस बात को स्वीकार कर रही है-

'जो जिससे मिला सीखा हमने / गैरों को भी अपनाया हमने
मतलब के लिए अन्धे होकर/ रोटी को नहीं पूजा हमने
अब हम तो क्या सारी दुनिया/ सारी दुनिया से कहती है
हम उस देश के वासी हैं/ जिस देश में गंगा बहती है।' (वही)

गंगा और यमुना के प्रतीकों का सिनेमाई गीतकारों ने खूब प्रयोग किया है। 'तू गंगा की मौज...' गीत की भाँति 1964 में निर्मित और राजकपूर अभिनीत फिल्म 'संगम' में आया गीत 'बोल राधा बोल' दो प्रेम करने वालों का संवाद है। इस गीत में राजकपूर नायिका से पूछते हैं कि गंगा और यमुना नदी रूपी हम दोनों के मन का मेल होगा या नहीं-

'मेरे मन की गंगा और तेरे मन की जमुना का/बोल राधा बोल संगम होगा कि नहीं' (बोल राधा बोल, गीत-फिल्म संगम 1964-गीतकार शैलेंद्र)

इसी गीत में गीतकार नायक के माध्यम से नायिका को समझाने का प्रयास करता है। यहाँ गीतकार गंगा और यमुना के परस्पर संगम की पवित्रता को प्रकट करता है। नायक का मानना है कि यदि दो नदियों का संगम इतना पवित्र हो सकता है तो दो दिलों का मेल तो स्वर्गिक अनुभूति कराने वाला होगा-

'कितनी सदियाँ बीत गई हैं, हाय तुझे समझाने में/मेरे जैसा धीरज

वाला, है कोई और जमाने में/दिल का बढ़ता बोझ कभी कम होगा की नहीं' (वही)

गंगा भारत को एक सूत्र में बाँधने का काम करती है। भारत की भौगोलिक पृष्ठभूमि में गंगा का अर्थ मात्र नदी न होकर उस भावना के रूप में है जो प्रत्येक भारतीय अपने हृदय में महसूस करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक गंगा साथ देती है। गंगा को माँ मानने का एक कारण यह भी है। भारतीय गंगा से अत्यधिक जुड़ाव महसूस करते हैं। यह लगाव कई मायने में धर्म के कारण आता है, कभी आय के स्रोत के रूप में और कभी प्रकृति के अंग के रूप में। कुल मिलाकर गंगा भारत के लिए नदी न होकर एक भाव है। शम्मी कपूर अभिनीत फिल्म 'तुमसे अच्छा कौन है' में गीतकार इन्हीं भावों को अभिव्यक्ति देता है। भारतीय गंगा को जहाँ एक तरफ माँ मानते हैं तो दूसरी तरफ हिमालय को पिता का सम्बोधन देते हैं–

'न मैं सिंधी/ न मैं हूँ गुजराती/न तो है एक भाषा मेरी/ न मेरी एक जाति/गंगा मेरी माँ का नाम/ बाप का नाम हिमाला/अब तुम खुद हो फैसला कर लो/ मैं किस जुबे वाला' (गंगा मेरी माँ का नाम, गीत-फिल्म तुमसे अच्छा कौन है, 1969-गीतकार राजेन्द्र कृष्ण)

गंगा चूँकि भारत के लिए आस्था का केंद्र भी है। स्वाभाविक है लोग गंगा से अपनी फरियाद भी करते हैं। लोगों का मानना है कि नदी के रूप में देवी स्वयं धरती पर अवतरित हुई हैं। लोग परेशानियों के दौर में गंगा से परेशानी से मुक्ति की कामना करते हैं। इसके लिए वे गंगा मैया से मान्यता मानते हैं और अपनी श्रद्धानुसार उन्हें समर्पण करते हैं। धर्मेन्द्र अभिनीत फिल्म 'चंदन का पालना' में गीतकार ने गंगा जी से ऐसी ही कामना की है। 'गंगा मैया पार लगा दे' गीत में लोग गंगा जी से गुहार लगा रहे हैं कि उन्हें कष्टों से मुक्ति मिले। असहाय और नि:शक्त लोग गंगा जी से प्रार्थना करते हैं कि उनकी रक्षा हो। इस गीत में गीतकार ने गंगा मैया से एक बच्चे की याचना की है –

'सूना पड़ा है चन्दन का पलना/पलने में झूले इक चंदा सा ललना जैसे यशोदा का कृष्ण कन्हैया /ओ गंगा मैया ओ गंगा मैया पार लगा दे मेरे सपनों की नैया' (ओ गंगा मैया पार लगा दे गीत-फिल्म चंदन का पालना, 1967-गीतकार आनंद बक्शी)

इसी प्रकार मानवीय जीवन के संबंधों में माँ का स्थान सबसे ऊपर रखा गया है। भारत जैसे देश में जहाँ भावनाओं को पर्याप्त स्थान दिया जाता है, वहाँ माँ का अर्थ देवी होता है। जहाँ एक तरफ गंगा को माँ माना गया है वहीं माँ को भी गंगा के रूप में पवित्र और पूज्य माना गया। फिल्मकारों ने इस भाव को भी फिल्मों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। वस्तुत: माँ और बेटे का सम्बंध ऐसा सम्बन्ध है जो सबसे भावुक और जुड़ाव वाला होता है। गंगा से जुड़ाव का एक बड़ा कारण उसके स्वरूप को माँ का स्वरूप मानना है। माँ से जब शिशु कुछ याचना करता है तो माँ बिना किसी समस्या के उसे उपलब्ध कराने का प्रयास करती है और चाहती भी है कि वह उसे मिल जाए। गंगा से लोग याचना करते हैं कि उनकी फसल हेतु जल उपलब्ध हो, व्यापार में बाधा न हो आदि-आदि। फिलहाल फिल्मकारों ने माँ की पवित्रता को अभिव्यक्ति देते हुए मातृत्व को समर्पित एक गीत 'मँझली दीदी' फिल्म में शामिल किया है जहाँ माँ को ही गंगा, यमुना और तीर्थ बताया गया है। यह गीत माँ के प्रति सम्मान प्रकट करता है–

'माँ ही गंगा माँ ही जमुना/ माँ ही तीरथ धाम/माँ का सर पर हाथ जो तेरे/ क्या ईश्वर का काम/बोलो क्या ईश्वर का काम/ जय जय मैया तुझे प्रणाम' (माँ ही गंगा माँ ही जमुना, गीत-फिल्म मँझली दीदी, 1967 गीतकार, गोपालदास नीरज)

भारतीय स्त्री अपने पति के लिए सदैव शुभकामनाएँ रखती है। वह किसी भी स्थिति में पति को खोना नहीं चाहती। भारत के कई पर्व और त्यौहार पति की दीर्घायु की कामना के लिए बनाए गए हैं इसमें करवा चौथ प्रमुख है। फिल्मकारों ने स्त्री के इस पारंपरिक मन को स्वर दिया है। आज भी भारत में ऐसी स्त्रियाँ बहुतायत में पाई जाती हैं जिनके लिए उनका पति ही सर्वस्व है। वह अपनी इच्छा से पहले पति की इच्छा को महत्व देती हैं। अपने से अधिक पति की चिंता करती हैं और अपने से ज्यादा पति का ख्याल रखती हैं। एक समय तक ऐसी स्त्रियों को भारत में आदर्श स्त्री माना जाता रहा है। 'सुहाग रात' फिल्म के गीत 'गंगा मइया में जब तक के पानी रहे' में स्त्री अपने पति के दीर्घायु की इच्छा रखती है। वह उसके दीर्घायु की कामना इस प्रकार करती है कि गंगा में जब तक पानी हो तब तक उनका जीवन चलता रहे–

'गंगा मैया में जब तक ये पानी रहे,/मेरे सजना तेरी ज़िंदगानी रहे' (गंगा मैया में जब तक के पानी रहे, गीत फिल्म सुहाग रात, 1968 गीतकार-इंदीवर)

इसी गीत में आगे स्त्री पूर्ण रूप से पति का होना चाहती है। वह बीते दिनों में जीवन में आई कटुता को भूलकर फिर से सरस जीवन जीने की कामना रखती है। वह इच्छा रखती है कि पुरानी कटुता ही मात्र नहीं समाप्त हो बल्कि गंगा में जब तक पानी रहे उस समय तक उसका पति चिरंजीवी हो –

'आग अगनी के फेरे लगा कर /याद बीते दिनों की जलाकर
आई में तेरे द्वार लिए मन का संसार /मेरे होंठो पे तेरी कहानी रहे
मैया हो गंगा मैया' (वही)

फिल्म 'गंगा तेरा पानी अमृत' में शीर्षक गीत 'गंगा तेरा पानी अमृत' काफी चर्चित रहा है। यह गीत गंगा के महत्व को बताता है। यहाँ यह रेखांकित करने योग्य है कि गंगा के साथ-साथ भारत का इतिहास भी जुड़ा हुआ है। चिरकाल से बहती आ रही गंगा न जाने कितने युगों, शासकों का, इतिहास की प्रत्यक्षदर्शी रही है। मोहम्मद रफी और लता मंगेशकर के स्वरों से सजा यह गीत आज भी लोगों की जबान पर है–

'कितने सूरज उभरे डूबे गंगा तेरे द्वारे/युगों-युगों की कथा सुनाएँ तेरे बहते धारे/तुझको छोड़ के भारत का इतिहास लिखा न जाए' (शीर्षक गीत-फिल्म-गंगा तेरा पानी अमृत, 1971- गीतकार साहिर लुधियानवी)

इसी प्रकार 'गंगा की सौगंध' नामक फिल्म का गीत 'मानो तो मैं गंगा माँ हूँ' गंगा गीतों में सर्वाधिक चर्चित रहा है। यह गीत आम जनमानस से गंगा का संवाद है। गीतकार ने इस गीत में गंगा को बोलते हुए दिखाया है। वस्तुतः यह गीत भी 'गंगा तेरा पानी अमृत' की भाँति गंगा के इतिहास और गौरवबोध को चित्रित करता है। इस गीत की प्रथम पंक्ति ही आम जनमानस से गंगा को जोड़ती है। यहाँ गंगा स्वयं लोगों को अपने देश और संस्कृति के प्रति गौरव का बोध कराते हुए कहती हैं–

'युग-युग से मैं बहती आई/ नील गगन के नीचे
सदियों से ये मेरी धारा/ प्यार की धरती सींचे
मेरी लहर-लहर पे लिखी है/ इस देश की अमर कहानी
मानो तो मै गंगा माँ हूँ/ न मानो तो बहता पानी।।' (मानो तो मैं गंगा माँ हूँ, गीत-फिल्म गंगा की सौगंध, 1978-गीतकार अंजान)

फिल्मकारों ने भी इस गीत के माध्यम से गंगा के संदेश को जनता में प्रसारित किया है। गंगा का महत्व, उसकी उपयोगिता को रेखांकित करता हुआ यह गीत महत्त्वपूर्ण है जिस पर फिल्मकारों की नजर पड़ी। इतनी विशेषताएँ होते हुए भी गंगा कहीं अपने एहसान को प्रकट नहीं कर रही। उन्होंने सब कुछ मानव के विवेक पर छोड़ दिया है। इस गीत में गंगा के माध्यम से इतिहास बोध को पर्याप्त स्थान दिया गया है। इतिहास पुरुषों का उदाहरण देते हुए गीतकार ने कौमी एकता का पक्ष साधने का भी प्रयास किया है। यह गीत भारत के गौरव का गीत बनकर सामने आया–

'गौतम अशोक अकबर ने/ यहाँ प्यार के फूल खिलाए
तुलसी ग़ालिब मीरा ने/ यहाँ ज्ञान के दीप जलाए
मेरे तट पे आज भी गूँजे/ नानक कबीर की वाणी
मानो तो मैं गंगा माँ हूँ/ न मानो तो बहता पानी।।' (वही)

कुल मिलाकर हिन्दी फिल्मों में गंगा पर पर्याप्त गीत लिखे गए हैं। यह गीत गंगा के महत्व को रेखांकित करते हैं। कहीं यह गंगा की पवित्रता का चित्रण करते हैं, कहीं इतिहास बोध तो कहीं रूपकों में गंगा का प्रयोग किया गया है। गंगा मात्र नदी नहीं बल्कि भारत की एक सांस्कृतिक इकाई है इसे इन गीतों के माध्यम से बखूबी समझा जा सकता है। भारत को जानने के लिए गंगा को जानना जरूरी है। भारत के महत्त्वपूर्ण शहर जैसे हरिद्वार, कानपुर, प्रयागराज, वाराणसी, पटना तथा कोलकाता इसी नदी के तट पर हैं। इन शहरों से न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण विश्व में व्यापार आदि किया जाता है। भारत की आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक और धार्मिक प्रगतियों में गंगा का योगदान उल्लेखनीय है। फिल्मकारों ने गंगा के इन सभी पहलुओं को समझा है और गीतकारों ने इन्हें अपने गीतों में पर्याप्त स्थान भी दिया है। गंगा के बहाने एक लघु भारत का अध्ययन आसानी से किया जा सकता है किन्तु गंगा को छोड़कर भारत की कल्पना भी सम्भव नहीं है। गंगा के सम्बंध में फिल्मों में शामिल गीतों के बहाने से भारतीय संस्कृति, यहाँ के शहरों और इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है।

पूरे गुरदी, कोरिहरा, पोस्ट सेमरपहा,
लालगंज, रायबरेली-229206 (उ.प्र.)
मो.-9369422456

भारतीय सिनेमा में चित्रित दिव्यांग

– मंजुल कुमार सिंह

जन्म – 9 मई 1994।
शिक्षा – एम.ए।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

दिव्यांगता मानवीय समाज में प्राचीन काल से कलंक के रूप में देखी गई हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में, जैसे–महाभारत के धृतराष्ट्र (दृष्टिहीन), मंथरा (कुबड़ी दासी), कृष्ण लीला की कुबजा (कुबड़ी कृष्ण प्रेमिका) इन पात्रों को नकारात्मक रूप में या कम सामर्थ्यशाली रूप में दिखाया गया है। कुछ अन्य साहित्यिक कृतियों में दिव्यांग व्यक्ति को भिखारी या अत्यधिक गरीब, दर्द या शोक से पीड़ित स्थिति में दिखाया गया है। इन पौराणिक और साहित्यिक कृतियों का भारतीय समाज पर बहुत गहरा प्रभाव है। जिसकी गूँज वर्तमान समाज में भी देखी जाती है। दिव्यांग व्यक्तियों के लिए लोग चाहे–अनचाहे भी दृष्टिहीन व्यक्ति को धृतराष्ट्र, किसी कुबड़ी महिला को मंथरा जैसे संबोधनों से बुलाते हुए देखे जा सकते हैं। समाज में दिव्यांगता को पिछले जन्म के कर्मों या माता-पिता के गलत (अपराधों) कार्यों की सजा के रूप में देखा जाता है। यहाँ तक कि स्वयं दिव्यांग व्यक्ति इसे पूर्व जन्म का फल मानकर स्वयं भी भोगता रहता है और अपने कष्टों को कम करने का प्रयत्न नहीं करता। मुख्य तौर पर दिव्यांगता को पिछले जन्म के पापों के अभिशाप के रूप में देखा जाता है, जिस कारण उस व्यक्ति को समाज में पूर्ण ईकाई के रूप में नहीं देखा जाता है। ऐसी विचारधारा किसी भी समाज को गर्त की दिशा में ले जाएगी।

जब हम दिव्यांगता के बारे में सोचते हैं तो अक्सर शारीरिक दिव्यांगता का ख्याल आता है जबकि सभी दिव्यांगताओं को आँखों से नहीं देखा जा सकता है। कुछ दिव्यांगताएँ मानसिक तौर पर होती है, जिन पर समाज उतना ध्यान नहीं देता और उस व्यक्ति विशेष को समाज पागल घोषित कर देता है। जबकि मानसिक दिव्यांगता पर भी उतना ही ध्यान दिया जाना चाहिए। जितना शारीरिक दिव्यांगता पर दिया जाता है। भारतीय समाज में दिव्यांग लोगों को हमेशा हाशिए पर रखा गया है। लोगों में दिव्यांगों के प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता की कमी इस समूह के बहिष्कार का कारण बना है। प्राय: समाज में देखा गया है कि जब तक कोई व्यक्ति स्वयं किसी पीड़ा से ग्रसित नहीं होता, तब तक वह किसी दूसरे की पीड़ा को नहीं समझता है। भक्तिकाल की कृष्ण भक्त और कवयित्रि मीरा बाई इसे अपने शब्दों में ऐसे कहती है –

'हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाने कोय।
घायल की गति घायल जानै, कि जिन लागी होय।।'

फिल्में आज भारतीय समाज का अभिन्न अंग बन चुकी हैं। वर्तमान समय में सिनेमा को समाज के दर्पण के रूप में देखा जा रहा है। सिनेमा समाज से प्रभावित होता है, जिसकी प्रतिकृति की झलक हमें सिनेमा में आसानी से देखने को मिल जाती है। समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ फैली हुई हैं, जैसे–स्त्री अस्मिता की समस्या, दलितों की समस्या, आदिवासियों की समस्या इन्हीं समस्याओं की तरह दिव्यांग व्यक्तियों के प्रति व्यवहार की भी एक समस्या है। जिसका अभी तक भारतीय समाज में पर्याप्त समाधान नहीं किया गया है। दिव्यांग लोगों के प्रति जागरूकता, सहानुभूति और संवेदनशीलता की कमी है और इसे बदलने के लिए फिल्मों (सिनेमा) को एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। डॉ. रमा अपनी पुस्तक 'हिन्दी सिनेमा में साहित्यिक विमर्श' में कहती हैं– 'सिनेमा बृहत्तर स्तर का संप्रेषण है। आधुनिक समय में सिनेमा संप्रेषण का माध्यम है। संप्रेषण चेतना फैलाता है, इसका अर्थ है कि संप्रेषण समाज के पुराने मूल्य में परिवर्तन करके समय के अनुरूप सामाजिक मूल्य को समकालीन ज्ञान के मुताबिक रखता है।' **(डॉ. रमा, 'हिन्दी सिनेमा में साहित्यिक विमर्श', पृ.-38, 39)**

यदि हम भारतीय सिनेमा के इतिहास पर नज़र डालते हैं तो दिव्यांग समस्या से प्रेरित 'फ्रांज ओस्टन' के निर्देशन में बनी श्वेत श्याम फिल्म 'जीवन नैया' (1936) देखने को मिलती है। फिल्म में मुख्य पात्र के रूप में रंजीत (अशोक कुमार) और लता (देविका रानी) हैं। यह फिल्म नाचने वाली लड़कियों के बहिष्कार के बारे में है। फिल्म में रंजीत और लता एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और उनका विवाह होने वाला है। लता की माँ नाचने वाली महिलाओं के समाज

से आती है। जब रंजीत को लता के विषय में यह बात पता चलती है तो वह विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा देता है। अंत में एक विस्फोट के कारण रंजीत की आँखों की रोशनी चली जाती है, उसके बाद लता एक सेविका के रूप में उसकी देखभाल करती है। इसके बाद दोनों का विवाह हो जाता है। फिल्म जीवन नैया में पहली बार दृष्टि बाधित पात्र को दिखाया जाता है। किन्तु यह फिल्म दिव्यांग समाज की किसी भी मुख्य समस्या को नहीं उठाती है।

प्रारम्भिक फिल्मों में दिव्यांगों को मंदिर, रेलवे स्टेशन के बाहर भिक्षा–वृत्ति करते हुए, समाज से धकेले जाते हुए, परिवार से अलग रहते हुए, ईश्वरीय दण्ड के रूप में भुगतते हुए, दुष्कर्मों की सजा के रूप में दिखाया गया। उसके बाद के दौर की फिल्मों में खलनायक को क्रूर दिखाने के लिए अंधा, लँगड़ा, पुंग दिखाया गया तथा विकरालता उत्पन्न करने के लिए उसके चरित्र का चित्रण एक नशेड़ी और छिछोरे के रूप में किया गया **(उदाहरण–फिल्म ओमकारा–लँगड़ा त्यागी अभिनय सैफ अली खान, फिल्म बाहुबली–बिज्जालादेव अभिनय एम. नास्सर)।**

कुछ समय पहले तक सिनेमा में दिव्यांगता को हास्य उत्पन्न करने के लिए इस्तेमाल किया जाता था **(उदाहरण–फिल्म मुझसे शादी करोगी–दुग्गल साहब अभिनय कादर ख़ान, फिल्म टॉम डिक एंड हैरी–तरूण/टॉम (बहरा) अभिनय डीनो मोरिया, दीपक/डिक (अंधा) अभिनय अनुज साहनी और हर्षवर्द्धन/हैरी (मूक) अभिनय जिम्मी शेरगिल, फिल्म गोलमाल–लक्की गिल अभिनय तुषार कपूर, सोमनाथ भारद्वाज (दृष्टि बाधित) अभिनय परेश रावल, मंगला भारद्वाज (दृष्टि बाधित) अभिनय सुष्मिता मुखर्जी)**। यह मजाक केवल फिल्म के अपाहिज किरदार का नहीं, बल्कि समाज में रहने वाले हर उस व्यक्ति का था जो दिव्यांगता से पीड़ित है।

दिव्यांगता हमारे समाज का ऐसा मुद्दा रहा है जिससे भारतीय सिनेमा अछूता नहीं रहा। भारतीय सिनेमा में दिव्यांगता की झलक हमें सावक श्वेत–श्याम फिल्मों से ही देखने को मिलती है, किन्तु उन सभी पात्रों का चरित्र चित्रण खलनायकत्व, विद्रूपता, हास्य दिखाने के लिए किया जाता रहा। किन्तु मुख्य धारा के निर्देशकों के अलावा कुछ निर्देशक ऐसे भी रहें जिन्होंने दिव्यांगों की समस्याओं और उनकी मानसिक स्थिति को समझने की कोशिश की और दिव्यांगों की समस्याओं को फिल्मी परदे पर उतारा, लेकिन उनकी संख्या नगण्य के बराबर है। लेकिन सन् 2000 के बाद भारतीय सिनेमा के निर्देशक, निर्माताओं की सोच में परिवर्तन आया है जिसके बाद कई ऐसी सार्थक फिल्में बनी **(उदाहरण–ब्लैक, इकबाल, बर्फी, मार्गरीटा विद अ स्ट्रॉ)** जो दिव्यांगता की समस्या को संवेदनशील तरीके से दिखाती हैं और उनकी गम्भीरता पर बात करती हैं। इस प्रकार के सिनेमा के निर्माण से फिल्में 'दिव्यांगों की आवाज' के रूप में उभर कर आई है। वर्तमान समय में फिल्मों के माध्यम से हाशिए के लोगों को मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है साथ ही इन फिल्मों के माध्यम से दिव्यांगों की समाज में स्थिति एवं उनके मुद्दों को भी उठाने का प्रयास किया जा रहा हैं। वहीं कुछ ऐसे भी फिल्म निर्देशक भी हैं जो दिव्यांगों को फिल्मों के माध्यम से हास्य का पात्र या फूहड़, ओछी हरकतों के साथ पेश करते हैं। उन पर सरकार को लगाम लगानी चाहिए।

सिनेमा एक व्यवसायिक माध्यम है, जिसको बनाने में बहुत अधिक लागत लगती है। किसी भी फिल्म को बनाने के लिए सैकड़ों लोग (निर्माता, निर्देशक, स्क्रिप्ट राइटर से लेकर स्पॉट बॉय तक) और करोड़ों रुपयों का निवेश करना पड़ता है। निश्चित ही सिनेमा एक महंगा माध्यम है। अपने व्यावसायिक गुण के कारण सिनेमा समाज में व्याप्त संवेदनशील मुद्दों को छोड़कर मनोरंजक, अश्लील, हास्य फिल्मों का निर्माण करने में अधिक दिलचस्पी दिखाता है। समाज में सिनेमा के माध्यम से अधिक से अधिक हिंसा और अश्लीलता परोसी जा रही है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद, व्यावसायिकता, अश्लीलता ने आज के समाज को पूरी तरह से लील लिया है। जिसका लाभ उठाने से सिनेमा के निर्माता, निर्देशक कभी नहीं चूकते। भूमंडलीकरण के दौर में भारतीय सिनेमा हॉलीवुड (पश्चिम का सिनेमा) से काफी प्रभावित रहा है। जहाँ की कुछ फिल्मों की केन्द्रीय विषयवस्तु हिंसा और अश्लीलता थी। वहाँ की संवेदनशील विषयवस्तु पर बनी फिल्मों के स्थान पर हिंसात्मक और अश्लील फिल्मों ने भारतीय निर्माता और निर्देशकों का ध्यानाकर्षण किया। क्योंकि इन फिल्मों के माध्यम से दर्शकों को हिंसक और अमर्यादित मनोरंजन के प्रति रोचकता को बढ़ाना आसान था, जिससे अधिक से अधिक पैसा कमाया जा सकता था। जिस कारण समाज की संवेदनशीलता के स्थान पर उनकी नजर बॉक्स ऑफिस कलेक्शन पर होती है। जिन कारणों से समाज के संवेदनशील मुद्दे, कुरीतियाँ, हाशिए के लोग सिनेमा से गायब होते जा रहे हैं। 'सिनेमा पर भूमंडलीकरण के प्रभाव को हम हॉलीवुड की उन फिल्मों के माध्यम से देख सकते हैं। जिन्होंने पूरे विश्व से खासतौर पर तीसरी दुनिया के देशों से अपार धन अर्जित किया है और उन देशों में अमेरिकी संस्कृति को फैलाने का काम भी किया। धीरे–धीरे यह प्रभाव हमें बॉलीवुड में भी देखने को मिला कुछ फिल्मकारों ने पैसा कमाने के उद्देश्य से अपनी फिल्मों को दक्षिण एशियाई देशों तक पहुँचाया और कमाया भी खूब। लेकिन फिल्मों की विषयवस्तु में बड़ा बदलाव शुरू हो गया। किसान, मजदूर, औरतें, गाँव, देहात आदि इसके केंद्र से गायब थे।' **(हिमांशु (सं.), 'भूमंडलीकरण और हिन्दी सिनेमा', आस्था प्रकाशन, कोलकाता, 2014, पृ.–11)**

निश्चित तौर पर इस प्रकार का सिनेमा, 'सिनेमा कला' को गर्त की दिशा में ले जाने के लिए पर्याप्त है फिर भी समाज में हर चीज के अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। जहाँ भूमण्डलीकरण के दौर में भारतीय सिनेमा का संवेदनशीलता के स्तर पर क्षरण हो रहा है। वहीं भारतीय सिनेमा अपनी लोकप्रियता के कारण ग्रामीण कस्बों से लेकर वैश्विक स्तर पर समुद्रीय सीमा को लाँघ कर विदेशों में भी पहुँच रहा है। ऐसा नहीं है कि भूमण्डलीकरण के कारण भारतीय सिनेमा में जो बदलाव हुए हैं वो सभी नकारात्मक ही हुए। कुछ नए विषय भी इस दौर में उभर कर आए हैं। कुछ निर्माता, निर्देशकों ने ऐसे विषयों को फिल्म में दिखाना शुरू किया जिन विषयों पर आमतौर पर लोग विचार करने से घबराते हैं। जिनमें दिव्यांग्ता भी एक ऐसा विषय है, जिस पर समाज और सिनेमा दोनों ही एक कलंकित दृष्टिकोण रखते हैं। कुछ निर्देशकों ने ऐसे विषयों को अपनी फिल्म की विषयवस्तु में उठाया और उसमें वे सफल भी हुए। **उदाहारण स्वरूप-मार्गरीटा विद अ स्ट्रॉ निर्देशक शोनाली बोस, ब्लैक निर्देशक संजय लीला भंसाली, इकबाल निर्देशक नागेश कुकनूर।** ऐसे ही कुछ निर्माता, निर्देशक कहीं-कहीं उम्मीद की किरण के तौर पर संवेदनशील एवं गंभीर मुद्दों पर इक्का-दुक्का फिल्में बना रहे हैं।

डॉ. अर्चना उपाध्याय अपने व्याख्यान में कहती है-'समाज में जो कुछ घटित होता है सिनेमा उन सबको दिखाने का सशक्त माध्यम है। हालाँकि वास्तविक जीवन और पर्दे पर दिखाए जा रहे जीवन के बीच में अंत:द्वंद का सामना कर रहा है फिर भी इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। सिनेमा मनोरंजन तो करता ही है, मनोरंजन के साथ ही समाज को शिक्षित करता है और समाज के विचार और व्यवहार को परिवर्तित करने में इसकी मजबूत भूमिका होती है। प्रारंभिक सिनेमा में विकलांगता को अभिशाप के तौर पर दिखाया गया। किन्तु इक्कीसवीं सदी की सोच में परिवर्तन आया है। अब की फिल्में विकलांगता की समस्या को दिखाती हैं और उन पर बात करती हैं।' **(डॉ. अर्चना उपाध्याय, व्याख्यान-'हिन्दी सिनेमा में दिवयांग चरित्र का मनोविज्ञान'।)**

सिनेमा एक कला माध्यम है, जिसमें अनेक कलाओं का सम्मिश्रण होता है। सिनेमा साहित्य, नाट्य, नृत्य, संगीत, गायन, स्थापत्य आदि कलाओं के समावेशन से बनता है। सृष्टि की सभी कलाएँ समाज के लिए होती हैं उनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं होता बल्कि अपने माध्यम से समाज में व्याप्त प्रत्येक अनुभव को उस कला के गणितीय सूत्र में पिरोकर समाज को प्रदान करना होता है। डॉ. वंदना झा अपने व्याख्यान में मैक्सिकन लेखक कार्लोस फ़्यून्टेस के शब्दों में कहती है- 'इतिहास जिनका कत्ल करता है कला उन्हें जीवन प्रदान करती है, इतिहास जिनकी आवाज सुनने से इंकार करता है कला में उसकी आवाज सुनाई देती है।' **(डॉ. वन्दना झा, व्याख्यान-'हिन्दी सिनेमा और हाशिए का समाज (विशेष सन्दर्भ दिव्यांगजन का अंकन)।**

संजय लीला भंसाली द्वारा निर्देशित 'ब्लैक' (2005) दृष्टिहीन-बधिर जैसी दिव्यांगता के विषय को फिल्म के माध्यम से दिखाया गया है। इस फिल्म कहानी कार्यकर्ता हेलेन केलर के जीवन और उनकी 1903 की आत्मकथा, द स्टोरी ऑफ माई लाइफ से प्रेरित थी। दो साल की उम्र में एक बीमारी से उबरने के बाद मिशेल मैकनेली (रानी मुखर्जी) ने अपनी दृष्टि और सुनने की क्षमता खो दी और वह एक हिंसक, बेकाबू बच्चे के रूप में बड़ी हुई। उसके माता-पिता उसके लिए एक ऐसा व्यक्ति ढूँढ़ रहे हैं जो उसकी देख भाल कर सकें। लेकिन उसे शिक्षक के रूप में देवराज सहाय (अमिताभ बच्चन) जो एक बुजुर्ग और शराबी है मिलता हैं। लेकिन देवराज ने मिशेल को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में तैयार करने की जिम्मेदारी ली है जो अभिव्यक्त और संवाद कर सके। देवराज की मेहनत से कई वर्षों के बाद, मिशेल एक अभिव्यंजक महिला बन गई है जो नृत्य करने और हस्ताक्षर करने में भी सक्षम है। उसे देवराज की मदद से स्नातक की डिग्री हासिल करने के लिए प्रवेश मिलता है। बारह साल बाद, मिशेल अपनी डिग्री हासिल करने में सफल हो जाती है। अंत में देवराज अल्जाइमर रोग का शिकार होने लगता है, एक समय पर वह मिशेल को भूल जाता है और एक उत्सव के दौरान उसे अकेला छोड़ देता है। देवराज मिशेल की काली दुनिया में आशा की किरण लाता है और उसकी समस्याओं पर विजय पाने में उसकी मदद करता है। यह कहानी एक दिव्यांग छात्रा की कड़ी मेहनत के कारण कॉलेज से स्नातक होने की क्षमता का पता लगाती है, गुरु की भूमिका उसे आगे बढ़ने में मदद करती है। फिल्म एक गुरु और शिष्य के मध्य भावनात्मक जुड़ाव को दिखाती है और समाज को सोचने के लिए एक प्रश्न छोड़ जाती है। 'संजय लीला भंसाली की 'ब्लैक' अंधी मूक-बधिर बच्ची के संघर्षमय जीवन की मर्मान्तक कथा है जिसे निर्देशक ने अपने हुनर से जमीन और आसमान को एक क्षितिज पर खड़ा करके पात्रों में तब्दील कर दिया।' **(हिमांशु, सं., 'भूमंडलीकरण और हिन्दी सिनेमा', पृ.- 40)**

नागेश कुकनूर द्वारा निर्देशित 'इकबाल' (2005) मूक-बधिर जैसी दिव्यांगता के विषय को फिल्म के माध्यम से दिखाया गया हैं। फिल्म का नायक इकबाल (श्रेयस तलपड़े) मूक-बधिर है। जो भारत के लिए क्रिकेट खेलने का सपना देखता

है। उसे क्रिकेट गुरु के रूप में मोहित (नसीरुद्दीन शाह) स्थानीय शराबी मिलता है, जो पहले एक अच्छा क्रिकेटर था। शुरू में मोहित उसको क्रिकेट सिखाने के लिए मना कर देता है पर उसकी लगन और मेहनत देख कर उसे क्रिकेट के सभी गुण सिखाता है। फिल्म के अंत में इकबाल अपनी दिव्यांगता के बावजूद भारत की राष्ट्रीय टीम में जगह पाता है। यह फिल्म दिखाती है कि अगर आप में प्रतिभा और उम्मीद है तो आप सभी बाधाओं को पार कर लेंगे और कोई भी आपको अपना सपना पूरा करने से नहीं रोक पाएगा।

आमिर खान द्वारा निर्देशित 'तारे ज़मीन पर' (2007) डिस्लेक्सिया जैसी दिव्यांगता के विषय को फिल्म के माध्यम से दिखाया गया है। फिल्म का मुख्य पात्र ईशान नंदकिशोर अवस्थी (दर्शील सफारी) डिस्लेक्सिया जैसी दिव्यांगता से ग्रस्त है उसके जीवन में कला शिक्षक राम शंकर निकुम्भ (आमिर खान) के आने से वह अपनी दिव्यांगता पर कुछ हद तक काबू पा लेता है। फिल्म में निकुम्भ सर का आगमन ईशान की ज़िंदगी बदल देता है। वह ईशान की समस्या को समझते हुए उसकी पेंटिंग की क्षमता को प्रोत्साहित करते हैं साथ ही उसकी अध्ययन क्षमता को भी बढ़ाते हैं। अपने में खोया रहने वाला ईशान अचानक पेंटिंग का स्टार बन जाता है। इस फिल्म की नई विषय वस्तु अपने बच्चों को पारंपरिक ढंग से पढ़ाने और उसे समझने से इतर उसकी मानसिकता और समस्या को नए तरीके से समझने का मार्ग दिखाती है। अति व्यस्त हो चुके हम अपने बच्चों को रेस का घोड़ा समझने लगते हैं। बहुत सारा पैसा लगाकर भी हम उसे बेहतर जीवन नहीं दे पाते हैं। इस फिल्म में बहुत समझदारी से बच्चों को समझते हुए उनके जीवन को आगे बढ़ाने का कुछ सूत्र दिया गया है। फिल्म के कुछ संवाद दिव्यांग बच्चों को प्रेरणा देने के लिए सार्थक लगते हैं। उदाहरण स्वरूप–'दुनिया में ऐसे–ऐसे हीरे पैदा हुए हैं, जिन्होंने सारी दुनिया का नक्शा बदल दिया। क्योंकि ये दुनिया को अपनी नजर से देख पाए। दिमाग जरा उनके हटके थे, आस पास वालों को बर्दाश्त नहीं हुआ, तकलीफें खड़ी कर दीं इसके बावजूद वो जीते और ऐसा जीते कि दुनिया देखती रह गई।' **(फिल्म–'तारे ज़मीन पर', निर्देशक–आमिर खान, वर्ष–2007, अवधि–140 मिनट देखें)**

शोनाली बोस द्वारा निर्देशित 'मार्गरिटा विद अ स्ट्रॉ' (2015) सेरेब्रल पाल्सी (प्रमस्तिष्क घात) जैसी दिव्यांगता के विषय को फिल्म के माध्यम से दिखाया गया हैं। फिल्म के माध्यम से दिव्यांगों की यौन इच्छाओं जैसे विषय को उठाया गया है। यह फिल्म सेरेब्रल पाल्सी से पीड़ित लड़की की आत्म–खोज की कहानी है। फिल्म की नायिका लैला (किल्क कोचलिन) सेरेब्रल पाल्सी जैसे रोग से ग्रस्त होने के बावजूद अपनी स्नातक की पढ़ाई के लिए स्कॉलरशिप पर दिल्ली यूनिवर्सिटी से न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी जाती है। जहाँ पर उसे खानुम (सयानी गुप्ता) से प्यार हो जाता है जो की बायसेक्सुअल हैं। यह फिल्म दिव्यांगों की यौन इच्छाओं के संघर्ष को बेहतर ढंग से दिखाती हैं। फिल्म में दिव्यांगों की यौन इच्छाओं को दर्शाने के लिए जिन संवादों का प्रयोग किया गया है वह इस प्रकार है–'आई, एक लड़का पसंद है! कभी किसी को डेट किया है?, तुम... सिर्फ तुम।' **(फिल्म–'मार्गरिटा विथ अ स्ट्रॉ', निर्देशक–शोनाली बोस, वर्ष–2014, अवधि–100 मिनट देखें)**

कहीं–कहीं दिव्यांगों को उनकी स्थिति को दर्शाने के लिए कुछ संवाद भी प्रयोग हुए हैं जैसे–'नॉर्मल लोगों के साथ कुश्ती करने से तुम नॉर्मल नहीं हो जाओगी।' **(वही फिल्म)** फिल्म ने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई सम्मान प्राप्त किए।

इन फिल्मों के अलावा दिव्यांगता जैसे विषयों पर और भी फिल्में बनी हैं जैसे दोस्ती (1964), कोशिश (1972), स्पर्श (1980), सदमा (1983), खामोशी (1996), आँखें (2002), कोई मिल गया (2003), पा (2009), माई नेम इज खान (2010), बर्फी (2012)। लेकिन भारत जैसा देश जहाँ सिनेमा की पहुँच इतने व्यापक स्तर पर हो वहाँ ये फिल्में नगण्य के समान प्रतीत होती हैं। इन फिल्मों के माध्यम से समस्या को तो दिखाया गया है किन्तु उस समस्या का सार्थक समाधान क्या हो सकता है? यह नहीं बताया गया है। ऐसी फिल्में समाधान के स्थान पर दर्शकों के लिए एक प्रश्न छोड़ जाती हैं। डॉ. अर्चना अपने व्याख्यान में कहती हैं–'इन फिल्मों के माध्यम से समाज की जो आम धारणा है इन दिव्यांगों के प्रति उस धारणा को या जो गलत भ्रांतियाँ समाज में व्याप्त हैं उनको भी दूर करने की आवश्यकता है, चूँकि फिल्में शसक्त माध्यम है। समाज के हर वर्ग का व्यक्ति फिल्म देखता है तो इन फिल्मों के माध्यम से बहुत ही सार्थक संदेश समाज को दिया जा सकता है। दिव्यांग जो है स्वतन्त्र, स्वावलम्बी और सक्षम व्यक्ति की तरह ही अपना जीवन जी रहे हैं और इन्होंने कई स्तरों पर अपने आप को साबित किया है। यदि हम इनके जीवन को और श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं तो सबसे पहले इनके प्रति हमारा बर्ताव बेहतर होना चाहिए, और हमारा बर्ताव, हमारा व्यवहार तब बेहतर होगा जब हमारा अपना विचार बेहतर होगा। हमारी अपनी मानसिकता जब बेहतर होगी तो हमें समाज की मानसिकता को माँजने की, तराशने की आवश्यकता है। उसकी भ्रांतियों को दूर करने की

आवश्यकता है। जिससे हमारे दिव्यांग ज्यादा साहस और हिम्मत के साथ जीवन में आगे बढ़ सकें।' **(डॉ. अर्चना उपाध्याय, व्याख्यान- 'हिन्दी सिनेमा में दिवयांग चरित्र का मनोविज्ञान', वही लिंक)**

सिनेमा में कई मुख्य दिव्यांग पात्रों के तौर पर (उदाहरण- इकबाल, ब्लैक, गुजारिश) शारीरिक अक्षमता होने के बाद भी जीवन में कुछ कर गुजरने की ललक को दिखाया गया है। इसके विपरीत, हाल की कुछ हिंदी फिल्मों ने दिव्यांग लोगों के बारे में गलत धारणाएँ प्रदर्शित करना जारी रखा है। जिसका खामयाजा दिव्यांग जन आए दिन भुगतते रहते हैं। भारतीय सिनेमा ने अक्सर विकलांग लोगों के बारे में नकारात्मक रूढ़िवादिता को मजबूत किया है। जिसके उदाहरण के रूप में ओमकारा (2006) फिल्म में लँगड़ा त्यागी (सैफ अली खान), बाहुबली द बिगनिंग (2015) फिल्म में बिज्जालदेव (नास्सर) को खलनायक के रूप में दिखाया गया है। जिससे समाज में लोगों के बीच एक गलत संदेश जाता है कि दिव्यांग व्यक्ति धोखेबाज होते हैं और वो अपने लाभ के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। इस तरह की फिल्में एक विकृत रूप प्रस्तुत करती हैं और दर्शकों को ऐसा महसूस कराती हैं जैसे यह दिव्यांगों का सामान्य चरित्र होता है। कुछ फिल्मों में दिव्यांगता जैसे विषयों को लिया तो गया है लेकिन दिव्यांगता का शिशुकरण कर दिया गया है। जिसे 'कोई मिल गया' (2003) और 'बर्फी' (2012) जैसी लोकप्रिय फिल्मों में देखा जा सकता है । यहाँ, दिव्यांग वयस्कों को उनके कार्यों, भाषण या क्षमताओं में निर्दोष या यहाँ तक कि बच्चों के समान चित्रित किया जाता है। यह इस विश्वास को बढ़ावा देता है कि विकलांग व्यक्तियों को हमेशा किसी की देखरेख में रहने की आवश्यकता होती है और वे स्वतंत्र नहीं रह सकते, जिस तरह से कोई व्यक्ति अपने बच्चे के साथ स्वतंत्र रह सकता है।

गोलमाल (2006) में लक्की गिल (तुषार कपूर) के किरदार को बोलने में दिक्कत है, सोमनाथ भारद्वाज (परेश रावल) और मंगला भारद्वाज (सुष्मिता मुखर्जी) के किरदारों को अंधे के रूप में चित्रित किया गया है। मुझसे शादी करोगी (2004) में दुग्गल साहब (कादर खान) के किरदार में हर दिन एक अलग दिव्यांगता देखी जाती है। इन फिल्मों के अलावा दिव्यांगता को एक बीमारी और हास्य उत्पन्न करने के लिए बनाए जाने वाले सिनेमा की सूची बहुत लम्बी है। ये सब दिव्यांगों के पात्रों के माध्यम से मजाक के लिए किया जाता है। कोई कह सकता है कि ये मनोरंजन के लिए बनी हल्की-फुल्की फिल्में हैं। लेकिन यह स्वीकार करना आवश्यक है कि हम इतिहास में एक ऐसे बिंदु पर हैं जहाँ मिथकों और रूढ़ियों से परे देखने और दिव्यांगता को वास्तव में समझने का एक बड़ा समय है। इसे एक पंचलाइन तक सीमित करना दर्शकों के दिमाग में मौजूदा रूढ़िवादिता को मजबूत करता है।

ऐसे में सिनेमा के साथ-साथ समाज, निर्माता, निर्देशक, सरकार की जिम्मेदारी बनती है कि वे दिव्यांगों की मनस्थिति को समझे तथा उनके साथ सहानुभूति का व्यवहार रखे, खुद जागरूक बने और औरों को भी जागरूक करे तथा सिनेमा में दिव्यांग जनों को खलनायक या हास्य पात्र की तरह चित्रित करके न दिखाएँ। डॉ. वंदना भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू का एक संस्मरण याद करते हुए बताती है कि 'नेहरू जी ने दहेज प्रथा पर एक फिल्म देखी थी, जिसके बाद दहेज प्रथा का कानून लाया गया।' **(डॉ. वन्दना झा, व्याख्यान-'हिन्दी सिनेमा और हाशिए का समाज (विशेष सन्दर्भ दिव्यांगजन का अंकन)', वही लिंक)**

ऐसा ही वर्तमान समय के फिल्म निर्माता और निर्देशकों को करना चाहिए, कि वे अपनी फिल्म की विषयवस्तु को दिव्यांगों की समस्याओं पर आधारित करते हुए गम्भीर सिनेमा बनाएँ। जिससे देश की सरकारों का ध्यानाकर्षण दिव्यांगों की समस्याओं की ओर हो।

अत: सिनेमा में दिव्यांगों की स्थिति एक अंतर्द्वंद्व पैदा करती हैं, कहीं-कहीं दिव्यांगों की स्थिति हास्यास्प्रद दिखती है, तो कहीं प्रेरणा स्रोत बनके उभर कर आती हैं। किसी भी समाज की स्थिति और समस्याओं को दर्शाने के लिए सिनेमा सबसे सशक्त माध्यम बन सकता है। ऐसे ही कुछ प्रयास हम दिव्यांगों के लिए भी कर सकते हैं। दिव्यांगों के प्रति समाज में फैली भ्रांतियों को सिनेमा के माध्यम से तोड़ा जा सकता है। सिनेमा में दिव्यांग पात्र को एक खलनायक या हास्य पात्र के रूप में चरित्रार्थ नहीं करना चाहिए। बल्कि उनकी क्षमताओं और प्रतिभाओं को जानकर उन्हें निखारने का काम किया जाना चाहिए। दिव्यांगों को समाज से सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है बल्कि उनको बराबरी की, समान अवसर एवं सम्मान की आवश्यकता है।

हाउस नं. 08, गली नं.-01
चरणसिंह कॉलोनी, प्रताप विहार,
विजय नगर, गाजियाबाद-201009 (उ.प्र.)
मो.-9582427718

संक्रमित करने वाली कुछ पंक्तियाँ

– जयप्रकाश मानस

जन्म – 2 अक्टूबर 1965।
शिक्षा – एम.ए., एम.एस.सी.।
रचनाएँ – दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – अंबिका प्रसाद दिव्य रजत अलंकरण सहित अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।
विशेष – अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन।

21 मार्च, 2020

सोचा किसने था!
यह लगभग कल्पना से परे था : कि एकबारगी किसी दिन सारे के सारे देश–सारी की सारी मानव बस्तियाँ–उसके सारे के सारे निवासी, एक साथ एकबारगी किसी अदृश्य शत्रु से युद्ध के लिए विवश हो उठेंगे!

सोचा किसने था कि मनुष्य जाति अपने–अपने घरों या आश्रय स्थलों की चहारदीवारी के भीतर न चाहते हुए भी ख़ौफ़ से भरे एकांतवास वाले नायाब कैदी में बदल जाएगी और सारा संसार कोरोना (कोविड–19) नामक वायरस वाली आतंककारी महामारी के लिए बिना दीवार वाली खुली जेल की तरह।

आज की कड़वी वास्तविकता यही है, यही अनचाहा यथार्थ है। अप्रिय सचाई यही कि 80 साल पहले, दूसरा विश्वायुद्ध जहाँ महज 70 देशों के बीच लड़ा गया था, वहीं कोरोना से आज पूरी दुनिया जंग लड़ रही है। पौराणिक इतिहास के सहारे कोरोना के विस्तार और उससे जूझने के विश्वव्यापी संघर्ष को मैं सुरसा राक्षसी और हनुमान जी के बीच की घटना की तरह देखता हूँ–

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा, तासु दून कपि रूप देखावा।
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा, अति लघुरूप पवनसुत लीन्हा।

सच्चाई भी तो यही है कि कोराना वायरस ज्यों–ज्यों अपनी रफ़्तार बढ़ा रहा है, त्यों–त्यों विश्व की प्रत्येक व्यवस्था या तंत्र द्वारा सारे संभावित उपायों, रणनीतियों, प्रयासों के साथ उसका रास्ता रोकने की जद्दोजहद कि जा रही है। कहाँ जाकर थमेगा यह युद्ध।

29 मार्च, 2020

कोरोना काल : एक अनुभव

यह एकांतवास नहीं, भुनी हुई मूँगफली का डोंगा है।
मूँगफली को उत्प्रेक्षा में कहें तो–स्मृति।
बाहर से रूपहीन। भीतर से रसदार। छिलके उतारकर फेंकते चलें शून्य की झाड़ियों में।
हथेलियों पर साबुत ललिहर–ललिहर दाने।

फिर अन्यमनस्कता में देर तक दाँतों से काटते रहने का आदिम अभ्यास। किसी असभ्य और उद्दंड बच्चे की तरह। ऐसी असभ्यता, जिसमें अनाहूत उकताहट की कालावधि को भी चबा जाने का हुनर शामिल है।

ऊपर से जीभ का थोड़ा–सा नमक हो तो फिर क्या कहने!
वैसे जितना चबाएँगे, उतनी ही पाचन शक्ति और फिर पौष्टिकता का उपहार।

याद रखें–अनुपस्थित जिगरी दोस्तों की भी काल्पनिक उपस्थिति मानकर उन्हें लुत्फ़ के कुछ दाने ज़रूर देते चले जाए।

और चलते–भटकते थक जाएँ तो टँगे हुए छिलकों को उतार लें।
याद रहे–मन के पिछवाड़े वाली माटी में उन्हें दबाना न भूलें।

4 अप्रैल, 2020

एक कवि का अर्थ–दूसरे कवि की कविता में दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर, डॉ. विनय विश्वास जी यूँ तो पुराने युवाकवि और आलोचक हैं लेकिन इसी सप्ताह हम दोनों एक–दूसरे के नए–

नए मित्र बने हैं। फ़ेसबुक पर। कोरोना-काल में। उनकी एक बेहद पठनीय आलोचनात्मक किताब भी है-आज की कविता। अब तक उसके 2-2 संस्करण आ चुके हैं-राजकमल से। बहरहाल समकालीन कविता पर उनकी इस मौलिक स्थापना से दुनिया में इनदिनों का कोई भी संपूर्ण और सिद्धहस्त कवि सहमत न हो-मैं तो सहमत हूँ पूरी तरह और ज़िम्मेदारी के साथ भी-'समकालीन कविता का स्वरूप कुछ ऐसा है कि एक कवि की पंक्तियों का अर्थ दूसरे कवि की पंक्तियों से जुड़कर खुलता है। सशक्त होता है। एक कविता की अनुभूति दूसरी कविता कीअनुभूति से मिलकर अपने समय की एक समर्थ काव्यानुभूति का निर्माण करती है। बहुत सारी कविताएँ एक साथ पढ़ी जाएँ तो अधिकांश एक-दूसरे को पूरा करती नज़र आती हैं।'

5 अप्रैल, 2020

भगवान का अपना बगीचा :-हमारे ब्लॉक की छत हमें नीले आसमान से ले जोड़ती है और बालकनी सीधे ज़मीन से। छत -आसमान के नीचे-नीचे उड़ने वाली पक्षियों से मिलाने का ठीहा और खिड़की-धरती के ऊपर-ऊपर फुदकने वाले पक्षियों से जुड़ने का। बावजूद इसके मुझे याद नहीं आता-कब इन पक्षियों को मनभर पूरे इत्मीनान से निहारने का मौक़ा मिला था! भीतर ही भीतर बतियाने का भी! कोरोना काल ने जैसे सौगात ही लिख दी है-छत और खिड़की के द्वार से अपनी भूली-बिसरी दुनिया से जुड़ने की। तो आज छत और बालकनी का ज़रूरी कोर्स पूरा कर चुका हूँ। लेकिन अब...
अब क्या घर, क्या कॉलोनी-कहीं से बाहर नहीं निकलना है। घर के बाहर से सरकारी आदेश। घर के भीतर से असरकारी आदेश। एक पति जितना भी मनमौज़ी हो-पत्नी और बाल-बच्चों के सामने धीरे-धीरे मनमारू ही बन जाता है-खिड़की के सामने कुर्सी लगाकर बैठा हूँ। जहाँ तक नज़र जाती है कॉलोनी की सड़क वहाँ तक चमचमाती नज़र आ रही है। पहली दफ़े। न आवाज़ाही-न चहल-पहल। जैसे राजधानी की कॉलोनी न हो-बचपन वाला गाँव ही हो अपना!

गाँव के बारे में सोच रहा हूँ तो आँखों में धीरे-धीरे पूर्वोत्तर का मावल्यान्नाँग गाँव उभर रहा है। मैंने शायद लिखा भी कहीं उसकी स्मृतियों के बारे में : भगवान हो, न हो-मतभेद हो सकता है लेकिन धरती पर एक ऐसा गाँव भी है जिसे बिना किसी मतभेद के कहा जाता रहा है-'भगवान का अपना बगीचा'। मेघालय में शिलांग से 90 किलोमीटर, बांग्लादेश सीमा के क़रीब बसा गाँव-मावल्यान्नाँग!

मावल्यान्नाँग यानी एशिया का सबसे साफ-सुथरा गाँव। मात्र 95 परिवारों वाले इस गाँव के सभी लोग पढ़े-लिखे हैं। ज़्यादातर लोग अंग्रेजी में ही बात करते हैं। आजीविका का मुख्य साधन के नाम पर केवल सुपारी की खेती।

तो इस बगीचे वाले गाँव की सबसे बड़ी खासियत यह कि पिछले लगभग 100 सालों से इस गाँव की सारी सफाई ग्राम वासी स्वयं करते हैं, न वे नगरपालिका अधिकारी या किसी पार्षद का मुँह ताकते हैं, न वे अपने किसी प्रधानमंत्री के कहने पर ऐसा करते हैं। चाहे महिला हो-पुरुष हो या चाहे बच्चा हो-चाहे बूढ़ा, जिसे जहाँ गन्दगी नजर आती है, सफाई पर लग जाता है फिर चाहे वो सुबह का वक्त हो, दोपहर का या शाम का और अपने ध्येय से इतना प्यार कि मजाल है सड़क पर चलते हुए किसी ग्रामवासी को कोई कचरा दिख जाए और वह सबसे पहले उसे उठाकर डस्टबिन में न डाले।

मेरी यह खुशनसीबी ही मैं भगवान से नहीं लेकिन इस गाँव के न्यारे लोगों से मिल चुका हूँ-यही कोई चार साल पहले 2016 में!

6 अप्रैल, 2020

महामारी में कविता :- नींद है कि उचटी-उचटी। सारे उपायों के बाद अपनी ज़िद पर अड़ी हुईं हैं आँखें। दूसरे पहर का संकेत देकर कुत्ते भी गली में कहीं गायब हो चुके हैं। मुख्य मार्ग पर दूर कहीं पुलिस वैन का सायरन अपनी धीमी शक्ल में मौजूद ही है। फ़ेसबुक पर कुछ ताज़ी कविताएँ तलाशने लगता हूँ। कुछ ख़ास नहीं मिलतीं। जो हैं कागज़ी फूल की तरह। जबकि कविता की बाढ़-सी उमड़ पड़ी है इधर कोरोना काल में। भला ही हो कोरोना का-उसने लगभग सभी पढ़े-लिखे को कवि बना दिया है।

मेरा ओड़िया मन कहता है-ज़रा और देख लूँ-ओड़िआ के कवि कैसे अनुभव कर रहे हैं इस विपदा को। कोरोना पर विगत 25 मार्च को लिखी गई ओड़िआ भाषा के समृद्ध कवि हरप्रसाद दास जी की समृद्ध कविता। समृद्ध यानी भाषा, बिम्ब, वस्तुविधान, छंद और बौद्धिक सरोकार के मध्य परस्पर संगति

बिठाने में मामले भी समृद्ध। समृद्ध यानी केवल नाम से नहीं बल्कि काम से समृद्ध। मूल ओड़िआ से राधु मिश्र द्वारा अनूदित। दोहराने लगता हूँ –

इक्कीस रातों तक बंद रहेगा नक्षत्र लोक इक्कीस रातों तक बंद रहेगा स्वर्ग की सीढ़ी का काम इक्कीस रातों तक बढ़ना बंद करेंगी लताओं की लौकियाँ इक्कीस रातों तक न बढ़ेंगे अँगुलियों में नाखून, न सिर में बाल न बहेगा आँखों का छलछलाता पानी। एक दिन पगडंडी से उठा कर मैले रंग के कोलाहल को रख जाएगा कोई सन्नाटे का उदास–सा बना कर तार सप्तक पर गणित में कमज़ोर कोई कृष्ण पक्ष का चाँद ग़लती से पाँव धर देगा आदमी की छाती पर और चौंक कर कहेगा आ: हा:।

खाँसना मना है इस त्रस्त माहौल में, हँसना या रोना भी मना है
बुखार तो मना है, इस राहू काल में बुढ़ापा भी मना है।
गृहवंदिनी परियों की शापमुक्ति का समय है,
यह संधिकाल शेष नाग पर सोए हुए की करवट बदलने की बेला है।
रात गहरी, वीरान सड़क, ऐसे में
निकल पड़ा हूँ धरती का भाग्य बदलने
एक हाथ में डंडा लिए, दूसरे में लालटेन
हृदय में भारत माता, तालाबंदी माथे पर।
लौटूँगा मैं बहुत ही ज़ल्द सारे विषाणुओं को समेट कर
कविता में, बिंब में मारने के लिए किसी घुप्प अँधेरे में
देखकर अमृत बेला शुक्ल त्रयोदशी के दिन।
मरे तो मर जाए मेरी कविता इस महामारी के संग
धरती पर खुली हवा में जीवित रहे आदमी।

14 अप्रैल, 2020

कोरोना काल के इस सुप्रभात में कबीर भला कैसे याद न आयें–

हम ही सिद्ध समाधि हम ही, हम मौनी हम बोले
रूप सरूप अरूप दिखा के, हम ही हम तो खेलें।

15 अप्रैल, 2020

कोरोना काल अनुभूतियों का छिटपुट :– अवकाश ही अवकाश है लेकिन किसी अतिरिक्त अछोर वाली गुफ़ा की तरह। इधर–उधर टटोलने की कोशिश में पैरों पर केवल किसी अज्ञात अपराध के दंडस्वरूप पहनायी गयी बेड़ियाँ। महसूसने की कोशिश में केवल नथुनों पर अनचीह्ने प्रजाति के चमगादड़ों की गंधाती हुई बीट।

संगीत की किसी पुरानी ज़मीन की ओर चलूँ तो उल्टे पाँव लौटना पड़ता है–गोया वहाँ आठवाँ सुर बेजा कब्जा किए किसी लठैत की तरह गुर्राता बैठा हुआ हो। थक–हारकर खिड़की के पास चला जाता हूँ व्हाया रायपुर जंक्शन, मुंबई से चलकर हावड़ा तक जानेवाली मेल पकड़ने की कल्पना करके....

कि ज़ल्दी–ज़ल्दी पीछे छूटते चले जाए प्लेटफॉर्म...
कि अनगिनत पेड़ के ऊपर उड़ते अनगिनत चिड़िया और पेड़ के नीचे चूल्हा सुलगाते अनगिनत दिहाड़ी कामगार। अफ़सोस...कहीं नहीं जा पाता हूँ। कहीं से नहीं आ पाता हूँ। बैठा रहता हूँ। जैसे विनोद कुमार शुक्ल की दीवार में ही समा हो गई हो खिड़की। जैसे स्टेशन के आऊटर पर खड़ी कोई रिजेक्टेट बोगी हो यह खिड़की!

समूचा घर जैसे हजारों वर्ष पुराने अवशेषों में बसा हुआ खंडहर रुचि संपन्न मित्र पर्यटकों के मानचित्र में जिसका कोई भी अता–पता नहीं। चहल–पहल के नाम पर कुछ ज़ल्दी–जल्दी बूढ़ा होता हुआ केवल मैं–हर वक्त इधर से उधर टहलता सबसे पुराना बाशिंदा और चौकीदार भी केवल मैं। घर और बाहर के बीच लटकता हुआ एक ताला केवल।

20 अप्रैल, 2020

न सारी की सारी खबरें बुरी :– कभी नहीं सोचा था–समय इतना भी भयावह हो उठेगा! सारी की सारी ख़बरें बुरी हो उठेगीं इस क़दर! फिर भी सारा का सारा समय न तो भयावह है– और न सारी की सारी खबरें बुरी। समय की कुछ उजली तस्वीरें भी दिखने लगी हैं–

* गंगा निर्मल हो गई है–हरिद्वार में भी, कानपुर में भी, वाराणसी में भी!
* यमुना के पानी में स्थायी तौर चिढ़ाने वाला झाग कितना कम हो गया है !
* दिल्ली की हवा 71 प्रतिशत पवित्र हो चुकी है।
* जालंधर वासियों को घर बैठे हिमालय की वादियाँ दिख रही हैं।
*हरिसुमन बिष्ट जी के अनुसार–नोएडा के सेक्टर–18 में नील गाय देखी गई है।
*सुना है–सिक्किम की राजधानी गंगटोक में हिमालयन भालू शहर तक आ गया

*देहरादून शहर के आख़िरी छोर तक हाथी आ पहुँचे।
*कोझिकोड में आबादी वाले इलाक़े तक दुर्लभ मालाबार बिलाव-कस्तूरी बिलम उठे हैं।
*ओड़िसा के समुद्री तट पर पहली बार लाखों कछुए दिन में प्रजनन करते देखे जा रहे हैं।
*गौर (भारतीय बायसन) कर्नाटक में दिन में सड़कों पर विचरने लगे।
*गाजियाबाद पिलखुआ वाले अस्पताल के बहुत क़रीब तक बारहसिंगा आ गए।
*मुंबई से प्रियदोस्त भारती जी बता रही थीं-सड़कों पर मोर दिखा...
*बिहार में बख्तियारपुर में नील गाय का झुंड खेतों के बीच से गुज़र उठें तो अचंभा नहीं!
*पटना में एयरपोर्ट बेस के आसपास तेंदुआ मँडरा रहा था।

22 अप्रैल, 2020

भयावहता की एक पुरानी कहानी :- कोरोना काल ने एकबारगी चौवन-पचपन को भी बचपन की ओर मोड़ दिया है। मैं भी शायद पीछे मुड़ने लगा हूँ कुछ-कुछ। जब-जब आप आगे नहीं बढ़ सकते-तब-तब पीछे ही मुड़ने लगते हैं। पत्थर या मृत पहाड़ की तरह यथास्थिति में मनुष्य रह भी कैसे सकता है! क्या जब-तब पीछे मुड़कर देख-निहार लेना गतिहीनता है-शायद नहीं....
गाँव के मेरे बड़े बुजुर्ग बेइंतहा याद आ रहे हैं आज। जो नहीं है आज। नानी भी। वह भी अब कहाँ!

जैसे मैं शाम ढले नानी के क़रीब ही जा बैठा हूँ। वह कहती चली जा रही है-मैं चुपचाप सुनता चला जा रहा हूँ -
'उस दरमियान चारों और भयानक प्लेग रोग फैला था। हैजा एवं चेचक की महामारी से गाँव के गाँव खाली हो जाते थे। गलियाँ पूरी तरह सूनी। लोग गाँव छोड़कर झोपड़ी तथा पेड़ के नीचे रहते थे। जब तक महामारी रोग समाप्त नहीं होता था कोई भी व्यक्ति गाँव में नहीं लौटता था। झोपड़ी में पूरा परिवार किसी तरह से 15 से 20 दिनों तक नि:शब्द पड़ा रहता था। रोग से बचाव के लिए सिर्फ गरम पानी पीते थे। किसी तरह की दवा नहीं थी। दवा के अभाव में काफी लोगों की मौत हो जाती थी। डर के मारे लोग कुएँ का पानी भी पीना छोड़ देते थे। प्लेग रोग में व्यक्तिके जाँघ में गिलटी होती थी। उसके दो-तीन दिनों बाद मौत हो जाती थी। दवा के नाम पर सिर्फ और सिर्फ़ गरम पानी और तुलसी का पत्तों का काढ़ा या अधिक से अधिक दवा के रूप में अभ्रक और लौह भस्म।'

बड़ी मुश्किल से लगभग 70 साल पहले वाली कुछ सच्ची कहानियों के अँधेरे से निकलता हूँ।
अब मैं बिलकुल अकेले हूँ अपने कमरे में। नानी भी नहीं। नानी थी भी कहाँ यहाँ!

3 मई, 2020

यही हैं वो बशीरभाई! :- 3 दिन की व्यस्तता के बाद मैं इस समय राजकोट, गुजरात से मेरे मित्र भगवान थावराणी का ईमेल पढ़ रहा हूँ-पढ़ने के साथ-साथ सहेज कर भी रख लेना चाहता हूँ-मानस जी, मेरे आराध्य कवि दिवंगत भगवत रावत से जुड़ी कुछ और स्मृतियों के साथ हूँ मैं। पिछली बार आपको जो बातें बताईं थीं उनमें यह बात छूट गई थी कि उनकी कविताएँ पहले पहल मैंने 'इंडिया टुडे' के साहित्य विशेषांक में पढ़ीं थीं। उस ज़माने में इनके बड़े अच्छे विशेषांक रहते थे। पता नहीं, अब भी छपते हैं या नहीं? सात-आठ कविताएँ थी उनकी और सभी की सभी मर्मभेदी। उनकी कविताओं की विशेषता थी, रोज़मर्रा की ज़िंदगी की बातें और उनकी इंसानों वाली भाषा, जो किसी प्रकार के अर्थघटन की कदापि मोहताज नहीं थी। हर कविताओं को पढ़ते समय लगता रहता था कि अरे! ये तो मेरी या मेरे आसपास की ही बात है या यही तो मेरे दिल में भी था!

'करुणा' के अलावा एक और भी कविता थी उस विशेषांक में जो सीधी दिल में उतर गई थी
प्याज की एक गाँठ
चार रुपए किलो प्याज
आवाज लगाई
बशीर भाई ने
मैं चौंका
वे हँस कर बोले
ले जाइए साहब
हफ्ते भर बाद
यही भाव याद आएगा
अल्लाह जाने
यह सिलसिला
कहाँ तक जाएगा
जेब में हाथ डालते हुए

मैंने कहा
आधा किलो
सुन कर बशीर भाई कुछ बोले नहीं
और एक की जगह
आधा किलो तौलते हुए मेरे लिए
ऐसा लगा
जैसे कुछ मुश्किल में पड़ गए
उनकी तराजू का
भारी वाला पलड़ा
हमेशा की तुलना में
आज कुछ कम नीचे झुका
प्याज की एक गाँठ
और उतारें या न उतारें
इस सोच में
उनका हाथ
ग्राहक से रिश्ता तय करता था
एक क्षण को
हवा में रुका
और आखिरकार
बशीर भाई जीत गए!
मैं रास्ते भर
झोले में डाली
प्याज की उस एक गाँठ को
आँखों में लिए-लिए
घर लौटा

इस कविता का जिक्र इसलिए भी कर रहा हूँ कि जब मैं पहली बार उनसे मिलने 2003 में भागा-भागा भोपाल गया था तब वो मुझे एक बार उस सब्ज़ी मंडी में ले गए थे जहाँ से वे हमेशा सब्जियाँ ख़रीदते थे। मैंने देखा, वो किसी भी सब्ज़ी वाले से कोई मोल-तोल नहीं कर रहे थे और सब उनसे प्रसन्न भाव से मुस्कुरा कर बात कर रहे थे, जैसे उन्हें 'अच्छी तरह' जानते हों! ऐसे में हम एक प्याज के ग़ल्ले पर पहुँचे तो उन्होंने मेरी ओर मुख़ातिब होकर कहा, 'प्याज की एक गाँठ' याद है?

मैंने हामी भरी तो उन्होंने प्याजवाले सज्जन की ओर देख कर कहा, 'यही हैं वो बशीरभाई!' मैं अवाचक! धन्य भाव के अलावा महसूस भी क्या कर सकता था?

सामान्य लोगों, मज़दूरों, रोज़ का कमा के रोज़ खाने वालों के प्रति उनमें एक ज़बरदस्त सहानुभूति थी जो मुझे हमेशा विरल लगती थी, तब भी और अब तो और भी।

कुछ और भी संस्मरण हैं। मानस जी, वह सब फिर कभी

29 मई, 2020

चीटियों को ऊँची आवाज़ पसंद नहीं :- माटी की सिपाही हैं चींटियाँ। गुड़, गोरस या मिठाई, जो भी अतिरिक्त हों, एक दिन सब चट कर जाती हैं चींटियाँ। चींटियों का काम है धरती पर सब कुछ चटकर जाना। किन्हें? उन्हें, जो ठीक से सँभाली जाती नहीं। उन्हें, जो खुली पड़ी रहती हैं कहीं भी। धरती पर अकारज। जैसे कंजूस की तिजौरी में उदास पड़ा धन।

चींटियाँ धरती परसबसे बड़ी सफाई कामगार हैं। उन्हें कुछ भी इधर-उधर व्यर्थ पड़ा भाता नहीं। वे कभी किसी को नहीं रोकती। न टोकती। बस चिढ़ती हैं कि इतना न इकट्ठा करो कि वह न आपके काम आये और दूसरों को भी सताये।

बहुत लघु जीव है चींटियाँ परन्तु पर्वत भी हज़म कर जातीं हैं वे। उनकी दाँत बहुत तेज़ हैं। मनुष्य के लोभ और लाभ के नुकीले डाढ़ों से कहीं अधिक धारदार। वे जड़ से फूल और मकरंद तक सब चाट जाती हैं।

चींटियों की पहुँच असीमित है। चींटिया हमसे पहले भी उपस्थित थीं। वे ही रहेंगी हमारे सौ-सौ जनमों के बाद। माटी के भीतर। माटी के संसार में। व्यर्थ को माटी में अर्थ देते रहने के लिए। चींटियों को ऊँची आवाज़ पसंद नहीं। चींटियों को यूँ किसी की गरमी बर्दास्त नहीं। प्यार से उन्हें स्पर्श कर लें-लजा-लजा जाती हैं। मन ही मन गुनगुनाती हैं। कहतीं हैं जैसे-प्यार कोई मौन गीत है। बेआवाज़ संगीत है माटी की चींटियाँ सपनों को भी लपक लें, इससे पहले हम अपनी-अपनी नींदों को सहेज लें। समेट लें। फिर उन्हें कोई एतराज़ नहीं।
रचाव
कविता स्वयं को रचने से पहले कवि को रचती है।

आदमी आदमी हुआ तो इसलिए ख्यात लेखक, जनसत्ता के संपादक प्रभाष जोशी जी का व्यक्तित्व ही ऐसा था कि बस्स, वे कहते रहें और आप सुनते रहें!

सुनना आता हो तो फिर गुनते रहें!

चाहें विषय या कथ्य की चुनौती नई कितनी भी क्यों न हो!

ऐसे ही एक आयोजन में, 20-21 साल पहले जब रायपुर में ललित निबंधों के स्थापत्य पर यथासंभव देश की पहली राष्ट्रीय संगोष्ठी हुई थी-उन्होंने अपनी बात रखते हुए गद्य का एक विचारणीय अंश रखा था, याद गया तो अभी वही -

'यथार्थवादी वर्तमानवादी होते हैं। वर्तमान में सिर्फ़ पशु ही जीते हैं, क्योंकि उसका कोई अतीत नहीं होता। आदमी आदमी हुआ तो इसलिए कि उसके स्मृति मिली और वह भविष्य के सपने देखने लगा। वर्तमान यथार्थ हो सकता है, परन्तु यथार्थ सत्य नहीं हो सकता। सत्य को यथार्थ के आर-पार देखकर ही आप पा सकते हैं।'

11 मई, 2020

कविता की पढ़ाई का नतीज़ा :- कविता की पढ़ाई-लिखाई पर आज सोचते-सोचते प्रतिष्ठित कवि-आलोचक-विचारक अशोक वाजपेयी जी के कहे पर भी सोचना ज़रूरी प्रतीत होता-झूठ कहाँ है यह, यहीतो हो रहा -

'विश्वविद्यालय स्तर पर कविता की पढ़ाई का नतीजा यह है कि हिंदी साहित्य में प्रति वर्ष जो हज़ारों छात्र एमए करके निकलते हैं उनमें से अधिकांश फिर जीवन भर साहित्य, ख़ासकर कविता की ओर वापस नहीं आते।

ज़्यादातर लोग, जिनमें स्वयं हिंदी अध्यापक शामिल हैं, पाठ्य पुस्तकों में विवश जो कविताएँ पढ़ते हैं उनके अलावा जीवन-भर फिर कविताएँ नहीं पढ़ते। इसके बावजूद कविताएँ लिखी जाती हैं-आदिवासी, दलित, ग़रीब, स्त्रियाँ यहाँ तक कि तालिबान तक कविता लिखते हैं।

हिंदी में हँसोड़ और भावुक-लिजलिजी कविता के हजारों श्रोता हैं और अच्छी कविता के बहुत कम। ज़ाहिर है कि इन प्रवृत्तियों के पीछे कविता पढ़ाने की दकियानूस और नीरस विधियों की बड़ी भूमिका है।

31 मई, 2020

मन और आत्मा :- कविता रचने के लिए नदी जैसा मन होना चाहिए-कवि बने रहने के लिए पहाड़ जैसी आत्मा।

कितना खाएँ-कितना बाँटे!
ऐसे ही दिनों गाँव से भतीजी से खबर आया करती थी -
काका, काका! कल यहाँ रहते तो मन भर देसी आम का मजा लेते। कल के आँधी-तूफान से घर कच्चे-पके आमों से पट गया है। कितना खाएँ-कितना बाँटे! आप लोग तो खरीद-खरीद कर रायपुर में!

अब नहीं आती शायद इसलिए कि भतीजी चली गई ससुराल! शायद इसलिए कि अब गाँव में आँधी ही न आ रही हो! शायद इसलिए भी अब आम भी ठीक से न आते हों...
मन ही मन
क्या दुनिया पृथ्वी का पर्यायवाची है?

जबसे घर का चूल्हा बदला

बालकवि बैरागी जी को मैं प्रायमरी कक्षा से पढ़ता चला आ रहा हूँ। अन्य बड़े कवियों की तरह वे कभी बासी नहीं होते। सबसे अहम् यह कि निहायत सरल और चित-परिचित शब्दों में अपरिचित अर्थ देजाते हैं। इतना ही नहीं, फट्ट से स्मृति के घर में स्थायी डेरा जमा लेनेवाली पंक्तियाँ।

'साहित्य अमृत' के जून, 2017 वाले अंक में उनकी एक कविता (ग़ज़ल) प्रकाशित हुई थी-'युग बीते।' वहीं से दो-तीन शेर 'गुनगुनाते हुए -

युग बीते संवाद नहीं है।
कब बोले कुछ याद नहीं है।
सूरज से पहले उठ जाना
मुरगे का अपराध नहीं है।
और
जबसे घर का चूल्हा बदला
पहले जैसा स्वाद नहीं है।

एफ-3, आवासीय परिसर
छत्तीसगढ़ माध्यमिक शिक्षा मंडल
पेंशनवाड़ा, रायपुर-492001 (छत्तीसगढ़)
मो.-94241-82664

धरोहर के दर्शन : सपरिवार

- ब्रज श्रीवास्तव

जन्म- 5 सितंबर 1966।

शिक्षा - एम.एस.सी., एम.ए., बीएड.।

जन्मस्थान- विदिशा (म.प्र.)।

रचनाएँ - तीन पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान - क्षेत्रीय सम्मान।

हम ने ख़ुद अपने-आप ज़माने की सैर की
हम ने क़ुबूल की न किसी रहनुमा की शर्त
- खलील-उर-रहमान आज़मी

पधारो सा के शिष्टाचार का मिज़ाज लिए इस पड़ोसी राज्य की सीमा रेखा हमारे शहर से ही पाँच सौ किमी से ज्यादा की दूरी पर थी। सहोदर भाई-बहनों के चार परिवारों ने अपनी आँखों में राजस्थान के पाँच छः धन्यनाम नगरों की धरती पर पाँव रखने का ख़्वाब पाल रखा था। उतरती जुलाई में अब वह दिन नज़दीक था जब हम सबको उज्जैन के लिए जाने वाली ट्रेन में अपने झोलों को रखना था। यही असबाब शाम को वीरभूमि एक्सप्रेस में पहुँचता। मगर एक इत्तिला दो दिन पहले से सभी की उमंग में कंकर बन चुभ रही थी। वह यह कि परिवार के एक सदस्य को सर्दी बुखार ने पकड़ लिया था सो बाकी तीन परिवारों के उत्साह का झूला बार-बार नीचे आ ही नहीं रहा था, रुक भी रहा था। वह सदस्य कौन था? ज़ाहिर है वह था मैं। मैं यानी जो इन पंक्तियों को आपके लिए लिखे जा रहा है।

सब लोग यह स्पष्ट सुनने के लिए बेचैन थे कि ये सफ़र होगा भी कि नहीं। अब कैसे मैं ये इल्ज़ाम अपने ऊपर लेता। इसलिए ताज़ा हवा ग्रहण करके एंटीबायोटिक दवा के सहारे आगे बढ़ता ही रहा। जब भी हमारे छोटे बहनोई कुंजेश जी हाल पूछते हम हाल बेहाल बताते हुए भी यही कहते कि ज़रूर चलेंगे। बिटिया प्रतिष्ठा और अतुल जी चौंक से जाते कि पापा ऐसी अवस्था में कैसे यात्रा रस लेंगे। सच में मौसमी अस्वास्थ्य को बस हौसला ही हरा रहा था। सावन बरस रहा था। समाचारों में तो यह ज्यादा ही रौबदार था फिर हमें फतेहसागर झील की झलकियाँ देखने उदयपुर भी जाना था। अरावली पर्वतमाला के कौतुक निहारने की ललक लिए हम एक दर्जन पुष्प अब दूसरी चिंताओं से मुक्त थे। चिंता तो सभी को बस एक ही थी कि बस ब्रज श्रीवास्तव स्वस्थ हो जाएँ और इतने स्वस्थ हो जाएँ कि पैदल टहल भी कर सकें। होटलों कि तंदूरी रोटी खा सकें। रास्ते में गाने गा सकें और तस्वीरें लेते हुए सभी बिखरे सैलानियों को सीटी बजाकर इकट्ठा कर सकें। दरअसल हम भाई-बहन और उनके बच्चे मिलकर साल में एक बार लंबी दूरी की यात्रा पर निकलते हैं। इन यात्राओं का व्यवस्थापक अक्सर मैं ही रहा करता हूँ। मुझे कमजोरी थी। फिर भी मैंने कहा कि यदि तबियत बिगड़ी तो स्टेशन या भोपाल या उज्जैन से वापस आ जाएँगे।

26 जुलाई 23-निकल पड़े सैलानी—खुशनुमा मौसम के साए में 26 जुलाई को रीवा-इंदौर एक्सप्रेस में हम लोग बैठ ही गए। बैरागढ़ (जिसे हिरदाराम नगर कहा जाने लगा है) से कविता, कुंजेश जी एवं तनु भी आ गए। मैं तबियत की वजह से अन्यमनस्क सा ही रहा। एक बार फिर मैंने मुक्ता से कहा कि हम लोग लौट लें। सभी उदास हो गए। थोड़ी देर बाद फिर मैंने आगे बढ़ते जाने का कहा। उज्जैन में कुंजेश जी ने स्टेशन के पास चंद्रगुप्त होटल में एक दस बेड का कमरा बुक कर दिया था। वहाँ तरो-ताजा होकर मुझे आराम के लिए छोड़ कर सभी लोग महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शनार्थ चले गए। मम्मी का चिंता भरा फोन आता रहा। प्रिया भी चिंतित रही कि ऐसी स्थिति में मैं कैसे घूमूँगा-फिरूँगा। लेकिन अब लौटना ठीक नहीं था। शाम को वीरभूमि एक्सप्रेस में हम लोगों ने अपनी बर्थ पर चादरें बिछाईं। विवेक-तृप्ति सहित सभी ने अंताक्षरी खेली। घर से लाईं पूड़ियाँ साझा कीं। अनुज वधू तृप्ति के टिफिन में आईं दो रोटी मुझे दी गईं। जबकि मुझे रेल में पूड़ी खाना पसंद है इसलिए मैंने अशोक जीजा जी द्वारा दी गई पूड़ी भी चुपके से ले लीं।

27 जुलाई-2023-हसीं है शहर तो उजलत में क्यूँ गुज़र जाएँ
जुनून-ए-शौक़ उसे भी निहाल कर जाएँ
-दिल अय्यूबी

उठ जाग मुसाफिर भोर भई ऐसा लगा किसी ने कान में कहा। यह भोर उदयपुर की थी और हम लोग एक होटल में पहुँचे जो पसंद नहीं आई। फिर होम स्टे की ओर गए वहाँ बहुत अच्छा अनुभव हो रहा था। यह घर विभिन्न किस्म की चिड़ियों की चहचहाहट से गूँज रहा था। बाहर खूब हरीतिमा थी। कमरों में सभी सुविधाएँ थीं। इसे एक सेवानिवृत्त पर्यटन अधिकारी संचालित करते हैं। उनके घनी सफेद मूँछें कान तक जातीं थीं। सौम्य वार्तालाप दोनों ओर से होती रही। तैयार होकर हम लोगों ने सबसे पहले करणी माता मंदिर की ओर कूच किया। इस मंदिर में हमें रोप-वे का आनंद मिला। लौटते समय ऊपर ही बने सुंदर शो-रूम नुमा दुकानों में हमने एक मसाज कुर्सी पर बैठ कर मालिश का आनंद लिया। इस बार यात्रा के खर्च के प्रभारी भान्जे देवांश रहे। उन्होंने प्रशंसा, प्रिंसी, रानू के साथ वीडियो गेम खेले। नीचे आकर अगले स्थान पर जब पहुँचे तो बहन कल्पना ने बताया कि उनका मोबाइल फोन खो गया है। कविता और मुक्ता ने उपस्थित लोगों से सामान्य पड़ताल की। ऐसा लगा कि होम स्टे में ही छूट गया तो अशोक जीजा जी और मैंने घर आकर उसे पा लिया। यह एक तसल्ली थी। इस बीच हम दोनों को छोड़कर सभी ने सिटी पैलेस घूम लिया था। फिर हम सभी साथ-साथ अगले गंतव्यों तक गए।

सज्जनगढ़ एवं बाहुबली हिल के साथ-साथ फतेहसागर झील देखना अलग ही अनुभव रहा। रास्ते में भुट्टे खाए। इसके बाद एक्वेरियम घूमा। साफ-सुथरी सड़कों की टीवी में देखी विदेश की सड़कों से तुलना मन ही मन हो रही थी। इसके बाद हम लोगों ने सहेलियों की बाड़ी देखी। गाइड ने बहुत रोचक तरीके से उसके बारे में बताया। सावन-भादों, बाबड़ी और किसिम-किसिम के पेड़ पौधों ने सच में मन को चकित किया।

इस उद्यान के सुन्दर कमल के ताल ने बहुत ध्यान खींचा। साथ ही संगमरमर के मंडप और हाथी के आकार के फव्वारे ने भी आकर्षित किया। गाइड ने बताया कि यह बगीचा फतेहसागर झील के निकट स्थित है जिसका निर्माण राजकीय महिलाओं के लिए 1710 से 1734 ई. में महाराणा संग्राम सिंह ने करवाया था। यह भी कि इस उद्यान की संरचना खुद महाराणा सांगा ने तैयार की थी और फिर अपनी महारानी को दिया था। यह उद्यान राजकीय महिलाओं के लिए काफी अच्छा और सुंदर रहा। सात रानियाँ अड़तालीस सहेलियों के साथ वहाँ आमोद-प्रमोद करतीं थीं।

इसके बाद हम लोगों ने फिर एक-एक समोसा खाया और अब चल पड़े लोक कला मंडल जहाँ जिला उदयपुर के प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष, रंगकर्मी डॉ. लईक ने हमें लोकनृत्य और कठपुतली नृत्य का शो दिखाया और कुछ अंश संदर्भित बातें कहीं। वहीं पर किशन दाधीच आ गए थे। इन मुलाक़ातों के सेतु जयपुर में रह रहे फारूक आफरीदी थे। वह फ़ोन पर लगातार हमारा हाल पूछकर यथासंभव सहयोग भी कर रहे थे। भोजन उपरांत अगले दिन माउंट आबू की यात्रा की योजना बना कर हम बिस्तरों पर चले गए।

28 जुलाई-बादलों के बीच रहने का दिन।

टेम्पो ट्रेवलर बारह सदस्यों के लिए एक मुनासिब वाहन था जिसमें बैठकर हम लोग उदयपुर से माउंट आबू के रास्तों के मनोरम पहाड़ी दृश्य देखते हुए चलते गए। रवीन्द्र जैन का गीत हुस्न पहाड़ों का गुनगुनाया। वैसे पूरे रास्ते भर हम सभी लोगों ने खूब गाने गाए, वीडियो बनाए। माउंट आबू में देलावाड़ी मंदिर की नक्काशी का नयनसुख लेने के बाद गुरुशिखर के लिए चल पड़े। बहुत ऊँचाई पर है यह, राजस्थान का एवरेस्ट कहा जाता है इसे। दत्तात्रेय का मंदिर है। बादल बिल्कुल बगल से गुजर रहे थे। रोमांचक अनुभव था। बारिश हो रही थी। डर भी लग रहा था कि कहीं तेज बारिश न हो जाए। मगर किसी तरह लौट आए। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी संस्था का एक हाल देखा। फिर गए नक्की झील के किनारे-किनारे। कुंजेश जी के एक परिचित के सौजन्य से मुफ्त नौका विहार किया। प्रशंसा और मुक्ता ने मेरी कुछ तस्वीरें लीं।

और वापिस की यात्रा भजन, गीत, राहभोजन के साथ नाथद्वारा में समाप्त हुई।

29 जुलाई-भक्ति और इतिहास के बीच

जैसा सोचा था नाथद्वारा शहर उससे भी ज्यादा सुंदर दिखाई दिया। सुबह देखा कि मंदिर में भीड़ बहुत थी। किसी तरह श्रीनाथ जी की प्रतिमा के दर्शन सभी ने किए। फिर एक टैंपो ट्रैवलर किराए से लेकर हम लोग हल्दी घाटी गए। इस स्थान पर पहुँच कर बहुत मन दुखी सा हुआ। गर्व गौरव एक अलग सोच है। मुझे दुख इस बात का था कि ज़मीन और अहंकार के लिए ये युद्ध कितने हिंसक होते थे। तस्वीर लेते समय भी एक ग्लानि थी। महाराणा प्रताप ने भील जनजाति के साथ मिलकर अकबर की सेना से मुकाबला किया था। आगे बढ़े तो मेवाड़

राज्य के इष्ट रहे शिव मंदिर–एकलिंग जी का मंदिर भव्य था जो कैलाश पुरी में है। वहाँ हम लोगों ने मिर्च के भजिए भी खाए। इसके बाद साँवलिया सेठ गए। इस मंदिर की भव्यता पर मैं चकित हुआ। यह शायद इसलिए था कि कृष्ण यहाँ सेठ के रूप में थे तो यहाँ व्यापारी लोग ज्यादा दान देते होंगे। इसके बाद हम लोग चित्तौड़गढ़ पहुँचे। हमें वहाँ के मित्र अनिल सक्सेना के सौजन्य से सर्किट हाउस में सुंदर और सुविधाजनक कमरे मिल गए थे।

30 जुलाई 2023

गढ़ में हैं चित्तौड़गढ़ बाकी सब गढ़ैया।।

शहर खोदा तो तवारीख़ के टुकड़े निकले
ढेरों पथराए हुए वक्त के सफहों को उलट कर देखा

– गुलजार

आटो में बैठकर जब चित्तौड़गढ़ किले की चढ़ाई चढ़ रहे थे तो बड़े बड़े दरवाजे बीच में आ रहे थे।

सबसे पहले हमने मीराबाई का मंदिर देखा। एक कवयित्री से संबंधित स्थान होने के कारण मुझे थोड़ा अपनापन सा लगा। इसके बाद विजय स्तंभ और उसके ही समीप के स्थान देखे। बड़ी झील थी इसी के आसपास गाइड के गीत–**आज फिर जीने की तमन्ना** की शूटिंग हुई थी। मैंने भी वही गीत उसी जगह पर गुनगुनाया। इसे कुंजेश जी ने कैमरे में कैद किया। ऊपर जौहर का स्थान था। उस स्थान को देखकर मन फिर दुखी हुआ। इसके बाद पद्मिनी महल का वह हिस्सा देखा जहाँ अलाउद्दीन खिलजी ने उसके सौन्दर्य को जलाशय में प्रतिबिंबित देखने की हठ पूरी की थी। जैन मंदिर और कीर्ति मंदिर को देखने के बाद सूरज पोल देखा। पूरे दिन हम मेवाड़ के राजा–रानियों के प्रसंगों को सुनकर उनके विचारों में खोए रहे। यहाँ फिर भी लगा कि पुरातत्व विभाग ने संरक्षण ठीक से नहीं किया। कोई भी स्थान साफ सुथरा नहीं था। ऐसा लगा कि पद्मावती फिल्म की शूटिंग भी यहाँ हुई होगी। बच्चों ने यहाँ अच्छी तस्वीरें लीं और वीडियो बनाए। समय इतना ही था। इस गढ़ को घूमने के लिए हमें एक दिन और मिलता तो ठीक रहता लेकिन वापसी की ट्रेन का समय हो रहा था। एक होटल पर कठियावाड़ी भोजन की तलाश को पूरा करने बैठे मगर असंतुष्ट होते हुए उठे। रात में हम लोगों ने अपनी छुक–छुक गाड़ी पकड़ी और लौटकर ब्रज जी घर को आए।

यानि सभी बारह लोग वापस आए और हाँ अब मैं स्वस्थ था। गुलाम मुर्तजा राही का शेर याद आया।

चले थे जिस की तरफ़ वो निशान ख़त्म हुआ
सफ़र अधूरा रहा आसमान ख़त्म हुआ ।

एल–40, गोदावरी ग्रीन कॉलोनी,
पुरानपुरा, विदिशा–464001 (म.प्र.)
मो. – 9425034312

वीर नारी सम्मान में गीत प्रस्तुति

ईश्वर के घर केरल का भयावह स्वरूप

– शिप्रा ओझा

जन्म – 15 अप्रैल 1989।
जन्मस्थान – बस्ती (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

बात है 21 जुलाई सन् 2018 की आपको तो पता होगा ही केरल में मानसून सबसे पहले आता है, और जुलाई यूँ ही भीषण बारिश के दिन गोरखपुर से निकलने के पहले ही नदियों में बाढ़ के चर्चे जोरों पर थे, हर एक न्यूज चैनल पर यही समाचार छाया हुआ था। किंतु हमारा हौसला पस्त न हुआ। सोचा निकलते हैं, जो होगा देखा जाएगा। मेरा रिजर्वेशन बहुत पहले से था तो न जाना पूरी तरह से पैसों को बर्बाद करना था जो कि हम मध्यवर्गीय लोगों के लिए बहुत बड़ी बात है, हम समस्याओं से तो जूझ लेंगे पर हमारा नुकसान न हो इस बात का खास ख्याल रहता है हमें। खैर हम भी झोला उठाए और निकल पड़े।

गोरखपुर से दिल्ली का सफर हमें स्लीपर बस से तय करना था। मन में ढेर सारे विचार निरंतर आ रहे थे। उन सब को एक तरफ रख कर मैंने सोने की कोशिश की पर जब आँखों में सपने होते हैं तो नींद भी नहीं आती। खैर जैसे-तैसे सोते-जगते हम सुबह छः बजे दिल्ली पहुँच गए। वहाँ से बैंगलोर और बैंगलोर से कोच्चि की हमारी फ्लाइट थी। कई बार फ्लाइट से सफर करने के दौरान ऐसा महसूस होता है इससे अच्छा तो हमारा भारतीय रेल है। एक तो सस्ती टिकट ऊपर से इतनी जगह कि आप पूरी तरह पसर के सो भी सकते हैं और टहल भी सकते हैं। खैर समयाभाव के कारण हमें फ्लाइट से ही जाना पड़ा। जैसे-जैसे हम कोच्चि पहुँचते गए ऊपर से ही नजारे बेहद खूबसूरत और मन को आनन्दित करने वाले थे। कोच्चि एयरपोर्ट पर उतरने पर पता चला कि यह अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा सौर ऊर्जा से चलने वाला भारत का पहला हवाई अड्डा है। कार ड्राइवर वहाँ पहले से ही मौजूद था। लोग क्या बोल रहे ये हमें समझ तो नहीं आ रहा था वे सभी अपनी भाषा (आम बोल चाल की भाषा) मलयालम में बात कर रहे थे। भगवान की कृपा थी कि हमारे ड्राइवर को हिंदी आती थी। उसको हिंदी बोलते देख ऐसी खुशी महसूस हुई जैसे दूर किसी देश में कोई अपना मिल जाये। पर वह खुशी कुछ क्षण की ही थी जब उसने बताना शुरू किया कि यहाँ बारिश बहुत हो रही है और लोग यहाँ से निकल रहे हैं। आप को इस वक्त नहीं आना चाहिए क्योंकि भूस्खलन के कारण रास्ते बंद हैं और बाढ़ की पूरी संभावना है। यह सुनकर हमारे चेहरे जो अभी 100 वॉट के बल्ब जैसे चमक रहे थे वे 0 (जीरो) वॉट के बल्ब जैसे हो गए।

खैर मुड़ के जाना तो हमें था नहीं। यह तय हुआ कि अब आ गए हैं तो थोड़ा घूम ही लिया जाए। हम वहाँ से मुन्नार के लिए निकल पड़े। मुन्नार का अर्थ तीन नदियाँ माना जाता है। मून यानी 'तीन' और आर का अर्थ है 'नदी' इस तरह मुन्नार का अर्थ है 'तीन नदी'। ये तीन नदियाँ हैं-मुथिरापुझायर, नल्लठन्नी और कुंडाला। मुन्नार के बारे में हमने जितना भी सुना था उससे कहीं ज्यादा सुन्दर है। वे खाली सड़कें और चाय के बागानों के मनमोहक दृश्य, रास्ते भर में बारिश के कारण फूटे हुए जल के छोटे-छोटे स्रोत मन को इतना सुकून दे रहे थे कि सारी थकान पल भर में गायब सी हो गई थी। मुन्नार में खाने-पीने की छोटी-बड़ी अनेक दुकानें हैं जो देखने में आकर्षक तो नहीं हैं पर यहाँ सस्ता और अच्छा भोजन मिल जाता है। हमें बस शाकाहारी भोजन ही चाहिए था तो हम किसी शाकाहारी भोजनालय की तलाश करने लगे। केरल के लोगों का प्रमुख भोजन चावल, मछली और माँस है। मलयाली साग-सब्जियाँ, मछली, अंडा इत्यादि से बनी सब्जियों से मिलाकर चावल खाना पसंद करते हैं। यहाँ ऐसे पकवान प्रिय हैं जो भाप में पकाए जाते हैं या फिर

तेल में तले जाते हैं। सामान्यत: केरल का भोजन तीखा और सुगन्धित होता है। केले के पत्तों में भोजन करने का रिवाज पुराने काल से ही चला आ रहा है। यहाँ आज भी प्रीतिभोज में केले के पत्ते का प्रयोग होता है। केरलीय समाज में बाएँ हाथ से खाना खाना आज भी बुरा माना जाता है।

एम. जी. रोड पर स्थित अनेक शाकाहारी भोजनालय हैं जो विशुद्ध शाकाहारी हैं और उसका खाना भी एकदम लजीज। मैंने लोगों से सुना था कि वहाँ शाकाहारी व्यंजन अच्छा नहीं मिलता। बस दोसा, उपमा आदि ही मिलेगा किंतु यहाँ का भोजन कर के सारे भ्रम दूर हो गए। वहाँ एक से बढ़कर एक शुद्ध शाकाहारी व्यंजन थे। भरपेट भोजन के बाद हम होटल चले गए। उस रात पूरी रात बारिश होती रही। मन रुआँसा-सा हो गया था। सुबह बारिश कम हुई तो झटपट तैयार हो कर हम निकल गये मुन्नार घूमने। वहाँ कभी तेज धूप होती तो कभी अचानक बारिश। समुद्रतल से लगभग 1600 मीटर ऊपर स्थित यह हिल स्टेशन कभी दक्षिण भारत में ब्रिटिश सरकार की गर्मियों का विश्रामस्थल हुआ करता था। बेतरतीब फैले चाय के बागान, खूबसूरत पानी के झरने सब मन को ऐसे आकर्षित कर रहे थे मानो उसमें कोई चुम्बकीय शक्ति हो।

उसके बाद हम रविकुलम राष्ट्रीय उद्यान देखने निकल पड़े मौसम का मिजाज बिहारी की नायिका की तरह पल-पल बदल रहा था। दूरविकुलम विलुप्त प्राय जंतु नीलगिरी धार के लिए प्रसिद्ध है। 97 वर्ग कि. मी. में फैला यह उद्यान अनेक दुर्लभ प्रजातियों का घर है, पश्चिमी घाट के इस इलाके में हम नीलाकुरिंजी का फूल देखने गए थे। यह 12 वर्षों में एक बार लिखते हैं, इसके खिलने के कारण ये पहाड़ी नीले रंग की हो जाती है। 2018 में ये फूल खिलने वाले थे हो सकता है खिले भी हों पर हम उसे नहीं देख पाए मन बहुत व्यथित हो गया। ऊपर पहुँचते ही तेज बारिश होने लगी और लोग ऊपर न जाने के लिए सचेत करने लगे, बारिश अधिक होने से ऊपर खतरा हो सकता है, जान बची रहेगी तो फिर नीलकुरिंजी के फूल देख लेंगे यह सोचकर हम वापस आ गए।

केरल प्राकृतिक सुषमा से भरा पड़ा है। मोतियों के लड़ियों सी सुन्दर अनेकानेक निर्झर कदम-कदम पर निकले थे। पहाड़ों के हरे-भरे झुरमुट सीढ़ीदार खेत, कोहरे की चादर में ढके चाय के बागान सब कुछ आश्चर्यचकित कर देने वाला था। यहाँ पहुँच कर ऐसा लगता मानो आप बादलों को अपने हाथ में ले लेंगे।

उद्यान से वापस आते समय भूस्खलन के दिल दहलाने वाले नजारे दिए। यहाँ के लोग बेहद ईमानदार व संकोची होते हैं। जब ड्राइवर ने कार में तेल डलवाने के लिए रोका तो उसने बताया कि आप उधर न देखें यदि आप ऐसा करेंगे तो उन्हें बुरा लगेगा। वह अपना काम पूरी ईमानदारी से करेंगे। वहाँ सड़कों के नियम सख्त हैं और लोग पूरी ईमानदारी से उसका पालन भी करते हैं। मुन्नार में आपको गाड़ी के हार्न की आवाज सुनाई नहीं पड़ती क्योंकि लोग हार्न बजाना पसंद नहीं करते।

रास्ते में हम लोगों ने अटूटकड़ झरना देखा, यह जल प्रपात तेज धारा में गिरता हुआ रोमांच पैदा कर रहा था।

अगले दिन सुबह हम लोग चाय संग्रहालय और मत्तुपेट्टी डैम गये। यहाँ के चाय बागानों को सरकार ने टाटा कम्पनी को लीज पर दे रखा है। ये बागान उनके द्वारा उत्पादित चाय की गुणवत्ता के लिए जाने जाते हैं। प्रकृति प्रेमियों के लिये यह स्थान स्वर्ग से कम नहीं है। चाय संग्रहालय की स्थापना टाटा टी द्वारा 2005 में नल्लथननी एस्टेट में की गई। यह संग्रहालय मुन्नार में चाय के विकास की यात्रा को बताता है।

उसके बाद हम निकल पड़े अगले गन्तव्य की तरफ 'एलेप्पी' हमारे ड्राइवर ने हमें वहाँ जाने के लिए मना किया और बताया एलेप्पी पूरी तरह पानी में डूबा है। रास्ते पानी से भरे हुए थे पर मन नहीं मान रहा था। केरल आकर एलेप्पी न जाएँ तो हमारी केरल यात्रा अधूरी ही रहेगी। भारत के केरल राज्य के आलाप्पुड़ा जिले में स्थित एक नगर है और जिले का मुख्यायल भी, यह लक्ष्यद्वीप सागर के किनारे बसा हुआ है, जो अरब सागर का एक दक्षिणी-पूर्वी अंश है। अलेप्पी को 'पूर्व का वेनिस' भी कहा जाता है। यहाँ की बेम्बनाड़ झील को केरल राज्य की सबसे बड़ी झील माना जाता है अलेप्पी अपने बैकवाटर नहरों, धान के खेतों और लैगून के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ घने ताड़ के

पेड़ों के साथ हाउसबोट का आनंद ही कुछ और है। जो कुछ सुना था ठीक उसके विपरीत जब हम वहाँ पहुँचे तो सागर ने अपना विशाल स्वरूप धारण किया था। किनारे बसी बस्ती, उजड़ी झोपड़ियाँ, कटी हुयी सड़कें, उखड़े वृक्ष और खेतों में समायी जलशशि को देखकर मन पुनः रुआँसा हो गया।

हिंदू संस्कृति में सागर को एक देव के रूप में वर्णित किया गया है। किंतु यहाँ-वहाँ देव तांडव करते हुये नजर आ रहे थे। जलराशि अपने भीषण स्वरूप के दर्शन करा रही थी। विधाता की अद्‌भुत रचना है जल जिसे जीवन कहा जाता है और विस्तार पा जाने पर वह मृत्यु का तांडव भी बन जाता है। आगे का रास्ता कठिन है यह जानते हुए भी यहाँ पहुँचकर स्वयं पर बहुत गुस्सा आ रहा था। कल-कल ध्वनि के स्थान पर बादलों के गर्जन सी ध्वनि हो गई थी। प्रकृति के उस विकराल रूप को देखकर मुझे प्रसाद जी की कामायनी की पंक्तियाँ अनायास ही याद आ गईं -

विकल हुआ सा काँप रहा था,
सकल भूत चेतन समुदाय।
उनकी कैसी बुरी दशा थी,
ये वे विवश और निरुपाय।।

हाउसबोट में डर-डर के बैठते हुए हमने पानी के बीच में बने हुए घरों को देखा, उनका जीवन भी कैसा अद्‌भुत था। विद्यालय, दुकानें सब उसी पानी में तैरते हुए, तैरता हुआ सब्जी का बाजार। जैसे यहाँ लोगों के घर पर कार या बाइक खड़ी रहती थी। वैसे ही वहाँ के लोगों के घर के सामने नाव खड़ी थी। मन सोचने लगा कितना मुश्किल होगा यहाँ जीवन। पर यहाँ के लोग तो बिल्कुल खुश और मस्त थे। अगस्त और सितंबर के महीने में होने वाली पारम्परिक नौका दौड़ यहाँ का प्रमुख आकर्षण हैं। यहाँ आप नाव किराए पर लेकर भी बैकवॉटर का आनंद ले सकते हैं। यहाँ स्थानीय व्यंजनों में शाकाहारी और मासाहारी दोनों प्रकार के भोजन मिल जाएँगे। यहाँ का प्रसिद्ध स्थानीय भोजन पुट्टु, कडाला, अप्पम, बड़ा आदि है। मछली और समुद्री भोजन यहाँ आने वाले पर्यटकों को अपनी तरफ आकर्षित करता है।

ईश्वर का नाम जपते-जपते आखिर हम गतव्य तक पहुँच गए। मतलब अपने होटल तक। होटल अब होटल न रहकर पानी से भरा एक जलाशय लग रहा था, जहाँ सब तरफ पानी ही पानी था। होटल के लोगों ने वहाँ से हमें दूसरे होटल में शिफ्ट किया। सच बताऊँ तो अब कुछ भी सुंदर नहीं लग रहा था, जो प्रकृति आँखों को सुकून देने वाली दिख रही थी, अब वही प्रकृति विकराल रूप में नजर आ रही थी। पर रात तो गुजारनी ही थी। पूरे होटल में बस दो परिवार ही थे। पता चला कि भारी बारिश के कारण सभी बुकिंग कैसिंल कर दी गई है। हमें बस सुबह होने और घर लौटने का इंतजार था।

सुबह होते ही हम जल्दी-जल्दी एयरपोर्ट की तरफ भागे, मन में न जाने कितनी अजीब-सी शंकाएँ आ रही थीं कि कहीं फ्लाइट न कैंसिल (रद्द) कर दी जाए। फ्लाइट उस दिन लेट तो हुई किंतु हम सकुशल वापस आ गए।

जिस केरल को ईश्वर का घर माना जाता है, जो अपनी सुंदरता के कारण पर्यटकों की लिस्ट में सबसे ऊपर रहता है, हमें उसका दूसरा रूप ही देखने को मिला। वापस आने के बाद समाचार पत्रों व टी.वी. के माध्यम से पता चला कि केरल में भारी बारिश के कारण बाढ़ आ गई। यह केरल में एक शताब्दी में आई सबसे विकराल बाढ़ थी। राज्य के सभी जिलों को हाई एलर्ट पर रखा गया था इसमें न जाने कितने लोग मारे गए और बहुत अधिक संख्या में लोगों को विस्थापित होना पड़ा। अत्यधिक बाढ़ के कारण 42 में से 35 बाँधों को खोल दिया गया था।

मेरे जीवन में कुछ यात्राओं में यह सबसे भयावह यात्रा थी। मैं ईश्वर की शुक्रगुजार हूँ कि समय रहते हम वहाँ से निकल आए। बाद की सभी उड़ानों को रद्द कर दिया गया था। वापस घर आकर मुझे बस एक ही पंक्ति याद आ रही थी -

'अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।'

10-डी, इन्द्रिरा नगर, रसूलपुर,
गोरखपुर-273016 (उ.प्र.)
मो. - 8687150508

गुलमोहर के फूल

- आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

जन्म - 15 अप्रैल 1960।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी., डीलिट्।
रचनाएँ - आठ पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
सम्मान - अंबिका प्रसाद दिव्य रजत अलंकरण सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

प्रकृति-विजय के साथ आरंभ हुई मनुष्य की जययात्रा शनैः - शनैः प्रकृति के संसर्ग में ही पुष्पित और पल्लवित हुई। आदि मानव की लीलाभूमि प्रकृति रही है। सभ्यता के आरंभिक युग में मनुष्य का प्रकृतिपूजक होना इस तथ्य का स्पष्ट संकेत है कि प्रकृति ही मानवीय चेतना और संवेदना की निर्मायिका रही है। सभ्यता और संस्कृति की गौरवगाथा के कितने ही अनमोल अध्याय प्रकृति की क्रोड़ में ही रचे गए हैं। प्रकृति मनुष्य की सहचरी रही है। वर्षा और शरद ऋतुकाल में प्रकृति सौंदर्य देखकर हमारा तन और मन विभोर हो जाता है। एक दिव्य आभामय परिवेश हमें खिलखिलाता हुआ नज़र आता है। वनाच्छादित पहाड़ी के सान्निध्य में प्रकृति का यह परिसर सौंदर्यावतरण-सा प्रतीत होता है। चंदन, पीपल, सागौन, शीशम, बाँसों के झुरमुट के साथ ही अनगिनत जाति-वंश के पेड़-पौधों से हरे-भरे इस वन प्रांतर में पलाश, अमलतास, गुलमोहर आदि वृक्षों के रंग-बिरंगे फूलों के स्वर्गिक सम्मोहन से कोई अभागा व्यक्ति ही बच सकता है। पाँचवें दशक में विश्वविद्यालय स्थित पुस्तकालय के शिलान्यास के लिए सागर आए तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सागर की झील और यहाँ के रमणीक सौंदर्य का दर्शन कर सागर को भारत का स्विट्जरलैंड कहा था। सात दशक बाद नहीं रह गया वैसा प्रकृति परिवेश। सुमित्रानंदन पंत कह गए हैं-पलपल परिवर्तित प्रकृति वेश।' पेड़-पौधे ही नहीं बचेंगे तो प्रकृति कैसे अपना नया वेश धारण करेगी।

मई-जून की भीषण गर्मी को ठेंगा दिखाते हुए गुलमोहर के लाल, पीले और नारंगी रंग के सुंदर गुच्छेदार, छतरीनुमा गुलमोहर के फूल प्रत्येक प्रकृति प्रेमी जन के लिए आकर्षण के केंद्र हैं। इस प्रतीति के साथ मानो ये गुलमोहर के फूल प्रेमी युगल की प्रेमिल आभा में रंगे हुए हैं। मेरा मन गुलमोहर के फूल की सुकोमल इंगुरी-सी पंखुड़ियों पर इतराने लगता है। निहारता रहूँ उसे। उसके रंगों को भर लूँ अपनी इन पुतलियों में, हृदय के कोर-कोर में बिछा दूँ, पोर-पोर अंगों को सुवासित कर लूँ। सारी लालिमा, स्वभाव में भर लूँ, सारी सुकुमारता, मसृणता। जीवन को खिला दूँ गुलमोहर जैसा। यहाँ मुझे अभिमन्यु अनत की कविता की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हो रही हैं -

छुईमुई से लजीले उन फूलों को
जब तुम आँखें झुकाए तोड़ रही थीं
तो आँखें मेरी टिकी हुई थीं ऊपर को
जहाँ मेरी धमनियों के खून -सी
अकुलाहट लिए
उफ़न आए थे
मेरे खून से भी लाल गुलमोहर के फूल।

विश्वविद्यालय के स्टेडियम वाले रास्ते से आते-जाते हर दिन मेरी आँखों का इन फूलों से दो-चार होना उमंग से सराबोर होना है। दुनियादारी से क्लांत मेरा मन कुछ पल के लिए गुलमोहर के फूलों की सेज पर विश्राम की मुद्रा अख्तियार कर लेता है। न जाने क्यों मुझे गुलमोहर के इन फूलों का सौंदर्य जीवन सौभाग्य सा प्रतीत होता है। मेरे बावले मन में एक हूक-सी उठती है कि इन्हें अपने गले लगा लूँ, इनके रक्तिम अधरों को चूम लूँ। इनका रस, गंध, स्पर्श आदि की अनुभूति समेट लूँ। इन फूलों की मखमली लाल चादर पर कोई प्रेम गीत रचूँ, जीवन की कशमकश से उबरने के लिए एक नया छंद पा जाऊँ। साँसों की कोई नई सरगम पकड़ सकूँ। जिंदगी की धड़कन पर नया विहान देखूँ। सवार लूँ आत्म की धरती। हौले से, प्रेमिका के कपोलों को संस्पर्श कराऊँ। हलराऊँ-दुलराऊँ। जी चाहता है कि गुलमोहर के फूलों का मुकुट बनाकर रमझिरिया पहाड़ी पर स्थित मंदिर में विराजे गोवर्धनधारी कन्हैया के शीश पर धारण कराऊँ। कदाचित् इसीलिए गुलमोहर को 'कृष्णचूड़' कहा गया

है। अधखिली हरी कलियों को कुंडल बनाकर कान्हा के कानों में पहना दूँ। उन्हें निहारता रहूँ निर्निमेष, एक भक्त व प्रेमी की सजल आँखों से। चित्त की निर्मल भूमि पर रच दूँ प्रेम की कविता। अपनी सुंदर भावनाओं को चुन-चुनकर कृष्णार्पित कर दूँ। संवाद करूँ मैं, कुछ अपनी कहूँ, कुछ उसकी सुनूँ। गुणगान करूँ, राधा के प्रेमिल मन को पढ़ सकूँ। ये गुलमोहर के फूल किसी वधू की चुनरी सदृश्य प्रतीत होते हैं। मैं यह मान लूँ कि राधा की ओढ़नियाँ और कृष्ण का पीतांबर सर्वत्र फैला हुआ है। सारा परिवेश कृष्णराधामय हो गया है। चाहता हूँ कि कभी मैली न हो यह रक्ताभ चादर, कभी बासी न हो इसका शृंगार। दूधिया चाँदनी में स्नात गुलमोहर के फूल की खूबसूरती पर निहाल हो जाऊँ। इसकी लालिमा कभी मलिन न पड़े। कबीर ने अपने प्रियतम को कुछ यूँ ही देखा था-

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।।

मुझे तो कबीर की आँखों से गुलमोहर के फूलों से सज्जित श्रीकृष्ण को देखने की बलवती इच्छा है। रसखान का मन लेकर कहूँ-**या छवि पै रसखान अब वारौं कोटि मनोज**
जाकी उपमा कविन नहिं पाई रहे कहुँ खोज।।

पर वह सामर्थ्य मुझमें कहाँ? मन की आँखों से देखना ही असल देखना है। मन की आँखें कहाँ खुल पाती हैं? हम चर्मचक्षुओं से ही जगत् के सौंदर्य-वैभव को देखकर निहाल हो उठते हैं। मन की आँखें तो मींचकर हम बैठे हुए हैं।

गुलमोहर के ये लहलहाते लाल, नारंगी, पीले फूल हमारे अंतस् में नई ऊर्जा, नई उमंग, नया उल्लास भर देते हैं। छतनार से फैले गुलमोहर के फूलों को देखकर प्रतीत होता है मानो छींटदार लाल चंदोवा ओढ़ लिया है। इन्हें देखकर हमारी आँखों में शीतलता पैठ जाती है।

गुलमोहर विश्व के सुंदरतम पुष्पों में एक है। यह सुगंधित पुष्प कहा गया है। उस सुगंध की अनुभूति हमें सहजता से नहीं हो पाती है। पूरे वातावरण में गुलमोहर की आभा फैली हुई नज़र आती है। इसकी गंध पवित्रता की द्योतक है। यह देवी-देवताओं को पूजा में अर्पित किया जाता है।

ईसाई धर्म में एक कथा प्रचलित है कि सेंट थॉमस ईसाइयों की मान्यता है कि जब ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाया गया तब उनकी क्लास के निकट गुलमोहर का एक छोटा सा वृक्ष था। ईसा के खून के छींटों से वह वृक्ष रंग उठा और गुलमोहर के फूलों का रंग सुर्ख हो गया।

पूरी दुनिया मनुष्य की नकारात्मक शक्तियों से घिरी हुई है। मनुष्य सकारात्मक ऊर्जा की खोज में भटक रहा है। उसकी हालत उस मृग की भाँति है जो कस्तूरी की खोज में दर-दर भटकता रहता है जबकि कस्तूरी उसकी नाभि में ही विद्यमान है। मनुष्य जीवन की नाभि प्रकृति है जो हमें सकारात्मक ऊर्जा से लैस करती है। हमें सिखाती है, पढ़ाती है हमारी सामर्थ्य को बढ़ाती है। हमारे सुख-दु:ख की साथी है वह। वह हमें बहुत कुछ देती है। पत्र, पुष्प, फल, छाया, मूल, वल्कल, इमारती और जलाऊ लकड़ी, सुगंध, राख, गुठली और अंकुर प्रदान करके हमारी मनोकामनाएँ पूरी करती है।

पुत्रपुष्प फलच्छाया मूल वल्कल दारुभि: ।
गन्धनिर्यास भस्मास्थितोस्मै: कामान वितन्वते।।

गुलमोहर हमारे जीवन में सकारात्मक ऊर्जा भर देता है। संघर्षों में जीने का आह्वान करते हुए गुलमोहर के फूल न जाने कितने लोगों के मुरझाए मन को खिलने की उम्मीद से भर देते हैं। मेरा भी मुरझाया मन इन्हें देखकर लहक उठता है। मैं गाड़ी रोक देता हूँ। कुछ पल तक इन पुष्पों के सौंदर्य को अपनी आँखों में आँजने की कोशिश करता हूँ। अपनी चेतना की गहराई से उन्हें देखता हूँ और इनका गुलाबीपन अपनी आँखों में ही नहीं, बल्कि आत्मा में उतार लेता हूँ। आत्मा को रंग लेता हूँ। ठीक वैसे ही जैसे मन को रंगाने वाला सच्चा जोगी। मन न रंगायो रंगारे जोगी कपड़ा में मेरा तनिक भी विश्वास नहीं है। गुलमोहर के फूलों को देखकर मेरे अंतस् में उल्लास की आभा उतर आती है। उस लालिमा में कितने ही सुंदर और उदात्त भाव हिलोरे लेने लगते हैं। मेरे अंतर्मन में उजास के शंख पुष्प खिलते हैं। बाहर के संसार की नकारात्मक ऊर्जा मेरे जेहन में आकर निस्तेज हो जाती है। गुलमोहर हमारे लिए संघर्ष का नया पाठ है जैसे अशोक और पलाश के फूल।

इसे देवपुष्प कहते हैं। देवताओं के लायक हैं गुलमोहर के पुष्प। इसे श्री कृष्ण के मुकुट में सजाया जाता है इसलिए इसे 'कृष्णचूड़' कहते हैं। मैंने देखा है कि जन्माष्टमी पर्व पर मंदिर का पुजारी हर रोज गुलमोहर के फूलों का मुकुट बनाकर मंदिर में विराजे कन्हैया के शीश पर धारण कराता था।

संस्कृत में गुलमोहर को 'राज आभरण' कहा गया है अर्थात् राजसी आभूषणों से सुसज्जित। जिससे अलंकृत होकर राजा-महाराजा अपनी शोभा द्विगुणित कर लेते थे। इस बहुभाषी देश में गुलमोहर को अलग-अलग नामों से जाना गया है। जैसे केरल में इसे कालवरिप्पू कहते हैं। अर्थात् कालवर का पुष्प। इस पुष्प की महिमा अपार है। इसे 'स्वर्ग का फूल' यानी फ्लावर्स ऑफ़ हैवेन 'भी कहा गया है। यह असाधारण पुष्प है, मानो स्वर्ग का पुष्प है जो धरती पर अपनी आभा के साथ जगमगा रहा है। 'फ्लावर्स ऑफ़ हैवेन' फ्रांसीसियों का दिया हुआ नाम है। सचमुच ये अपने असाधारण रूप-सौंदर्य के कारण 'स्वर्ग का फूल' जैसा आभास देते हैं। इसे डेलोनिक्स भी कहते हैं। यह फैवेसी कुल का वृक्ष है जिसकी जन्मभूमि मेडागास्कर है। यह सेंट क्रिटीस व नेवीस का राष्ट्रीय पुष्प कहलाता है। इसे रायलपोइशियाना भी कहते हैं। भारत में गुलमोहर का इतिहास दो शताब्दी पूर्व का बताया गया है। भारत में यह विशेष कर शहरी इलाकों में दिखाई देता है।

गुलमोहर मकरंद का अजस्र स्रोत है। इसमें पराग का भंडार है। यह मधुमक्खियों के आकर्षण का मुख्य स्रोत है। सुखोद्भावन होता है फूलों से आच्छादित गुलमोहर के अपरूप सौंदर्य को निहारकर। एक समय गुलमोहर की लगभग पत्रविहीनता की स्थित रहती है। फूलों के बनिस्बत पत्ते कम बचते हैं इसकी साख पर। उसकी पूरी साख उसके फूलों के अद्भुत सौंदर्य साम्राज्य पर टिकी हुई है। अचानक हमें कबीर याद आते हैं- जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।

सारी वनखंडी में अकेला गुलमोहर ही हमारी चेतना को उल्लासित करता है। हमारे हृदय में अनुराग भरता है। ज्योतित कर देता है हमारे भीतर और बाहर के जगत् को। यह वसंत का महाभिषेक है। प्रकृति के विशालतम प्रांगण में रंगोत्सव है। रास रचती है प्रकृति अपने परम वैभव का और श्रृंगार करती है स्वयं का भी। मनुष्य को सौंदर्य का बोध कराती है। मनुष्य जीवन को अपने रंगों से रंग देती है। सृजन का नव सुर, नव राग और नव लय विरचती है। बाँचती है अपने होने के अहसास को, अपने परम सत्य और सत्ता को। हमें हर पल जागृति का संदेश देती है। गुलमोहर के फूलों के लुभावने सौंदर्य से अभिसिक्त मेरा मन बारंबार मचल उठता है कि इन फूलों से चित्रकारी करूँ अपने घर की दरोदीवार पर या अपने मन के केनवास पर। उसके रंगों से अपनी चेतना के धूमिल होते रंगों को चटक कर सँवार लूँ। मेरे भीतर एक गुलमोहर उग आता है जिसमें सुंदर भावनाओं के फूल खिल उठते हैं। उन्हीं से हम जग-मन को जीतने की कल्पना कर बैठते हैं।

गुलमोहर की जड़ें उसके इतिहास में देखी जा सकती हैं। 16वीं शताब्दी में पुर्तगालियों ने गुलमोहर के वृक्षों को मेडागास्कर में देखा था। आज विश्व के युगांडा, नाइजीरिया, श्रीलंका, मेक्सिको, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका के फ्लोरिडा, ब्राजील आदि देशों में गुलमोहर अलग-अलग नाम से बहुत लोकप्रिय वृक्ष है। भारत में भी यह आभिजात्य वर्ग का प्रिय वृक्ष है। शहरी कालोनियों, आफिसर्स के बंगले और कार्यालयों में इसकी लोकप्रियता का परचम लहराता है। दुर्भाग्य है कि आज मेडागास्कर में इसका अस्तित्व संकट में है। इस पुष्प के अलौकिक सौंदर्य के आकर्षण में मियामी के लोगों के द्वारा इसके खिलने पर अपना वार्षिकोत्सव मनाया जाता है।

भारतीय समाज एवं संस्कृति में इस पुष्प ने अपने सौंदर्य व लालित्य स्वरूप से महत्त्वपूर्ण जगह बना ली है। मजाल है कि इस पुष्प के रूप-सौंदर्य के सम्मुख कोई पुष्प टिक पाए। बाकी सारे पुष्प इसके रूप-सौंदर्य के सम्मुख फीके नज़र आते हैं। यह विदेशी वृक्ष है न कि भारतीय वृक्ष। किंतु अमलतास, पलाश आदि के सत्संग से इसके स्वभाव में भारतीय वृक्षों की आभा प्रकट होने लगी है। यही हमारी संस्कृति है।

गुलमोहर को सजावटी फूल का वृक्ष माना गया है। इसीलिए कहीं-कहीं लोग विभिन्न उत्सवों पर सजावट के रूप में इसका उपयोग करते हैं। अपनी शुभधर्मी प्रकृति के नाते गुलमोहर के फूल देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना में अर्पित किए जाते हैं। श्री विष्णु की पूजा में यह विशेष काम आता है। यह शगुनी वृक्ष कहलाने का अधिकारी है। वैसे तो सभी पुष्पधारी वृक्ष और पौधे मानव के लिए शगुनकारी हैं। यह प्रकृति ही संपूर्ण प्राणिजगत् के लिए मंगलमयता की विधात्री है।

प्रकृति ने गुलमोहर की रगों में औषधीय गुणों का समावेश किया है। इस बात पर शहरी समाज विश्वास नहीं करेगा, पर लोक उसके गुणों से भरपूर परिचित है। यह दैवीय विधान है कि प्रकृति मनुष्य की सहचरी है। आदिवासियों के लिए सहज विश्वास की बात है। इसकी छाल और बीज के औषधीय उपयोग से आदिवासी समाज भलीभाँति परिचित है। सिर दर्द और हाजमा दुरुस्त करने के लिए इसका इस्तेमाल किया जाता है। यह मलेरिया की दवा है। इसके फूलों का रंग पानी में

घोलकर होली खेलने की भी परंपरा है। मुझे याद है मेरे गाँव के पड़ोसी गाँव पूरनपुर में एक वैद्यराज चौबे जी रहते थे। मेरे बाबा जी उस पड़ोसी गाँव में अपने इलाज के सिलसिले में गाहे-बगाहे जाया करते थे। उनके हाथों में गुलमोहर के पेड़ की छाल और फूल अवश्य रहता था। शायद वे पेट संबंधी किसी बीमारी के इलाज के लिए जाया करते थे। मुझे अच्छी तरह याद है। यह बात अलग है कि मेरे बड़े बाबा ने मधुमेह की बीमारी की चपेट में आकर मौत को गले लगा लिया था। अब तो गाँव वाले घर के दरवाजे पर उस पेड़ का नामोनिशान नहीं रह गया है।

भीषण ग्रीष्म में अपने सुर्ख लाल रंग के कारण अंगारों की तरह दिखाई देने वाले गुलमोहर को 'फ्लेम ट्री' यानी 'आग का वृक्ष' कहा गया है। अपने रंग-रूप के कारण ये भले आग जैसे दिखते हों, किंतु मेरा मन भ्रमित होने को तैयार नहीं है। वास्तव में ग्रीष्म का असह्य भीषण ताप झेलकर गुलमोहर का उल्लसित मन से लहलहाना हमें सुखद आश्चर्य में डाल देता है। जब सारे पुष्प खिलने से इंकार कर देते हैं तब अकेला गुलमोहर का फूल प्रकृति के हरकारे की भाँति उल्लास का परचम फहराता हुआ हमें सम्मोहित करता है।

उसका यह गहन आत्मबल और उसकी जिजीविषा हमें पल - प्रतिपल रोमांचित करती है। आत्मावलोकन के लिए प्रबोधित करती है कि हे मनुष्यों! तुम अपने आत्मबल को कमजोर नहीं होने देना। तमाम विपरीत स्थितियों में भी जीवन की आँच बुझने नहीं देना। मनोहारी सौंदर्य हाथ बाँधे हरवक्त महाग्रीष्म के चुनौती भरे कठिनतम दिनों में भी यह पुष्प अपना मनोबल बचाए रखने में समर्थ है। प्यार और तड़प को आत्मसात कर लेना गुलमोहर का नैसर्गिक गुण है। किंतु इसकी प्रकृति में दाहकता नहीं है, वरन् शीतलता और शान्तिप्रियता है। स्वभावगत सरलता की वजह से इसका तना और शाखाएँ अन्य वृक्षों की भाँति मजबूत नहीं होती हैं। नाजुकी वृक्ष की पूरी देह में है। गुलमोहर का फूल प्रकृति का नायाब उपहार है। यह संघर्षशीलता का प्रतीक है। भीषण गर्मी में सूर्य का आतप झेलते हुए भी उल्लासमय बना रहना उसके धैर्यवान एवं खुशनुमा स्वभाव का प्रमाण है। गुलमोहर के फूल सौंदर्य और सहनशीलता का अद्भुत प्रतिमान हैं। वस्तुतः गुलमोहर का फूल विषम परिस्थितियों में जिजीविषा के महान् संकल्प पत्र पर शुभ हस्ताक्षर है।

आचार्य, हिंदी विभाग,
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर-470003 (म.प्र.)
मो. -9425656284

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

पहली पंक्ति के नेता

- भूपेन्द्र भारतीय

जन्म - 1 अक्टूबर 1988।

जन्मस्थान - देवास (म.प्र.)।

शिक्षा - बी.ए., एल.एल.बी., पीएच.डी.।

रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।

वे बचपन से पहली पंक्ति के नेता रहे हैं। अपने पिता जी के पिताजी के समय से पहली पंक्ति वाली राजनीति में रहे। बचपन में अपने दादाजी के साथ पहली पंक्ति में बैठते थे। पाँच दशक से उन्हें कोई पहली पंक्ति से उठा नहीं पाया। हर राजनीतिक आयोजन में उनके लिए पहली पंक्ति में सीट आरक्षित रही है। मजाल कि वे अपने क्षेत्र व पंक्ति से टस से मस हुए हों! न उन्हें कोई पहली पंक्ति से दूसरी पंक्ति में धकेल सका। आखिर नेतागिरी उनके बापदादा की जागीर जो ठहरीं। वे जन्मजात नेता जो ठहरे।

लेकिन इस सोशल मीडिया रूपी घोर कलयुग ने उनसे उनकी यह विरासत छीन ली। क्या जमाना आ गया! युवाओं को अवसर देने के नाम पर उनके साथ राजनीति का सबसे बड़ा छल किया गया। उन्हें राजनीति में अग्रणी से सीधे बैकबेंचर बना दिया। पहली पंक्ति से सीधे राजनीति के कोपभवन में। लोकतंत्र नाम के खंभे ने उनकी नींव हिला दी। प्रजातंत्र ने उनसे उनकी जागीरी छीन ली। कहाँ तो हाईकमान ने अच्छे दिनों का वादा किया था और ऊपर से ये दिन देखने पड़ेंगे। उनकी राजनीति चाँद से सीधे उनकी गली में आ गई। अब गली का बुजुर्ग मतदाता भी उन्हें नहीं पूछ रहा है। युवा मतदाता उनकी राजनीति से परिचित ही नहीं है। वह तो उन्हें नेता ही नहीं मानते। भला बड़ी कार व चेले-चपाटों के बगैर कोई नेता हो सकता है? अब पहली पंक्ति के नेता की परिभाषा बदल चुकी है।

क्या दौर था जब वे पहली पंक्ति के नेता थे। उनके एक इशारे पर पूरा क्षेत्र एकतरफा मतदान करता था। उनका दल उनके लिए हर समय रैड कार्पेट बिछाकर रखता था और अब देखो तो उन्हें टाटपट्टी तक नसीब नहीं हो रही है। उम्र के अंतिम पड़ाव पर बैकबेंचर बना दिया। वे जब पहली पंक्ति के नेता थे तो क्षेत्र में उनकी तूती बोलती थी। मजाल की हाईकमान उनसे बगैर पूछे कोई निर्णय ले सके। बड़े-बड़े नेताओं की टिकट उनकी जेब में पड़ी रहती थी। और अब ये स्थिति है कि उनका ही टिकट कट गया है। पहली पंक्ति में आने के लिए राजधानी के चक्कर लगा रहे हैं। कहाँ तो अपने समय में वे स्वयं टिकट बाँटते थे और अब उनकी टिकट के लाले पड़े हैं।

क्या समय आ गया है, अब उन्हें कोई नहीं पूछ रहा है। वर्तमान में पहली पंक्ति के नेता तो छोड़ो, उन्हें तो उनके ही समय के वरिष्ठ नेता तक नहीं पूछ रहे हैं। वह भी क्या दौर था, जब वे पहली पंक्ति के नेता थे। सुबह से उनके घर पर ही कार्यकर्ताओं का ताँता लग जाता था। उनके परिवार के सदस्य उनका बहुत सम्मान करते थे। पहली पंक्ति के नेता होने के कारण परिवार के लोगों का भी उनके क्षेत्र में बहुत सम्मान था। छोटे-मोटे काम स्वत: ही हो जाते थे। लेकिन अब परिवार के सदस्यों को भी कोई नहीं पूछ रहा है। पड़ोसी तक उन्हें नहीं पूछते। राजनीतिक चर्चाएँ अब उनके परिवार में नहीं होती हैं। परिवार में कोई राजनीति की बात भी करता है तो सब उसे पागल समझकर आगे बढ़ जाते हैं।

अपने समय में वे अपने दल के पहली पंक्ति के नेता के साथ ही अग्रणी वक्ता भी थे। वे अग्रणी वक्ता आज भी है, लेकिन अब उन्हें उनका ही दल याद नहीं करता। नए कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण तक में उन्हें आमंत्रित नहीं किया जाता है। सोशल मीडिया की राजनीति के समय में उनके हाथ में न मंच है ओर न ही माईक। पहली पंक्ति के नेता इस स्थिति में अब अपनी राजनीति चमकाने के लिए विपक्ष की भूमिका में आ गए हैं। उन्हें लगता है कि शायद विपक्ष की भूमिका में आकर वे फिर से पहली पंक्ति के नेता का गौरव प्राप्त कर सकते हैं!

205, प्रगति नगर, सोनकच्छ,
देवास -455118 (म.प्र.)
मो. 9926476410

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचनः

– रामवल्लभ आचार्य

रचनाएँ – आठ पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान – म.प्र. साहित्य अकादमी सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित।

विशेष – म.प्र. लेखक संघ के अध्यक्ष।

किसी कवि ने कहा है –

'सूर-सूर तुलसी ससी, उड़गन के सबदास।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करन प्रकास।'

तो मुझे लगता है कि मैं भी उन्हीं जुगनुओं में से एक हूँ जो थोड़ा-बहुत अपने भावों, अनुभूतियों और जिज्ञासाओं के सहारे अपनी कल्पनाओं को अभिव्यक्त कर पा रहा हूँ। लगभग पचपन वर्षों से लेखन में प्रवृत्त हूँ किंतु मुझे नहीं लगता कि मेरा साहित्यिक योगदान उस गिलहरी से अधिक है जिसने रामसेतु निर्माण में धूल में लोटकर शरीर पर चिपकी धूलि को सागर की लहरों तक ले जाने का प्रयास किया था। और मर्यादा पुरुषोत्तम त्रैलोक्यपति भगवान श्री राम का स्नेह प्राप्त किया था जिसके बारे में कहा जाता है कि प्रभु द्वारा उसकी पीठ पर स्नेह से फेरी गई तीन अँगुलियों कि चिह्न स्वरूप तीन रेखाएँ आज भी उसकी पीठ पर सुशोभित होती हैं। मुझे लगता है जो थोड़े बहुत पुरस्कार सम्मान मुझे प्राप्त हुए हैं वे उसी स्नेह का परिणाम हैं जो साहित्य जगत ने मेरी पीठ थपथपाते हुए प्रकट किया है।

जिस साहित्य सागर में वाल्मीकि से लेकर कालिदास, भवभूति प्रभृति संस्कृत कवियों और भारतेन्दु से लेकर दिनकर, निराला, पंत, महादेवी, प्रेमचंद, आदि विभूतियों ने मूल्यवान रत्नों का योगदान किया हो उसमें कुछ शंख सीपियों को अपनी पूँजी मानने वाले एक अंकिचन का क्या महत्व है?

अत: जब 'अक्षरा' जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिका द्वारा मुझसे आत्मकथ्य भेजने का अनुरोध किया गया तो स्वाभाविक रूप से मुझे आश्चर्य हुआ। अस्तु, मैं इस अनुरोध को आदेश मानकर इसलिए लिखने में प्रवृत्त हुआ ताकि पाठकों को यह ज्ञात हो कि एक लेखक के निर्माण में किन-किन कारकों की भूमिका होती है।

मेरा जन्म चार मार्च उन्नीस सौ तिरेपन तदनुसार चैत्र कृष्ण चतुर्थी संवत् 2009 को भोपाल में हुआ। यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि मेरे पूज्य पिता जी पं. बृजवल्लभ आचार्य सन् 1947 में भोपाल आ गए थे। मूलत: विदिशा जिले में स्थित तत्कालीन हैदरगढ़ रियासन के नवाब के उस्ताद (गुरु) रहे मेरे दादा जी पं. दुलीचंद्र जी संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वहाँ नाकेदार के रूप में पदस्थ थे। भोपाल में रहने वाली पिता जी की मौसी ने यहाँ निर्मित हो रहे श्री राधावल्लभ लाल जी के मंदिर में पुजारी की जरूरत बताते हुए भोपाल बुला लिया। उन्हें मंदिर के निर्माता सेठ जी द्वारा मंदिर का मुखिया नियुक्त किया गया। मंदिर में ही आवास उपलब्ध कराया गया और वेतन मात्र सात रुपया निर्धारित किया गया। मैं भी उनका मँझला पुत्र हूँ। मंदिर के भजन कीर्तन के वातावरण में मैंने होश सँभाला। पिता जी बाद में मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग में शिक्षक नियुक्त हुए। वे मुझे अपने साथ उनकी शाला में ले जाते थे और अन्य कक्षा में बिठा देते थे। बाद में मुझे शासकीय फूल महल माध्यमिक शाला में भर्ती करा दिया गया। जब मैं मात्र छ: वर्ष का था मेरे बड़े भाई के साथ मेरा भी यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न करा दिया गया और मुझे अपने साथ श्रीजी की सेवा में ले जाने लगे। धीरे-धीरे मैं पूजन आदि सीख गया। थोड़ा बड़ा हुआ तो वे प्रारंभिक शृंगार आदि कराकर शेष पूजा मुझे सौंप देते थे। इसी दौरान मैं शाला में बालसभा में भाग लेने लगा। बाद में रेडियो पर बालसभा सुनता था तो आकाशवाणी जाकर उसमें भी भाग लेने लगा। कुछ मित्रों के साथ शाखा में भी जाने लगा। यहाँ शारीरिक व्यायाम व खेल कूद के साथ ही देशभक्ति गीतों का गायन भी होता था। इस तरह मैं छंद और लय को आत्मसात करता रहा। आकाशवाणी से प्रसारित होने वाले लोकगीतों और फिल्मी गीतों (जिन्हें कभी-कभी ही सुन पाता था) वे भी मुझे कविता करने को प्रेरित किया। उस समय मैं जिन्हें कविता समझता था

वे तुकबन्दियाँ ही होती थीं। प्रारंभिक काल की एक कविता जो मुझे याद है उसकी पंक्तियाँ हैं–

सुनो ऐ भारत के कर्णधार। / करो अब हिंदी की जयकार।।

माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मेरा प्रवेश शासकीय जहाँगीरिया उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में कराया गया। मैंने गणित एवं विज्ञान विषय लिए थे। तब शासन द्वारा परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन कर इंटर मीडिएट सिस्टम लागू किया गया लेकिन मुझे हाई स्कूल, हायर सेकेंडी एवं इंटर मीडिएट तीनों परीक्षाएँ बोर्ड द्वारा देनी पड़ीं। विद्यालय में हमारे हिंदी शिक्षक श्री श्रीधर दीक्षित ने हमें कहानी कविता लिखने हेतु प्रेरित किया। मैंने पहली कहानी दहेज प्रथा पर लिखी थी। यहाँ भी मैं विभिन्न शैक्षणिकेत्तर गतिविधियों में भाग लेने लगा। महापुरुषों कवियों की जयंतियों के साथ ही निबंध, वाद–विवाद, तात्कालिक भाषण, काव्यपाठ एवं विज्ञान विषयों की प्रतियोगिताओं में पुरस्कार प्राप्त कर उत्साह बढ़ता गया। हाई स्कूल में मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ और मुझे विज्ञान समिति का सचिव बनाया गया। यहाँ मैंने अंतर विद्यालयीन प्रतियोगिता हेतु 'विज्ञान पत्रिका' का संपादन भी किया। मेरी बहुमुखी प्रतिभा को देखते हुए प्राचार्य श्री आर. पी. मिश्रा द्वारा मुझे सर्वश्रेष्ठ छात्र घोषित कर अपनी ओर से पुरस्कार स्वरूप 5/–रु. की राशि प्रदान की।

तृतीय वर्ष में हास्पिटल ड्यूटटी भी करना थी अत: पत्रकारिता को विराम दिया तथापि चूँकि महाकौशल छोड़ते समय संपादक श्री गुरुदेव कश्यप ने मुझे महाकौशल का मध्यभारत क्षेत्र प्रतिनिधि नियुक्त किया था तो यदा–कदा विशेष समाचार भेज देता था। अंतिम वर्ष में वार्षिकोत्सव के लिए एक हास्य नाटिका लिखी और उसमें अभिनय भी किया। यहाँ की स्मारिका दीपशिखा में भी मेरी कविता प्रकाशित हुई अंतत: 1977 की अंतिम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण कर भोपाल लौट आया। यहाँ यूनानी शफाखाने के आयुर्वेद विभाग में तथा जे.पी. अस्पताल, तुलसी नगर में इंटर्नशिप करने के पश्चात् मुझे बी. ए. एम.एस. (बैचलर ऑफ आयुर्वेद विथ मार्डन मेडिसिन एंड सर्जरी।) की उपाधि प्राप्त हुई।

यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी समझता हूँ कि तृतीय वर्ष में अध्ययन करने के दौरान ही मेरा विवाह कर दिया गया था और दिसंबर 1977 में मुझे पुत्ररत्न की प्राप्ति हो गई थी। चूँकि हम सात बहन भाई थे और अब तक बड़े भाई और एक बहन का विवाह हो चुका था किंतु चार बहन भाई अध्ययनरत थे। और सबका बोझ पिता जी पर था। बच्चों के विवाह से पूर्व भी वे अपने दो भाइयों और एक साले की शादी कर चुके थे। अत: आगे अध्ययन का विचार छोड़ मुझे धनार्जन की चिंता थी। तब मैंने अरेरा कॉलोनी में पिता जी द्वारा लोन लेकर बनाए मकान में आयुर्वेद औषधालय प्रारंभ किया किंतु छ: महीने तक विशेष लाभ नहीं होने से उसे बंद कर दिया। फिर चौकी चौक के पास स्थित बालरोग विशेषज्ञ के सहायक के रूप में काम करने लगा। इस बीच म.प्र. लोक सेवा आयोग की लिखित परीक्षा में तो उत्तीर्ण हो गया किंतु साक्षात्कार में चयन नहीं होने से फरवरी 1980 में चर्च रोड जहाँगीराबाद में निजी औषधालय प्रारंभ किया। उस समय मैं बहुत दुबला–पतला था और कम उम्र का दिखाई देता था। अत: नए–नए लोग अक्सर मुझसे पूछते थे 'डॉ. साहब कहाँ हैं।' जब मैं कहता था कि मैं ही हूँ तो वे दिखा देते थे। उस समय मैं मात्र दो–तीन रुपए प्रतिदिन की दवाई देता था तो फिर उनका प्रश्न होता था 'ठीक तो हो जाएँगे?' मैं कहता था 'अवश्य'। धीरे–धीरे लोगों का विश्वास जमता गया और मेरी गिनती क्षेत्र के चुनिंदा दो–तीन डॉक्टरों में होने लगी।

अब तक सुप्त पड़ा लिखने–पढ़ने का कीड़ा फिर कुलबुलाने लगा। यदा–कदा कुछ गीत लिखे जिनमें अधिकांश राष्ट्रभक्ति परक थे। कुछ शृंगारपरक और समसामयिक स्थितियों पर भी थे। कुछ व्यंग्य भी लिखे जो अनेक स्थानीय पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इसी दौरान मुझे समन्वित चिकित्सकों के अखिल भारतीय संगठन–'नेशनल इन्टीग्रेटेड मेडिकल एसोसिएशन की भोपाल–सीहोर–रायसेन शाखा का तब एक बार विद्यालय में राष्ट्रीय विचारधारा के महान कवि श्रीकृष्ण 'सरल' भी पधारे थे और उन्होंने सभी छात्रों की उपस्थिति में उनके महाकाव्य 'शहीद भगत सिंह' तथा 'चन्द्रशेखर आजाद के अंश सुनाए थे। मुझे पुरस्कार स्वरूप उनकी ये पुस्तकें प्राप्त हुई थीं और इनमें से अनेक कविताए मैंने याद कर ली थीं। वर्ष 1969 में इन्टरमीजिएट करने के पश्चात् मैंने शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय में बी. एस.सी. द्वितीय वर्ष में प्रवेश लिया। वह वर्ष महात्मा गाँधी की जन्मशताब्दी का वर्ष था और वर्ष भर साहित्यिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का सिलसिला चला। यहाँ स्वरचित काव्य पाठ प्रतियोगिता में मुझे द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। हिंदी के प्राध्यापक श्री कृष्ण नारायण वशिष्ठ 'कमलेश' ने प्रोत्साहित किया और कॉलेज की स्मारिका में भी मेरी कविता कहानी को प्रकाशित किया। मैंने अपनी रचनाएँ आकाशवाणी के युववाणी कार्यक्रम हेतु भेजीं तो मुझे रचना पाठ, वार्ता एवं परिसंवाद में भाग लेने बुलाया जाता रहा। उस दौरान मेरे कुछ साथियों ने मिलकर 'युवा प्रतिभा मंच' नामक संस्था बनाई जिसका मुझे

अध्यक्ष चुना गया। इस संस्था के सदस्यों ने आकाशवाणी पर सांगीतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुतियाँ दीं और मेरा लिखा एक गीत भी संगीतबद्ध कर प्रसारित हुआ। इसी दौरान मानव ने चंद्र पर विजय प्राप्त की। उस प्रसंग पर मैंने एक मोनोप्ले लिखा और प्रस्तुत किया। अध्ययन के साथ-साथ इन गतिविधियों में सक्रियता बढ़ रही थी। इसी दौरान मेरी कहानी राष्ट्रीय पत्रिका 'मुक्ता' में प्रकाशित हुई। मैंने महाविद्यालय की गतिविधियों की रिपोर्ट भेजी तो मुझे सरिता-मुक्ता का विश्वविद्यालय प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। यह वह समय था जब लिखने-पढ़ने की ललक जाग्रत हो चुकी थी। गर्मियों की छुट्टियों में पिता जी सेन्ट्रल लायब्रेरी से अनेक पुस्तकें इशू कराकर लाते थे। इनमें ही मैंने प्रेमचंद की गोदान, भगवती चरण वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा, निराला जैसे महान साहित्यकारों के नाटक, उपन्यास एवं कविताओं की पुस्तकें पढ़ीं। संयोग से मैंने साप्ताहिक राष्ट्र का आह्वान और पाक्षिक 'गोरा बादल' के संपादकीय विभागों में भी काम किया।

जब मेरा एडमीशन शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय रायपुर में हुआ तो प्रथम वर्ष में अन्य विषयों के साथ संस्कृत भी पाठ्यक्रम में थी जिसके अंतर्गत मैंने लघुसिद्धांत कौमुदी और दर्शन शास्त्र विषयक 'कणाद गौतमीयम्' एवं सांख्यकारिका के साथ रघुवंशम् के प्रथम द्वितीय सर्ग का भी अध्ययन किया। यहीं मैंने रघुवंशम् के प्रथम सर्ग का काव्यानुवाद भी किया। महाविद्यालय के पुस्तकालय से लेकर मैंने साकेत और कामायनी जैसे महाकाव्य भी पढ़े। रायपुर में कुछ समय मैंने दैनिक 'महाकौशल' के संपादकीय विभाग में पार्टटाइम कार्य किया। बाद में द्वितीय वर्ष में मैं स्थानांतरण करवा कर शासकीय अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय इंदौर आ गया। यहाँ भी कुछ समय मैंने 'जागरण' में कार्य किया। इन पत्रों में कार्य करते हुए राष्ट्रीय प्रादेशिक तथा स्थानीय पृष्ठों पर कार्य करने का अनुभव प्राप्त हुआ।

सचिव चुना गया। अध्यक्ष डॉ. पी. के जैन चुने गए जो लायन्स क्लब में भी सक्रिय थे। उन्होंने एसोसिएशन को सामाजिक गतिविधियों से जोड़ना शुरू किया। हमने भोपाल की पिछड़ी बस्तियों और मंडीदीप में अनेक नि:शुल्क स्वास्थ्य एवं टीकाकरण शिविरों के आयोजन किए। मेरी सक्रियता से संगठन चर्चा में आया और अगले कार्यकाल में मुझे प्रादेशिक महासचिव का दायित्व सौंपा गया। मैंने इस दायित्व को भी निष्ठापूर्वक निभाया और इस कार्यकाल में प्रदेश की विभिन्न शाखाओं में यूनीसेफ और फेमिली प्लानिंग एसोसिएशन के सहयोग से अनेक कार्यशालाएँ तथा टीकाकरण अभियान चलाया गया। बाद में मुझे प्रादेशिक कोषाध्यम, राष्ट्रीय सहसचिव एवं अनेक उपसमितियों के अध्यक्ष व संयोजक के दायित्व सौंपे गए जिन्हें मैंने सक्षमना से निर्वहन किया। मेरी निष्ठा एवं समर्पण और सक्रिय भूमिका के कारण एसोसिएशन द्वारा बाद में मुझे 'डॉ. व्ही.पी. शर्मा' मेमोरियल गोल्ड मेडल अवार्ड तथा 'लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड भी प्राप्त हुए। इन तमाम गतिविधियों के समाचार प्रकाशित होने से परोक्ष रूप से मेरी ख्याति हुई। इस कारण उस समय के सर्वाधिक प्रसारित होने वाले पत्र नवभारत के रविवारीय परिशिष्ट में मुझे स्वास्थ्य प्रसारित होने वाले पत्र नवभारत के रविवारीय परिशिष्ट में मुझे स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी लिखने को कहा गया। उन दिनों प्रति सप्ताह पाठकों के शताधिक पत्र आते थे। अन्य पत्रों ने मुझसे विभिन्न स्वास्थ्य विषयक लेख माँगे और उन्हें प्रकाशित किया। यहाँ यह उल्लेख करना चाहूँगा कि मैं स्वास्थ्य संबंधी कार्यों में अपना संक्षिप्त नाम डॉ. आर. व्ही. आचार्य प्रयुक्त करता था और साहित्यिक लेखन में पूरा नाम डॉ. राम वल्लभ आचार्य लिखता था।

एक बार एक मित्र ने परामर्श दिश कि आप अपने गीत संगीत बद्ध प्रसारण हेतु आकाशवाणी भेजिए। मैंने अपने पचास गीत भेजे। परिणाम स्वरूप मेरे गीतों को संगीतबद्ध प्रसारण योग्य पाया गया और मुझे ए.आई.आर.-65 के अंतर्गत आकाशवाणी द्वारा अनुबंधित किया गया। इसके बाद सुगम संगीत के गायक कलाकारों द्वारा गाये मेरे गीत आकाशवाणी से प्रसारित होने लगे। मुझसे समूह गान तथा इस साम के गीत हेतु रचनाएँ माँगी जाने लगीं और उनका प्रसारण होने लगा। प्रसिद्ध गायक व संगीतकार रामकृष्ण चन्देश्री, सरबत हुसैन, इन्द्रकुमार गुप्ता तथा उस्ताद अब्दुल लतीफ खाँ (पद्म श्री सम्मानित) पं. सिद्धराम स्वामी कोरवार ने उन्हें संगीतबद्ध कर गाया तथा अपने शिष्यों को भी सिखाया। एक बार आकाशवाणी के प्राड्यूसर रामदास मुँगरे ने गणेश चतुर्थी पर आधे घंटे में प्रसारणार्थ संगीत रूपक तैयार करने को कहा जिसमें पाँच गीत हों। मैंने आलेख भेजा जो स्वीकृत होकर प्रसारित हो गया। इस प्रकार मुझे वर्षा ऋतु, दीपावली, रामनवमी, होली, बसंतऋतु, गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस आदि अवसरों पर प्रसारण हेतु अवसर प्राप्त हुए। अब अनेक कलाकार उनके प्राइवेट भजन कैसेट्स के लिए मुझे से भक्तिगीत लिखवाने लगे। उनके लिए देवी गीत, साईं भजन, राम भजन, लिखे। इसी बीच सुरेश ताँतेड़ जी ने अनेक जैन भजन लिखवाए जिन्हें शेखर सेन व कल्याण सेन के निर्देशन में उदित नारायण, कल्याण सेन, प्रकाश पारनेरकर, जगदीश ठाकुर आदि के स्वर में मुंबई में रिकार्ड कराया और टी. सीरीज तथा

वीनस जैसी नामी कम्पनियों ने जारी किया। ताँतेड़ जी ने मुझे अनूप जलोटा तथा हरि ऊँ शरण जी को भजन भेजने को कहा। हरि ऊँ शरण जी ने आग्रह पूर्वक मुझसे सीता राम, शंकर पार्वती, राधाकृष्ण, साईं बाबा तथा देवी भजन लिखवाए। कुछ निर्गुण भजनों की स्थायी पंक्तियों पर अंतरे लिखवाए। कुछ मंचीय कार्यक्रमों में गाए भी। अनूप जलोटा के स्वर में गाए भजनों का संकलन 'तेरे चरणों में' अंतर्राष्ट्रीय कम्पनी ई.एम.ई. द्वारा जारी किया गया। मेरे बुद्ध चरित गीतों को अनुराधा पौडवाल के स्वरों में रिकार्ड कर जारी किया गया। आजादी की स्वर्ण जयंती पर लिखा स्वतंत्रता संग्राम के 90 वर्षों के संघर्ष पर आधारित संगीत रूपक 'मुक्ति का महायज्ञ' को सुप्रसिद्ध संतूर वादक संगीतकार पं. ओम प्रकाश चौरसिया ने संगीत बद्धकर पहले रवीन्द्र भवन में वृन्दगान के रूप में प्रस्तुत किया तथा बाद में उसकी सी.डी. बनवाई। कुछ समय बाद इसे कोरियो ग्राफी के साथ प्रस्तुत किया गया जो काफी पसंद किया। इसे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के सभागार के अलावा अनेक शहरों में प्रस्तुत किया गया।

इस दौरान मुझे अ.भा. भाषा साहित्य सम्मेलन की भोपाल इकाई के अध्यक्ष, प्रांतीय महामंत्री तथा राष्ट्रीय सचिव के रूप में कार्य करने का मौका मिला। एक समय जब भोपाल की सबसे पुरानी संस्था 'कला मंदिर' की गतिविधियाँ बंद सी हो गईं थीं, मित्रों के आग्रह पर मैंने उसके अध्यक्ष के दायित्व का निर्वहन किया और स्थापना के साठवें वर्ष को हीरक जयंती वर्ष के रूप में सक्रिय कर विभिन्न गतिविधियाँ संचालित कीं। मेरा कार्यकाल समाप्त होने पर मैं पद मुक्त हुआ तो वर्ष 2014 में म.प्र. लेखक संघ के तत्कालीन अध्यक्ष पं. बटुक चतुर्वेदी ने आज्ञा पूर्वक मुझे संस्था के प्रादेशिक अध्यक्ष का दायित्व सौंपा। उनके मार्गदर्शन में कार्य आरंभ किया और अब अपने तीसरे कार्यकाल तक मैं यथाशक्ति सभी पदाधिकारियों और सदस्यों के सहयोग से इस दायित्व का निर्वहन कर रहा हूँ।

अब तक मेरी आठ गीत कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें राष्ट्रभक्ति परक-'राष्ट्र आराधन, भक्ति परक, सुमिरन, श्रृंगार परक गीत श्रृंगार, परशुराम भजनांजलि, जैन भजन, जय जिनेन्द्र, बाल साहित्य परक-गाते गुनगुनाते' तथा 'अक्कड़-बक्कड़ बम्बे बो' और राष्ट्र चेतना परक-'पाँच जन्य का नाद चाहिए।' एवं आत्म चेतना परक 'मैं तुम्हारी बाँसुरी हूँ।' शामिल है। दो गीत कृतियाँ प्रकाशन की प्रक्रिया में हैं। दूरदर्शन द्वारा भी मेरे नाटक, झलकियाँ, गीत एवं रूपकों का प्रसारण होता रहा है। मुझे प्राप्त सम्मान पुरस्कारों में म.प्र. साहित्य परिषद के जहूर बख्श बाल साहित्य सम्मान, भवानी प्रसाद मिश्र अ. भा. पुरस्कार के अलावा राष्ट्रीय नटवर गीत सम्मान, साहित्य श्री, 'भारत भाषा भूषण' सहित दो दर्जन सम्मान शामिल है। जीवन यात्रा ऐसे ही चल रही है। बस एक ही ध्येय वाक्य है-'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः।'

101, रोहित नगर फेस - 1
बावड़िया कला,
भोपाल- 462039 (म.प्र.)

वीर नारी सम्मान में सम्मानित वीरमाता कौशल्या सोनी

लिहाज का लिहाफ

– मंगला रामचंद्रन

जन्म – 3 जून 1944।
शिक्षा – स्नातक।
रचनाएँ – सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रकाशकुमारी हरकावत सम्मान से सम्मानित।

कहते हैं, पश्चाताप के आँसू किए गए पाप का प्रायश्चित्त कर देते हैं। पर इस उम्र में बच्चों की राह देखते-देखते पथराई हुई, शुष्क आँखों में किसी आई ड्रॉप से भी आँसू निकलने की संभावना कहाँ है! वैसे भी बच्चों के कई बार विष बुझे तीर की तरह किए गए चुभते सवालों ने कानों को ही नहीं हृदय को भी स्तंभित, पथराया और सुन्न सा कर दिया है। दिन भर इसी विषय पर सोचते-सोचते स्वयं का बच्चों के लिए कुछ कर न पाना सही लगने लगा है। अपनी नाकाबिलियत और सदा बने रहे धन के अभाव का ख्याल आ आकर दिमाग में ऐसा तांडव मचाता कि लगता सिर के अंदर ज्वालामुखी फूट कर लावा बह चला हो। अपनी नाकामी और बच्चों के दिल में जो दर्द का बहता सैलाब है, दोनों संयुक्त रूप से मिलकर छाती का दर्द बढ़ा देता है। अपनी उन दिनों की परिस्थितियों से जन्मी असमर्थता और अक्षमता को किस तर्क से सही ठहराए ये भी नहीं जानती। वैसे भी कठघरे में तो सुधा स्वयं को खड़ा देख रही है, कठघरे के बाहर खड़े बच्चों को अधिक तर्कसंगत, समझदार और महत्वाकांक्षी पाती है। सुधा ने ईमानदारी से बच्चों से कई बार स्वीकार किया है कि वे सब अपने माता-पिता से अधिक बुद्धिमान एवं समझदार हैं। यही नहीं स्वयं उसने उनसे कई बातें सीखीं हैं। ये कथ्य भावनाओं में बहकर व्यक्त नहीं किए गए थे। वरन् सुधा इस बात को पूरी तरह से समझती और स्वीकार करती थी।

पर बच्चों को उन दिनों की अपनी विकट परिस्थितियों का, तसल्ली से किस तरह विश्लेषण पेश करे ये सुधा समझ नहीं पाती। बच्चों के पास समय का अभाव और बात सैंकड़ों में करके समाप्त करने वाली नहीं थी। कैसे समझाए कि विकट परिस्थितियों में जूझ कर जिस तरह दोनों बच्चों को शिक्षित किया, सास-ससुर, ननद और देवर को शिक्षित करने और घर बसाने में मदद की उसकी तो समाज में भी प्रशंसा होती है। सुधा और अजय कितने प्रसन्न और संतुष्ट हो गए थे कि उनका संघर्ष और परिश्रम सार्थक हो गया। अजय तो यूँ भी अल्प-संतोषी थे, माता-पिता के सुपुत्र बने रहने के अलावा मानो कोई और इच्छा ही न हो, सो उसी रूप में कर्तव्यों को पूरा करने पर जीवन को सफल मान बैठे। पर सुधा को सदैव ही लगता था कि कुछ दूरदर्शिता और सोच से बच्चों का जीवन और बेहतर बन सकता था। पर मात्र मेहनत और कोशिश से मनचाही मंजिल कहाँ मिल जाती है? कभी सोच, कोशिश और की गई मेहनत पर्याप्त नहीं होती तो कभी परिस्थितियाँ विपरीत हो जाती थीं। उसके बाद भी जब अपनी संतानों को स्वयं से अधिक अच्छी परिस्थितियों, अधिक सफल एवं अधिक सक्षम देख पाते हैं तो मान लेते हैं कि उनके किए त्याग और तपस्या सार्थक हो गए। प्रयास और परिश्रम भी तो परिस्थितियों का आकलन करने वाले के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। ये सारे आदर्शपूर्ण लगते शब्द जब कर्म में उतरते हैं तो व्यक्ति के व्यक्तिगत क्षमता के अनुरूप ढलते जाते हैं। क्षमता की सीमा हर व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों, दृष्टिकोण, दूरदर्शिता के साथ ही एक प्रमुख घटक पारिवारिक परिवेश और परिस्थितियों का भी होता है।

सुधा शायद पिछले संघर्षों को भूल चुकी थी या दिलो-दिमाग के किसी कोने में दफन कर चुकी थी। क्योंकि उसे यही लगता रहा कि उसने और पति अजय ने अपने सामर्थ्य के अनुरूप तथा अपने दूरदर्शिता को जितनी उड़ान प्राप्त हो सकती थी उसके दायरे में रहते हुए पर्याप्त किया है। अपने स्वयं के माता-पिता के संघर्ष और प्रयत्नों की साक्षी रही है और दिल में हमेशा एक जज्बा हुआ करता था कि वे उनके प्रयासों को सफलता दिलाने में सहायक हों। सुधा के मन में उसके अलावा कोई और विचार या खुद के लिए ऐसा हो या ये मिल जाए, न कभी आया और न ही कभी किसी प्राप्ति के लिए लालायित रही।

सुधा के माता-पिता तो यही कहते रहे कि हम बच्चों के लिए जितना करना चाहते थे नहीं कर पाए, पर तुम बच्चों ने अभावों में रह कर भी स्वयं की काबिलियत को साबित ही नहीं किया, वरन् हम बुजुर्गों को समाज में गर्व से सिर उठाकर जीने का हौसला दिया। समाज में सुधा और उसके दोनों भाईयों को आदर्श उदाहरण माना जाता था। तीनों बच्चे आज तक अपने माता-पिता के परिश्रम को याद करते हैं। कभी तीनों बच्चों में से किसी ने ये नहीं कहा कि दूसरे बच्चों के पास कितना कुछ है या उनके पास तो कुछ भी नहीं है। तीनों में ही एक ठहराव और समझदारी सी थी कि उनके माता-पिता उनके लिए संभावित श्रेष्ठ विकल्प ही चुनेंगे। इस मनोदशा और सोच ने तीनों बच्चों को एक समर्पित तथा ईमानदार प्रयास में सतत् लगे रहने की आश्वस्ति भी दी और प्रेरित भी करती रही। तीनों घर के कार्यों में भी अपना योगदान देते रहे बल्कि सहयोग करने का मौका छोड़ते नहीं थे। कदाचित अपने माता-पिता को दादा-दादी के अलावा समय-समय पर परिवार से जुड़े अन्य लोगों की मदद और सहयोगी व्यवहार ने मानो बच्चों को प्राकृतिक रूप से आदर्श बच्चों और आदर्श परिवार की परिभाषा सिखा दी। सुधा के मन में ये संस्कार अच्छी आदतों के रूप में घुल गए थे। अपने बच्चों को भी उसने इसी विचार के साथ बड़ा किया था। सुधा को लगा करता था कि धन की कमी को किसी तरीके से सँभाल लिया जा सकता है पर अच्छी आदतों को व्यवहार से जुड़ने और ढलने में समय भी लगता है और अतिरिक्त प्रयत्नों की भी आवश्यकता होती है।

सुधा कहाँ जानती थी कि पूरा का पूरा विश्व बाजारमय हो जाएगा, पूरी तरह सौदेबाजी और व्यापार पर टिका हुआ। यहाँ तक कि धर्म, शिक्षा, न्याय-प्रक्रिया का स्वरूप भी व्यावसायिक हो जाएगा! अब पारस्परिक रिश्ते-नाते भी ऐसी स्थिति को पहुँच चुके हैं, ऐसी सोच विकसित हो गई है कि कुछ करने से पहले प्रमुख मुद्दा होता है कि आप इससे लाभान्वित होंगे या नहीं। आपकी क्रिया उचित या अनुचित है इस पर सोचने का तनिक भी प्रयास नहीं होता है। सुधा वर्तमान के परिदृश्य से पूरी तरह अवगत है और जिस प्रतियोगिता तथा प्रतिस्पर्धा की वर्तमान में जोर-शोर से चर्चा होती रहती है, उससे भी वाकिफ है। हर युग, हर समय कि अलग-अलग प्रकार के संघर्ष और उनसे जूझने की युक्ति हुआ करती है। कोई भी आते-जाते ये कैसे कह देता है कि 'आप तो पुराने समय के हो, आपके समय में सब कुछ बड़ा सहज और सरल था, आप हमारे संघर्ष के बारे में कुछ नहीं जानते। आपके समय में इतनी समस्याएँ भी तो नहीं थीं।'

अंग्रेज़ी में भले ही इतना सब सुना दें पर क्या सही में उनके समय में सारी परिस्थितियाँ अनुकूल थीं; या उनकी पीढ़ी ने किसी तरह का कोई संघर्ष या प्रयास किया ही नहीं? क्या वे लोग परिस्थितियों से बिना लड़े सब कुछ कर पाए, उनकी पीढ़ी के तमाम लोगों ने वास्तव में कोई श्रम, प्रयत्न, जीवन का स्तर बेहतर करने के लिए कुछ नहीं किया? प्रतिदिन की दिनचर्या सुचारू रूप से प्रतिपादित करते हुए, छोटी होती चादर को विस्तार देते, पति-पत्नी स्वयं की आवश्यकताओं को सीमित करने की होड़ में लगे हुए अपने से बुजुर्गों और अपनी अगली पीढ़ी को भी हैसियत से अधिक देने की कोशिश में लगे रहते। इसके लिए जो प्रयास होते थे उसकी तुलना उस नट से की जा सकती है जो ऊँची बँधी रस्सी पर चलता है।

सुधा और आज की पीढ़ी में एक बहुत बड़ा मूलभूत अंतर है। पहले चादर के हिसाब से आवश्यकताओं की वरियता को क्रम दिया जाता था। अब आवश्यक तथा अनावश्यक आकांक्षाएँ, अनंत महत्वाकांक्षाएँ, जायज-नाजायज इच्छाओं का सम्पूर्ण कोलाज दिमाग पर हावी हो जाता है कि उन्हें पूरा करना ही होगा। उसकी पूर्ति के रास्ते भले सही न हों, कदम गलत दिशा में जाएँ तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। तनाव और उससे उपजते तमाम मानसिक अवसाद, शारीरिक रोगों को न्यौतते हुए जीवन की एक विशिष्ट शैली बना लेते हैं।

पति की मृत्यु के बाद सुधा नितांत अकेली ही तो हो गई है। इस एकाकीपन के अनेक अनंतकालों में न चाहते हुए भी उसका दिलो-दिमाग पीढ़ियों के स्वभाव गत् अंतर की तुलना में लंबा समय गुजार देता है। करे भी तो क्या? बुढ़ापे में मात्र जीभ ही लपलपाती है क्योंकि वही एक अस्थि विहिन होता है। शरीर के तीन पदार्थों, कठोर, कोमल और द्रव्य में कठोर तो अस्थियाँ ही होती हैं जो समस्त शरीर में विभिन्न आकार और नाप की होती हैं और शरीर को सँभालते हुए शरीर का संचालन करवाती है। जीभ में अस्थि होती ही नहीं है सो नियंत्रण में भी नहीं रह पाती। कभी स्वाद के लिए तो कभी वार्तालाप में अनियंत्रित हो जाती है। वैसे सुधा को इन दोनों ही तरह की कोई आशंका नहीं है, बच्चों ने उसका खाना टिफिन वाले से तय कर रखा है। मीठा निषेध, अल्प नमक इन दो निषेध नियमों के साथ डिब्बे में जो भी आ जाए। जितना खाते बने का लो वरना जो आवारा कुत्ता रात को घर के बाहर पड़ा रहता है, बाई उसके सामने डाल देती।

जीभ की वार्तालाप वाली आशंका तो स्वत: ही खारिज हो जाती है क्योंकि सुधा अधिकांश समय तो अकेली ही रहती है। जरूरत भर वार्तालाप करने से जीभ फिसलती भी नहीं है। सुधा बच्चों की विवशता, समय की माँग और उनके सैकड़ों दायित्वों को पूरा करने के उत्तरदायित्व को भी समझती है। उसी के अनुकूल रह कर स्वयं अपने क्रियाकलापों को इस तरह तय कर लेती है कि वो प्राकृतिक रूप से प्रसन्न रह सके।

माता-पिता बच्चों से अपेक्षा करते हैं कि वो कक्षा में प्रथम अथवा द्वितीय स्थान प्राप्त करें, उच्च शिक्षा प्राप्त कर उच्च पद प्राप्त करें। ये अपेक्षा इतने स्वाभाविक तरीके से बिना अधिक सोचे-विचारे एक यांत्रिक प्रक्रिया की तर्ज़ पर चल पड़ती है। बड़ा होकर बच्चा जो भी बन जाए, जिस पद पर भी हो उसे उसकी नियति मान कर माता-पिता स्वीकार भी कर लेते हैं और संतुष्ट भी हो जाते हैं। दूसरी ओर कुछ बच्चे अतिरिक्त और कुछ बहुत अधिक महत्वाकांक्षी होते हैं और हर प्राप्ति के पश्चात् भी असंतुष्ट रहते हैं। आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने में सतत् प्रयास के बाद भी सदैव सफलता की कोई गारंटी तो होती नहीं। पर इन हालातों में बच्चों को माता-पिता में ही दोष नजर आता है। सोचते-सोचते सुधा के होंठों पर अपने प्राकृतिक स्वभाव के अनुरूप मुस्कान फैल रही थी और होंठ बुदबुदा उठे 'पंचिंग बैग।' आजकल एकांतवास करते हुए उसका दिमाग कुछ अधिक ही सक्रिय हो जाता है। सदैव किसी विषय पर विचार करते, विश्लेषण करते हुए उसका समय आसानी से कट जाता है, यही नहीं कभी इन मंथनों से नवनीत भी प्राप्त हो जाता है। विचारों के सही मंथन से लाभप्रद मक्खन अर्थात् फल प्राप्त होता है; हाँ अगर हम इस प्रक्रिया को अपने पक्ष में करने के हिसाब से न लेकर तटस्थ भाव से रह सकें।

अब तो सुधा किसी घटना या किसी के व्यवहार से पहले की तरह उद्वेलित नहीं होती, शायद उम्र के साथ परिपक्वता आ गई हो या एकांत ने आत्मनिरीक्षण का मौका दे दिया है। लोगों के किसी ख़ास व्यवहार के पीछे छुपे कारणों को जाँचने-परखने का मौका मिला है। बैठे-बैठे गणित के प्रमुख चार क्रिया चिह्नों, जोड़-घटाव, गुणा-भाग करते हुए लगता मानो कई रहस्यों से पर्दा उठ रहा हो। पर इस तरह वो स्वयं को ही अधिक दुखी कर रही है, क्योंकि उसे बच्चों के लगाए आरोप सही लगने लगते हैं। बच्चों के लिए उचित प्रकार से कुछ ठोस ना कर पाने के दु:ख से व्यथित और व्याकुल हो उठती है तथा अजय और स्वयं को दोषी मान नाकाबिलियत के अंधे कुएँ में धँसती चली जाती है। शर्मिंदगी और अवसाद में जब गहरे चली जाती है तभी कुछ ऐसी सकारात्मक परिस्थितियों का निर्माण होता है कि वो महसूस करने लगती है कि सब भला चंगा तो हो रहा है यूँ ही विशाद से भरी जा रही थी।

अब तो सुधा ने मन को समझाने, शांत करने और बेचैनी को छुपाने या दूर करने की कला भी मानो सीख लिया। अतीत में हमेशा समय की कमी से त्रस्त रहती थी और अब तो सुधा को अवकाश और समय इफरात में मिले हुए हैं। इतनी अधिक कि दिन के पूरे चौबीस घंटों में से मनचाहे घंटे में उसके सान्निध्य में बैठ सकती है, बिना कुछ किए, सुन्न, एकदम शांत मुद्रा में, अथवा अतीत की गहराइयों में डूबी रह सकती है। प्रारंभ में यह अवकाश, समय का इतना वृहत् भंडार उसे काटने को दौड़ता था, पर अब वही ईश्वरीय वरदान लगने लगा है। इस प्राप्ति के सहारे तो वो अपने समस्त जीवन की पड़ताल कर पा रही है और अनेक सत्य पर से आवरण हटा पा रही है, जो पहले 'लिहाज़ के लिहाफ' से ढँके हुए थे। अतीत को खँगालते हुए आजकल सुधा यदा-कदा समुद्र मंथन की तरह नए मुहावरे रूपी मोती पा जाती है और उसके होंठ मुस्कुराते हुए दोहराते हैं 'लिहाज़ का लिहाफ।'

घर की इज्जत, बड़े बुजुर्गों की इज्जत, आदर्श पति-पत्नी बने रह कर जीवन की प्रमुखतम उपलब्धि का तमगा जो अक्सर जीवन में खीझ और ऊब की कगार पर प्राप्त होता है, इतना सब कर लिया मानो जीवन धन्य हो गया। इन सब के नीचे अक्सर ही सत्यता तथा प्रगतिशील विचारों की बलि चढ़ जाती है। पर ऊपरी तौर पर घर में अमन-चैन की बाँसुरी बजती रहती है, उसकी मीठी तान में बेसुध हो गए तो सुखी मान लें और संतोषी जीव बन जाएँ। फिर वही चक्र, संतोषी बन कर खुशहाल रहो या किसी नई विचारधारा की सोच के तहत् जोखिम उठा कर बैचेन रहो। अतीत का वो समय जब आर्थिक परिस्थितियाँ भी जोखिम उठाते कदमों को हिचकिचाहट से भर देतीं थीं।

सुधा की वर्तमान स्थिति ऐसी है कि वह चाह कर भी अपने दिमाग को सोचते और विश्लेषण करते हुए रोक नहीं पाती, न थकती है। परिस्थितियों को क्रमवार खँगालते, मंथन करते-करते उसे दुर्लभ मोतियों को पा जाने का एहसास सा होता है। पुरानी घटनाओं का धुँधलका मानो छँट कर दृश्यों को साफ नज़र आने दे रहा है। एक परिदृश्य जो किन्हीं भी कारणों या हालातों में बदल नहीं सकता है वह है हमारा बीता हुआ अतीत।

पर फिर भी उन पति–पत्नी ने भी तो मन की कितनी ही इच्छाओं–अकांक्षाओं को दबा कर रखा था जो पहले से भी अधिक साफ उभर कर नज़र आ रही है। बड़ों के लिहाज में, आदर में, संकोच में, और भी कई कारणों से आकांक्षाएँ पूरी नहीं हो पाती, मन में दबी रह जाती और फ़ुर्सत ही फ़ुर्सत के इस मनोदशा और माहौल में अधिक निखर कर दिख रही है। कई बार लगा भी होगा कि हमने तो कितना त्याग किया था, जो कि वास्तविकता में परिस्थितियों से जन्मी क्रियाएँ हैं और प्रत्येक व्यक्ति, हर युग में, कई तरह से करता है। इतना सब सोचते हुए, विश्लेषण करते हुए सुधा को मानो संतुष्टि और मानसिक ठहराव का एहसास हुआ।

वर्तमान में बच्चे स्पष्टवादी हैं, कुछ पूछने और कहने में संकोच नहीं करते जो कि सही में एक अच्छा तथा महत्त्वपूर्ण गुण माना जाता है। उनके प्रश्नों में सच्चाई का अंश होने को सुधा भी तभी महसूस कर पाई जब विवेचना करने की इतनी फ़ुरसत मिल पाई। लिहाज का लिहाफ ढँका ही रहता और सारी शंकाएँ आवरण में ही छुपी रहतीं तो यथार्थ सामने आता ही नहीं। डाँटने वाला मुँह ही प्रशंसा भी करता है यह उक्ति कितनी सटीक है। बच्चों को उनकी भूल पर माता–पिता डाँटते हैं और भूल सुधार कर लेने पर शाबाशी की थपकी भी तो वही देते हैं। इसी तरह संतानें जब स्नेह आदर से आपका ख्याल रखती है तो सही प्रश्नों को रखने या पूछने पर बिदकने की क्या आवश्यकता है! वैसे भी आजकल अनुमति कौन माँगता है? अब किसी रिश्ते को साबित करने के लिए न तो किसी आवरण की जरूरत या दरकार होती है न कर्तव्यों और त्याग के नाम पर इच्छाओं की बलि वेदी। संवेदना और मानवीयता इंसान के प्रमुख गुण हैं, वो शेष रह जाएँ तो ठीक।

खिलाड़ी अपनी मुठ्ठी को ताकतवर बनाने के लिए पंचिंग बैग पर बार–बार प्रहार करता है, वह पंचिंग बैग ही तो उनका विश्वस्त साथी है। हर काल, हर पीढ़ी में मानवीय समाज में पारिवारिक रिश्तों के ताने–बाने में हर रंग का मेल होता है। तमाम गिले शिकवे, शिकायत, एक–दूसरे पर दोषारोपण करते हुए भी स्नेह– दुलार की अजस्त्र धारा सतत् प्रवाहित होती रहती है। अंततः मंथन की प्राप्ति भी होती है। अब जब सब कुछ स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो सकता है तो लिहाज के लिहाफ की आवश्यकता कहाँ रह गई?

608 आई ब्लाक, मेरीगोल्ड,ओशन पार्क,

निपानिया, इंदौर 452010 (म.प्र.)

मो.- 9753351506

वीर नारी सम्मान में नाटक शौर्यगाथा की प्रस्तुति

हसरत

- संजय कुमार सिंह

जन्म - 21 मई 1968।
जन्मस्थान - नयानगर, मधेपुरा (बिहार)
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - दस पुस्तकें प्रकाशित।

जून की पन्द्रह तारीख थी। सूरज आग उगल रहा था। मैं महिला कॉलेज के अपने चेम्बर में बैठा हुआ था। पाखी-पखेरू और पेड़ सब खामोश थे। विश्वविद्यालय ने ग्रीष्मावकाश रद्द कर दिया था। अब यह कॉलेज प्रबंधन का उत्तरदायित्व था कि सिलेबस पूरा करवाया जाए। किसी प्रिंसिपल के लिए इन फैसलों से असहमत होना मुमकिन नहीं था, पर भीषण गर्मी में बच्चियाँ कॉलेज आ ही नहीं रही थीं। पाँच-दस लड़कियों की झलक कभी-कभार दिखती थी, जो कार्यालय के काम से आकर निकल जा रही थीं। सी.सी. कैमरे पर मैं सब वॉच कर रहा था। पूरा कॉलेज भाँय-भाँय कर रहा था। ज्यादातर शिक्षक विश्वविद्यालय के सहयोग करने के आग्रह को भुला कर छुट्टियों पर चले गए थे। जून में पढ़ाने का फैसला पूरी तरह असंगत लग रहा था। मगर मेरे लिए यह बाध्यकारी था कि मैं कॉलेज आऊँ-जाऊँ और दिन भर का लेखा-जोखा समय पर मेल करवाऊँ। तुगलक ऐसे ही काम कराता होगा। सरकार और विश्वविद्यालय प्रशासन का दबाव ऐसा था कि किसी की जुबान ही नहीं खुल रही थी शिक्षा विभाग को सुधारने जिम्मा एक कड़क अफसर के हवाले कर दिया गया था। वह रोज कोई न कोई मेल भेज रहा था।

बड़ा बाबू अपने आफिस में मशरूफ थे। आखिर पाँच बजे मेरे पास चपरासी आया, तो मैं उठा। भारी मन से चल पड़ा। यह रोज की दिनचर्या थी। गार्ड ने गेट खोला। फिर बंद किया। जून में आप कुछ कर लीजिए। ऐसे ही हाँफ-हाँफ कर चलेगा कॉलेज पर जिन्हें पत्थर पर सपनों के बीज उगानो की आदत हो, तो उन्हें मना भी नहीं किया जा सकता। कुछ सतरें होंठों पर बिछल रही थीं-जहाँ से भगना मुश्किल, जहाँ रहना भी मुश्किल

भाग कर कोई जाए भी तो कहाँ! पत्नी-बच्चे और घर-परिवार का मोह जकड़ लेता है, फिर आदमी पिसते रहता है, फर्ज की चक्की में नौकरी एक बंधन है, मजबूरी न हो, तो कोई करे। क्यों हुक्मरानों को किसी मौसम की फिक्र कहाँ रहती है!

बाहर लू की तपिश चल रही थी। एक थका हुआ दिन बीत रहा था। घर पहुँच कर मैंने कपड़े बदले। मुँह-हाथ धोया और अपने नसीब को कोसा। प्रिंसिपल नहीं होता, तो मैं इस अकाल बेला में कॉलेज क्यों जाता। अंग्रेजों ने कुछ समझ कर ही विश्व विद्यालय का कार्यवृत्त तैयार किया होगा, पर अब सबका कचूमर निकल रहा था।

खाना खाकर बिस्तर पर लेटा ही था कि मोबाइल खड़का। नींद की झपकी थम गई। मोबाइल का अपना अलग झमेला है, हमेशा उस पर कुछ न कुछ आएगा ही। आप की जिंदगी का यह दूसरा हुक्मरान है, जो वक्त की परवाह नहीं करता।

'हैलो!'

'जी!'

'कॉलेज में आज क्या हुआ सर?' प्रभात खबर का स्थानीय संवाददाता बोल रहा था। उसके पास कोई अपुष्ट खबर थी।

'कुछ तो नहीं!' मैंने चौंक कर कहा,' मैं तो कॉलेज में ही था, बाहर कोई घटना घटी हो।'

'नहीं लड़कियों को अगुवा करने का प्रयास हुआ है। असामाजिक तत्वों द्वारा ऐसी सूचना मिल रही है।' संवाददाता ने बताया। 'आप कॉलेज से फीड बैक लेकर बताइए।'

इस फोन के तुरंत बाद बड़ा बाबू को मैंने फोन लगाया, तो उन्होंने बताया। 'एक लड़की आई थी कि कुछ लड़के बाहर परेशान कर रहे। हम लोगों ने गेट पर ले जाकर उसे घर पहुँचवा दिया।'

'मुझे भी तो बताते।' मैंने नाराज होकर फोन रख दिया। लेकिन फोन अब चुप होने का नाम नहीं ले रहा था। उसकी घंटी लगातार बज रही थी। हर दस मिनट के भीतर किसी न किसी

अखबार के संवाददाता का फोन आ रहा था। मैं हैरत में था। उनके मुताबिक पहली घटना के बाद दूसरी लड़की को गर्ल्स स्कूल रोड से एक अधेड़ ने झाँसा देकर अपनी मोटर साइकिल पर चढ़ा लिया। गिरिजा चौक पहुँच कर वह लड़की को बहला-फुसला कर पॉर्क ले जाने लगा, तो लड़की ने शोर-गुल मचाना शुरू किया। इसके बाद वह भाग खड़ा हुआ।

मैंने फोन पर ही संवाददाता से कहा, 'उस लड़की के साथ जो भी घटना हुई, वह कॉलेज से बाहर हुई, इसमें हमारी क्या जिम्मेदारी हो सकती है? पुलिस की गश्त होनी चाहिए सड़क पर अपराधियों पर पुलिस की सख्ती होनी चाहिए, कॉलेज प्रशासन क्या करेगा। वह तो अपने दायरे में ही रहेगा सड़क पर प्रिंसिपल का क्या रोल आप तय करेंगे।'

दूसरे दिन अखबार में यही लीड खबर थी। हाँ खबर में अलग से कोई मिलावट नहीं थी। लेकिन फोन पर अब भी कोई न कोई छात्र संगठन का नेता मुझसे कैफियत ले रहा था, 'यह घटना कैसे हुई? गार्ड को टाइट रखिए। सी.सी. कैमरा ठीक है कि नहीं? आप कॉलेज में थे कि नहीं? जून में कॉलेज क्यों खुला है? खुला है, तो गॉर्ड की संख्या बढ़ाइए।' सिर में जितने बाल, उतने सवाल। मैं परेशान था। कॉलेज है, तो घटनाएँ घटती हैं, हमलोग जूझते भी हैं, पर विधि-व्यवस्था पर तो पुलिस का अंकुश होना चाहिए गर्ल्स स्कूल से गिरिजा चौक तक पुलिस के साथ समय-समाज सो गया था क्या? मैं खुद पर टूट रहा था। सचमुच नौकरी करना आज के दौर में फजीहत है। पुलिस की कलगी प्रिंसिपल के सिर पर लगाने की कोशिश हो रही थी? मेरी नजर कैमरे पर अटकी हुई थी। दूर तक जली हुई भूरी धरती, लू और तपिश के दृश्य कुछ छात्राएँ आती-जाती हुईं। बाँकी सन्नाटा, जैसे समय सिसक रहा हो मौसम अगर रूठ जाए, तो कितना अजीब लगता है सब कुछ? जैसे सौभाग्य जल गया हो।

दोपहर में महिला पुलिस की पलटन लड़की को लेकर कॉलेज आ गई। पुलिस की अपनी कैफियत थी। वह मीडिया पर नाराज हो रही थी कि उसने तिल का ताड़ बना दिया।

मैंने लड़की पर बिगड़ते हुए कहा,' तुम चढ़ी क्यों मोटरसाइकिल पर? अपरिचित लोगों के बहकावे में क्यों आई? तुम लौट कर वापस कॉलेज आ जातीं? एक लड़की आई, तो उसे हम लोगों ने सेफली घर पहुँचवा दिया।'

एस.ओ. ने मुझे रोकते हुए कहा, 'हम सी.सी. टीवी. का फुटेज देखना चाहते हैं। कहीं वह आदमी अंदर आया हो।'

मैंने संजीदगी से कहा, 'घटना गर्ल्स कॉलेज रोड की है, वहाँ सड़क पर जो कैमरे लगे हैं गिरिजा चौक तक उनमें फुटेज देखिए यहाँ अंदर कोई घटना जब घटी ही नहीं, तो फुटेज कहाँ से मिलेंगे? रोड पर पुलिस की गश्त तेज होनी चाहिए।'

'यह तो बताइए आपके यहाँ से लड़कियाँ क्यों भागती हैं। दूसरे के साथ? आपका सी.सी. कैमरा भी ठीक नहीं है।' उसने बेतुका सा सवाल किया, 'आप मुश्किल में पड़ जाएँगे।'

'सुनिए' मैंने पिनक कर कहा, 'यह लड़कियों का कॉलेज है, तो घटनाएँ भी तो यहीं घटेंगी। मैं क्यों मुश्किल में पड़ूँगा? इसमें कॉलेज प्रशासन क्या करेगा?'

'आपकी जिम्मेवारी नहीं है?' उसने मूड बना कर कहा।

'क्या है मेरी जिम्मेवारी?' मैं बौखलाया, 'यहाँ कोई घटना होगी तब न? यहाँ से बाहर क्या चरवाही करूँ कि कौन घर पहुँची और कौन होटल गई फिर पुलिस किसलिए है? प्रिंसिपल का यही रोल है?'

'क्या रोल है?'

'आप बताइए।'

'नहीं, आप बताइए।'

'मैं कुछ नहीं बताऊँगा।'

पुलिस एस.ओ. अपने अंदाज में बहस कर रही थी। वह अपने आप को बचा रही थी और कह रही थी,' एक लड़की, तो फोन ही नहीं उठा रही, यह भी आवेदन नहीं दे रही पुलिस क्या करेगी?'

'यह अलग समस्या है, इतनी सेफ्टी और सिक्योरिटी तो हो कि पीड़िता सामने आए, आखिर महिला पुलिस सेल का गठन भी तो इसीलिए किया गया है कि आप इनकरेज करें।' मैंने लड़की से कहा, 'तुम्हें आवेदन देना चाहिए। आगे आकर मोरल सपोर्ट करना चाहिए। अगर तुम सहयोग नहीं करोगी, तो पुलिस क्या करेगी? असामाजिक तत्वों का मनोबल और बढ़ेगा। तुम्हारी जैसी लड़कियों को वे और हेरास करेंगे। लगाम लगनी चाहिए इन हरकतों पर।'

लड़की ने सिर हिलाया। वह कुछ हद तक हिम्मत दिखा रही थी। पर भीतर से डरी-सहमी थी। मुझे लगा आसमान में बाज हो, तो परिंदों का डरना स्वाभाविक है। गर्ल्स स्कूल रोड की काली छाया मन पर लोट रही थी। ऊपर से अनाप-शनाप सवाल-जवाब का सिलसिला। एस.ओ. नाराज होकर उठ गयी।

'ठीक है, जेल गेट पर से फुटेज लेती हूँ, पर आप अपने सिस्टम को सही कीजिए।'

'जरूर' मैंने उसे आश्वस्त किया, 'आप जरा गश्त लगवाइए।' एस.ओ. के जाने के बाद मैंने ऑपरेटर को फोन मिलाया, 'आप सी.सी. कैमरे को आकर देखिए। क्यों मुझे जलील करवा रहे हैं?' पिछले दिनों क्लॉस रूम से एक लड़की ने दूसरे का बैग चुरा लिया, तो उतना ही झमेला हुआ। एक लड़की को उसका रिश्तेदार भगा ले गया, तो उसके माता-पिता ने पूरा हंगामा किया। एक लड़की घर से भाग गई, तो उसका भाई खुद भी परेशान होता रहा और हम लोगों को भी परेशान करता रहा। मन भन्ना रहा था। इस समय-समाज के नैतिक पतन का ठीकरा किस पर फोड़ जाए? उत्तरदायित्व से मुकर कर भागा भी तो नहीं जा सकता, पर एक-एक आदमी को संवेदनशील होना होगा। सड़क पर दिन-दहाड़े ऐसी घटनाएँ घटती हैं, उसका कोई तोड़ नहीं। पुलिस इसी तरह तीन-तेरह करती रहती है। पर शहर की सूरत में कोई बदलाव नहीं आ रहा। भले अफसर बदल जाएँ।

शाम को टी.वी. वाले लोग आए। हम लोग चेम्बर में ही बैठे हुए थे। पत्रकार ने फीड बैक के साथ कहा, 'यह जो घटना घटी है, उस पर छात्राओं को आप क्या मैसेज देना चाहेंगे?'

'यही कि अनजाने व्यक्ति के झाँसे में न आवें। सजग रहें। कोई परेशानी हो तो कॉलेज प्रशासन को इत्तिला दें। बाहर अगर सड़क पर कोई छेड़खानी की कोशिश करे, तो आसपास के लोगों को शोर मचा कर बुलाएँ, पुलिस के हेल्पलाइन नम्बर का उपयोग करें।' मैं ने साफ-साफ शब्दों में अपना पक्ष रखा।' पुलिस की गश्त भी चलनी चाहिए। अकेले कोई प्रिंसिपल शहीद नहीं हो सकता, सिस्टम को नहीं बदल सकता सवाल मोरल वैल्यूज का है। इसमें सबको अपना सहयोग दोना होगा हमारा सोशल सिस्टम करप्ट हो गया है।'

पत्रकार जहीन लगा। चाय पीने के बाद अनौपचारिक बातचीत में उसने भी कहा, 'आप सही कह रहे हैं। समाज में जिसकी जो जिम्मेवारी है, उस पर भी बात होनी चाहिए अकेले किसी से बदलाव नहीं आएगा।'

मैंने उदाहरण स्वरूप कहा, 'आप यह भी जानिए मेरी दो शिक्षिकाओं के गले से सड़क पर चेन झपट कर अपराधी भाग गए। पुलिस लीपापोती करके खामोश हो गई। आखिर उन लोगों ने संतोष कर लिया। कोई रिकवरी नहीं। अगर पुलिस गश्त लगाती है, तो हासिल क्या है? वही सिफर का सिफर।'

'एग्जेक्टली' पत्रकार ने अपनी सहमति जताई। 'पुलिस को सामने आकर जवाब देना चाहिए कुछ ठोस कदम उठाने चाहिए।'

कॉलेज बंद होने का समय हो रहा था। हम दुआ-सलाम के बाद उठ गए।

तीसरे दिन माननीय कुलपति महोदय का फोन आया,' कॉलेज में कोई घटना हुई है क्या? ये क्या न्यूज है?'

'नहीं, सर! घटना कहीं बाहर हुई है।' मैंने घबराकर कहा।

'हाँ आप सजग रहिए, अगर कॉलेज में कुछ हुआ, तो आपका तबादला कर दूँगा। बी केयरफुल। महिला कॉलेज है। समझ रहे हैं न? छात्राओं की सुरक्षा का इंतजाम भी पुख्ता होना चाहिए।'

'जी सर!' मैंने अदब के साथ कहा। मन के किसी कोने में विस्फोट हुआ। हो जाए तबादला। मैं प्रिंसिपल हूँ, पुलिस नहीं। होने को आज भी एक घटना हुई थी। दो लड़कियों को एक लड़के के साथ पकड़ा गया था। उनके गार्जियन को बुलाया गया था। हम लोग पुलिस को खबर देने वाले थे, पर उन बच्चियों के माता-पिता रोने लगे। इज्जत का हवाला देने लगे। मैं विवश हो कर रह गया। मन में अपराध-बोध सा है। क्या मैंने सही किया या गलत? एक नैतिक द्वन्द्व मथ रहा है मन को। रूट में जाकर अगर इस समय-समाज को नहीं सुधारा जाए, तो केवल दंड देने से क्या होगा? माता-पिता, गुरुजन, भाई सब लोगों को उत्तरदायित्व लेना चाहिए पर यहाँ गलती किसी की होती है और घेरा किसी को जाता है।

दिन से रात तक एक जैसा मौसम। भीतर-बाहर वही उच्छ्वास! पूरी पृथ्वी जलते आँवे में तब्दील हो गई थी। मन अकछ रहा था। ऐसे में कोई घटना कहीं घटे दिमाग में उसकी तुर्शी रह जाती है। लिंक अगर किसी भी कारण से जुड़ता है, तो और भी अनाप-शनाप खयाल आते हैं। मैं शायद उसी झोल में उलझा था और सोच रहा था कैसे क्या किया जाए एक दिन के लिए भी चैन नहीं!

पत्नी ने रात को खाने के समय कहा, 'आपका इंटरव्यू यू-ट्यूब पर चल रहा है।'

'चलने दो।' मैंने बेरुखी से कहा।

'देखिएगा नहीं।' वह यूँ ही बोली।

'नहीं।' मैंने तल्ख होकर कहा।

'क्यों?' उसने मेरी ओर ताक कर कहा।

'किसी मेथोडोलॉजी पर बोल रहा हूँ क्या?' मैंने कुढ़ कर कहा।

'नहीं कॉलेज वाली घटना पर।' वह तत्काल अपने खयालों में थी।

'कोई नई बात नहीं है, कॉलेज में यह सब लगा रहता है। मोबाइल और सोशल मीडिया के युग में और।' मैंने उसी तरह रूक्ष होकर कहा, 'तुम खाना लगाओ। मुझे अब ऊब होती है अपने काम से।' पत्नी ने मेरे मूड और बातचीत के लहजे से समझ लिया मैं तनाव में हूँ। वह चुपचाप थाली ले आई। खाना खाकर मैं सो गया। रात की गर्मी में देर तक मन उचटा रहा। नींद आई, तो मैंने देखा कि मैं गर्ल्स स्कूल रोड में पुलिस की वर्दी में लड़कियों की गारद लेकर खड़ा हूँ, मनचलों की तलाश चल रही है। हैण्ड स्पीकर पर बच्चियों को आत्म-निर्भर बनने के लिए मैं स्पीच दे रहा हूँ। इस काया पलट पर खुद भी हैरान हूँ, कभी नींद में नदी नहीं बना, चिड़िया नहीं बना, आसमान नहीं बना तितली, फूल नहीं बना पर जाने किस तनाव में पुलिस बन गया हूँ। मन पर जाने कैसा स्ट्रेस है? कैसा दबाव है अगर यही हाल रहा तो मैं जाने किस-किस प्रतीक में बदल जाऊँगा मुझे पता भी नहीं चलेगा। माना बहुत बेकारी है पर नौकरी आदमी अपनी प्रकृति के हिसाब से चुनता है। मैं कॉलेज का प्रिंसिपल हूँ, फिर पुलिस कैसे हो गया? मुझे इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल रहा है। मेरी निगाह साँप-छछूँदर पर है, जो आदमी के भेष में सड़क पर घूम रहे हैं। आती-जाती लड़कियों को डँसने के लिए तैयार पप आज मैं पुलिस बन गया हूँ। मेरी निगाहें, चौकस हूँ, आज छोड़ूँगा नहीं, इन जानवरों को बहुत परेशान किया है, बहुत बदनाम कर रखा है, कॉलेज को सब लीचिंग-विचिंग निकाल दूँगा। अचानक मैं नींद में गरजता हूँ। पकड़ो-पकड़ो भागने नहीं पाए मिल गया। मिल गया यही है वह लफंगा इसे मैं पहचान गया हूँ।

पत्नी ने झकझोर कर उठाया, 'नींद में क्या बड़बड़ा रहे हैं? जगिए आजकल यह आपको क्या हो रहा है? गों-गों कर रहे हैं। इतना टेंशन मत लीजिए, किसी दिन नींद में ही दम घुट जाएगा।'

मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। सचमुच यह सब क्या चल रहा है, मेरे भीतर? हाथ-मुँह धोकर योगा किया। फिर कुछ देर आराम। नहा कर नाश्ता करने के बाद दवाएँ लीं। मशीन की तरह कॉलेज जाने के लिए तैयार होने लगा।

पत्नी ने कहा, 'आप एक-दो दिनों की छुट्टी ले लीजिए और चेकप कराइए। डॉयबिटीज में हाइपर टेंशन ठीक नहीं। लगातार आपकी सेहत गिर रही है आपको कोई फिक्र नहीं।'

'क्या हाइपर टेंशन? क्या फिक्र?' मैंने अपना दर्द भुला कर कहा।

'क्या तो बड़बड़ा रहे थे नींद में?' वह प्रश्नवाचक मुद्रा में बोली।

'तुम मेरे उत्तरदायित्व को नहीं समझोगी।' मैंने टालते हुए कहा,' अभी दो दिनों तक मीटिंग है। विश्वविद्यालय में नई शिक्षा नीति के इम्प्लीमेंटेशन का सारा भार प्रिंसिपल पर है। मैं बहुत इन्वोज हूँ। हर काम को प्रोपरली देखना होता है। आगे जैसा होगा देखा जाएगा।'

'समझ रही हूँ।' पत्नी ने प्रतिवाद किया, 'पहले जान बचेगी, तब न नौकरी कीजिएगा। आपका उत्तरदायित्व अनभय और परजन्या के प्रति भी है। आप इस बात को भी समझिए, बाल-बच्चे अभी बीच मझधार में हैं।'

'समझ रहा हूँ।'

'कहाँ समझ रहे हैं आप?' पत्नी का स्वर कठोर था, 'चौबीसों घंटे आपके जहन में कॉलेज चलता है, आप खुद का कुछ खयाल रख पाएँ। इतना भी समय नहीं।'

मैं झेंप गया। मुझे लगा सचमुच मैं उत्तरदायित्व के चक्रव्यूह में फँसा हूँ, जिससे निकलना मुश्किल है, यह समय ही इतना कठिन है कि आदमी इसके दबाव से चाहकर भी नहीं निकल सकता। आखिर पत्नी और बच्चों को तो छोड़ा नहीं जा सकता। स्वास्थ्य की चिंता भी वाजिब है। मुझे कुछ समय तो किसी तरह निकालना होगा। न कभी पैरेंट्स मीटिंग में बच्चों के स्कूल गया और न किसी को कभी घुमाने डिज्नीलैंड ले गया। न दवा लाई और न कभी सब्जी। खालिस प्रिंसिपल बना बैठा हूँ। सब भार लक्ष्मी पर। फोन बजा। बड़ा बाबू का अर्जेंट कॉल मैं उसकी ओर विस्मय से ताकते हुए कॉलेज के लिए निकल गया।

कॉलेज पहुँचा, तो चैंबर में पुलिस के साथ एक औरत और कुछ आदमी को देख कर चौंक गया। अब क्या बात है? फिर पुलिस क्यों आई है? मैंने इशारे में बड़े बाबू से पूछा। वे पुलिस कप्तान की ओर मुखातिब हुए-'जी, प्रिंसिपल साहब।'

मैंने चेयर पर बैठते हुए कहा, 'कहिए क्या बात है?'

'एक लड़की भाग गई है। सर।' पुलिस कप्तान ने कहा।

'कहाँ से?' मैं मन ही मन खिझलाया।

'घर से।'

'तो इसमें कॉलेज क्या करेगा?' मैं हौरान हुआ।

'अब लड़की बालिग है कि नाबालिग यह तो आपके रिकार्ड से देखना होगा।' पुलिस कप्तान ने कहा, 'सत्यापन के बाद ही कोई

एक्ट लगाया जा सकता है।'

'जी' मैंने बड़े बाबू की ओर देखा। वे पेपर्स लेकर ऑफिस की ओर गए, तो नागो चाय लेकर आ गया। हम चाय पीने लगे। इस दरम्यान जो बातें हुईं, उसमें आज के दौर पर तंज था कि अब बच्चे माता-पिता की भावनाओं को भूल कर निर्णय ले रहे हैं, पर पहले ऐसा नहीं था, पर इस सवाल पर कोई एक राय नहीं हो सकती थी। कानून ने रास्ते खोल रखे हैं। भले माता-पिता जो कहें, जो सोचें।

'लड़की बालिग है सर, थर्ड पार्ट की है।' बड़ा बाबू ने रिकार्ड सामने टेबुल पर रख दिया। पुलिस कप्तान ने संजीदगी से कहा, 'आप गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखाइए अब लड़की के बयान पर सू निर्भर करेगा।'

'नहीं सर उसे अगुवा किया गया है।' लड़की के पिता ने कहा, 'मैं जिन लोगों पर शक कर रहा हूँ, उन पर कार्रवाई की जाए।'

'ठीक है।' पुलिस कप्तान ने उठते हुए कहा, 'चलिए थाना। वहीं पर जो होगा, सो होगा।' फिर मेरी ओर मुस्कुराकर कहा, 'लड़की आपके कॉलेज की है। हो सकता है अपने यार के साथ किसी काम से कॉलेज आए। हमें इमीडियेट सूचना मिलनी चाहिए।'

'जी सर' मैंने अभिवादन के साथ कहा, 'बड़े बाबू, काउण्टर को एलर्ट कर दीजिए।'

'जी सर!' बड़े बाबू ने कहा। उन लोगों के जाने के बाद मैंने राहत की साँस ली। लगा आफत टली। पर सावन के मेघ और लड़कियों का क्या भरोसा। कब बरसे और कब भागे। कहावत है कोर्ट-कचहरी वाले और पुलिस के दर्शन हो जाएँ, पूरा दिन खराब हो जाता है, सो वही हुआ। पूरा दिन कच-कच होता रहा।

रात में पत्नी से कहा, 'कॉलेज में फिर पुलिस आई थी।'

'काहे?' वह चौंकी।

'कोई लड़की भाग गई है।' मैंने अटकते हुए कहा।

'तो आप क्या कीजिएगा?' वह अकचकाई।

'यही तो रोना है।' मैंने कहा, 'प्रिंसिपल हूँ, तो हर सवाल का मतलब है मुझसे कुछ न कुछ कम्प्लायन्स निकल ही आता है।'

'इसीलिए तो कहती हूँ। प्रिंसिपल से ऊपर का पोस्ट निकला है भर दीजिए।' पत्नी ने नया दाँव फेंका।

'वह तो मैं पहले इनकार कर चुका हूँ, मुझे नहीं भरना है, तो नहीं भरना है जितना बड़ा पद, उतना टेंशन अब वह समय नहीं रहा। किसी पद की कोई गरिमा भी नहीं रही। एक चक्रव्यूह से निकलकर उत्तरदायित्व के दूसरे चक्रव्यूह में नहीं फँसना चाहता।'

'आपके साथी लोग तो भर रहे हैं।'

'उन्हें भरने दो।'

'आपको क्या दिक्कत है?'

'है, तब न नकार रहा हूँ।' मैंने अमूर्तत पीड़ा के साथ पत्नी की ओर ताका, तो लगा एक थकी हुई उम्मीद वहाँ दम तोड़ चुकी है। वह बड़बड़ाई,'मेरी बहन इण्डोनेशिया गई है घूमने। आप हम लोगों को कुएँ का मेढक बनाकर रखिए। अपने भी बीमार रहिए। हम लोगों को भी डिप्रैशन में बीमार बना दीजिए। आपके भीतर कोई ज़ज़्बा नहीं रहा। बस त्रिशंकु की तरह लटके हैं। न ता ऊपर जा रहे हैं और न नीचे। बस कॉलेज से आना और कॉलेज जाना आपका काम रह गया है। हम लोग भी पिस रहे।'

'बकवास मत करो।' मैं क्रुद्ध हुआ, 'मैं सरकारी सेवा में हूँ। घूमने-फिरने का टाइम नहीं है। मेरे पास कहो तो रिजाइन कर दूँ।'

'यही कहिएगा आप।' पत्नी बिफरी,' मैं जानती थी और लोग सरकारी नौकरी नहीं कर रहे। आप हैं कि कॉलेज वहीं रहिए और सोइए। बहुत बड़ा तमगा मिलेगा।' मेरा पारा डाउन हुआ। मैंने कुछ सोच कर कहा, 'तुम सचमुच मानती हो कि मुझे कोई चिंता नहीं? कोई तकलीफ नहीं होती? मैं चाहता हूँ कि कुछ समय बचाकर तुम लोगों के लिए कुछ करूँ यह नौकरी भी तो तुम लोगों के चलते मेरे वजूद का हिस्सा हो गया है। पैसे अगर नहीं हों, तो यह दुनिया बेमानी है फिर क्या इंडिया और क्या इण्डोनेशिया अगर मालिक ने रक्खा, तो तुम लोगों की सब साध पूरी करूँगा बस रिटायर होने दो बच्चे भी सेट हो जाएँ फिर घूमना सारी दुनिया घूम लेंगे। रवि भाई की तरह गए न गाँव में मास्टरी करते-करते बेटे के पास लंदन।'

'मैं बेटे के भरोसे पर कहीं नहीं जाऊँगी।' पत्नी कटाक्ष बोलकर चुप हो गई। मैं सामने लगे आईने में अपना मुँह देखने लगा। कनपटी के बाल सफेद। मुँह पिचका हुआ। बेरहम वक्त से कोई क्या गिला करे मुझे लगा मैं असमय बूढ़ा हो गया हूँ। सचमुच मुझे इस नौकरी से जब मोहल्लत मिलेगी, तब क्या इतना वक्त रह जाएगा कि शेष बची कोई हसरत पूरी हो सके!

सिपल पूर्णिया महिला महाविद्यालय,
पूर्णिया-854301 (बिहार)
मो.-9431867283

समय चक्र

– राजा सिंह

जन्म – 23 सितंबर
जन्मस्थान – कानपुर (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.एस.सी.।
रचनाएँ – चार पुस्तकें प्रकाशित।

सड़कों की भीड़-भाड़ उसे अजीब सी तसल्ली देती है। किसी का ध्यान उसकी तरफ नहीं है। कभी कोई उसकी तरफ उत्सुक निगाहों से देखने लगता कि यह सभ्य सुसंस्कृत महिला इतनी सुबह कहाँ जा रही है? शायद सुबह की सैर में? किन्तु उसे अपना गंतव्य पता नहीं था। उसमें आक्रोश नहीं था, विद्रोह भी नहीं किन्तु अपनी परिस्थितियों के प्रति स्वीकृति भी नहीं थी।

उसे अकेलापन बुरी तरह डसने लगा, जब उसके पति की मृत्यु हुई थी। पहले से ही उसे अहसास था कि वह अपने आप में अकेली है, किन्तु उसके पति का साथ दुनिया के लिए एक धोखे का सृजन करता था कि वे साथ हैं। बेटा पहले ही नौकरी के सिलसिले में शहर में था और अब पति की मौत ने उसे नितांत अकेली बना दिया था। हालाँकि उसका पति सक्रिय रूप में कभी उसके साथ नहीं था, किन्तु जब से बेटा बाहर पढ़ने और रहने चला गया था, तब से उसका साथ भी बहुमूल्य था। उसकी केवल उपस्थित ही काफी थी बाहर के लोलुप लोगों से उसके सुरक्षित जीवनयापन हेतु।

उसके पति ने उसी समय अपनी प्राइवेट नौकरी छोड़ दी थी, जैसे ही उसकी सरकारी नौकरी लगी थी। वह सिर्फ अपने बेटे के भविष्य हेतु सदैव चिंतित रहा करती। वह जी तोड़ मेहनत करती और बेटे के लिए माता-पिता दोनों दायित्वों का निर्वाह बखूबी करती आ रही थी। वह चाहती थी कि उसका बेटा डॉक्टर बने जिससे वह सगर्व अपने को सफल घोषित कर सके किन्तु ऐसा भी न हो सका।

जब वह उससे मिली थी तो उसके होने वाले पति ने उसे अपने को डॉक्टर बताया था। क्योंकि वह डॉक्टर की वेशभूषा में था, वह उसके रूप-रंग और अभिजात्य चरित्र से प्रभावित थी। जबकि वह कम्पाउन्डर भी नहीं था। वह मेडिकलस्टोर में सेल्समैन था। घर परिवार के भरण-पोषण के लिए और अपने मध्य वर्गीय मूल को ढकने के लिए अस्पताल की ड्यूटी के बाद भी वह गाँव-कस्बे की महिलाओं की स्वास्थसंबंधित समस्याओं का निराकरण करती और अतिरिक्त आमदनी का सृजन करती। घर में निठल्ला पति रहता था, बेटे के जन्म के बाद आवश्यक था देखभाल के लिए कोई रहे। उसकी सारी आमदनी का एकमात्र मालिक वही था। वह सुबह जल्दी उठती और सबके लिए नाश्ता, खाना बनाती और प्रयत्न करती कि समय से अस्पताल पहुँचे, क्योंकि अस्पताल सुबह आठ बजे प्रारम्भ हो जाता था। कभी-कभी देर हो जाती तो डॉक्टर और इंचार्ज की डाँट-फटकार सुनती। परंतु वह सोचती कुछ दिनों की बात है, बेटा अभी छोटा है, फिर सब ठीक हो जाएगा। उसके जाने के बाद पति खा-पीकर नए-पुराने कपड़े पहनकर घूमता और इधर उधर बैठता। उसे वहाँ के निठल्ले-बेकार लोगों का साथ मिल गया और वह उनसे डींग हाँकता। वह उनका सरताज था क्योंकि उनकी खाने-पीने की जरूरतें वही तो पूरी करता था। उसकी हकीकत सब जानते परंतु उसके मुँह पर पलट कर कुछ नहीं कहते। सभी को अस्पताल और उनके कर्मचारियों की जरूरत रहती, विशेष रूप से उसकी पत्नी की। कस्बे के लोगों ने उसका नामकरण डॉक्टर साहिबा कर रखा था।

एक दिन उसने कहा था कि, 'तुम कुछ करते क्यों नहीं?' तब उसने कहा था, 'करता तो हूँ, तुम्हारी गुलामी!' उसे बेहद बुरा लगा था किन्तु वह चुप रही और बोली, 'अरे, भले मानुष कम से कम यहाँ कोई छोटी-मोटी दुकान ही डाल लो। समय भी कटेगा और कुछ पैसा भी आ जाएगा।' उसने मेडिकलस्टोर खोलने की इच्छा जाहिर की। और कोई काम उसके बस में नहीं था। यही कार्य का अनुभव है, यह वह कर पाएगा। उसने एक तरफा फैसला सुना दिया। स्त्री के पास कोई संचित पूँजी

नहीं थी। उसके पास उसका स्त्री धन यानी कि गहने थे, जिन्हें उसने गिरवी रख कर उसे उस कस्बे में मेडिकलस्टोर खुलवाया और अपने सरकारी अस्पताल के डॉक्टरों से अनुरोध किया उसको चलाने के लिए।

किन्तु ऐसा कुछ भी न हो सका। अब पति के पास पैसों की कमी न रही थी। डॉक्टर साहिबा की अनुपस्थिति में वह अपने यार-दोस्तों के साथ मीट-मुर्गा और शराब का सेवन करता और मस्त रहता। उसके वहाँ के यार दोस्त उसकी जय-जयकार करते और उसे डॉक्टर सम्बोधन से लपेट दिया करते। अब वह प्रसन्नता के उच्चतम शिखर पर था। उसके टोकने से वह नाराज हो जाता और उसे छोड़कर अपने शहर जाने की धमकी देता। वह अकेले रह जाने के डर से एकदम चुप रह जाती और अपनी बेबसी का तमाशा देखती। क्योंकि उसका बेटा अभी बहुत छोटा था, वह अकेला नहीं रह सकता था। जब वह अस्पताल ड्यूटी पर जाएगी तो उसे कौन देखेगा? शीघ्र ही मेडिकलस्टोर बंद हो गया क्योंकि उसकी जमा पूँजी खर्च हो गई और दुकान का किराया कई महीनों का चढ़ गया। उसने अपने गहने बेचकर किराया चुकाया परंतु उसकी ठलुवाँगीरी समाप्त न हुई।

उसे अपने बेटे से अत्यधिक प्यार और उसकी परवाह थी। उसने अपने अस्पताल के डॉक्टर को देखा था। जवान, गतिशील विद्वान और खूबसूरत। बच्चे से भविष्य की उम्मीदें टिकी थीं। किसी प्रकार के अनिष्ट की आशंका से वह काँप उठती। वह अपने बेटे के लिए बेहतरीन शिक्षा और ट्यूशन का प्रबंध करती। वह अपने बेटे में ही अपना भविष्य देखती। वह रात में लेटकर बेटे को बाँहों में भर लेती, 'मेरा राजा बेटा मेरे सपनों को पूरा करेगा।' और नींद के आगोश में खो जाती जब तक कि वह किसी दु:स्वप्न से डरकर जाग न जाती। उसे दु:स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि कोई उसे उसके बेटे से अलग कर सकता है। उसे पूर्ण विश्वास था कि उसका बेटा मृत्यु पर्यंत उसके साथ रहेगा और उसका ख्याल रखेगा जैसा कि वह उसका रखती है, वह आधुनिक श्रवणकुमार होगा।

मगर ऐसा न हो सका। उसके लाख प्रयत्न के बाद भी उसका बेटा बड़े होने पर औसत ही रहा। परंतु उसमें पढ़ने के गुण थे, इस कारण वह शहर के एक सरकारी बैंक में क्लर्क बन गया। वह संतुष्ट हो गई, कम से कम उसमें बेकारी का दंश तो नहीं लगा। माँ के हृदय में करुणा, वात्सल्य और उदारता का सागर सदैव उसके लिए हिलोरें लेता रहता। उसने अपने फंड से अग्रिम भुगतान लिया और उन पैसों से उसके लिए शहर में एक मकान खरीदा और उसे उसमें रहने को कहा।

एक दिन अचानक शहर अपने बेटे से मिलने उसके घर आ पहुँची। तब उसके पति जीवित नहीं थे। वह बेटे के मुँह से उसका चिर परिचित वाक्य सुनने को बेचैन थी। 'मेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी माँ है।'

पति की अनुपस्थिति में उसका सुंदर स्त्री रूप उसका दुश्मन बन गया। अकेलापन और अराजक तत्व उसे डराने लगे। कोई अनहोनी किसी भी क्षण घटित हो सकती थी। वह सेवा निवृत्ति चाहती थी। जिससे कि वह अपने प्यारे बेटे के साथ रह सके। इसी सिलसिले में वह बेटे से पूछने आई थी।

जब वह बेटे के घर पहुँची तो घर में काम करने वाली नौकरानी ने दरवाजा खोला और उसे देख कर विस्मित रह गई।

'आप कौन है?'

'मैं आपके मालिक की माँ हूँ। वह कहाँ है?'

'आप, कृपया यहाँ बैठें। वह ऊपर हैं। मैं अभी बुलाकर लाती हूँ।'

'ठहरो! मैं खुद जाकर मिलती हूँ।'

'नहीं आप कृपया ऊपर न जाएँ। ऊपर मालकिन भी है।' उससे घबराहट में बात निकली।

'क्या? मालकिन? यह कब आ गई?' उसे बेहद आश्चर्य हुआ।

'अरे, उनकी पत्नी! आप वास्तव में उनकी माँ ही हैं?' उसने दोनों हाथ फैलाकर जीने के रास्ते को रोका, 'मेरी नौकरी चली जाएगी।' उसकी आँखों में डर समाया था।

'ठीक है, फिर मैं यहाँ बैठती हूँ। तुम जाओ और दोनों को बुलाकर लाओ।' वह गमगीन थी। विस्मित थी। यह कैसे हुआ? वह सोफे में बैठी, टकटकी लगाकर जीने की तरफ देखने लगी जहाँ से दोनों को उतरना था।

लगभग आधा घंटे बाद बेटा और लड़की उठकर नीचे आए। बेटे के चेहरे पर अप्रसन्नता टपक रही थी। लड़की बेफिक्र थी।

'तुम बिना बताएँ, क्यों आ गई माँ?' बेटे ने झुँझलाहट में कहा।

बेटा कई हफ्ते से घर नहीं आया था। माँ को लगा था कि उसके

इस तरह पहुँचने से बेटे को अत्यधिक खुशी होगी। लेकिन उसे उसका आना ही नागवार गुजरा था। फिर उसके दिल में किसी तरह के प्रेम प्रदर्शन का स्थान ही कहाँ बचा था? जैसे कि वह अकसर किया करता था। उससे वह वाक्य कितना अच्छा लगता था। जब वह कहता–'मेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी माँ है।' वह गर्व से फूली रहती कि उसका बेटा उसे बहुत चाहता और मानता है।

'तुमने बिना बताएँ, मेरे बगैर विवाह कर लिया? माँ ने पूछा।' कब किया यह सब?'

'अरे, माँ यह विवाह नहीं है। हम सिर्फ साथ रहते हैं।'

'बिना विवाह के कैसे साथ रहना हुआ? यह गलत है।' माँ गुस्सायी।

'आजकल यही चलन में है। विवाह पूर्व एक दूसरे को जानना जरूरी है, जिससे कि हम निर्णय कर सके कि इसके साथ विवाह से जीवन निर्बाध पूर्वक बीतेगा कि नहीं? यह एक प्रयोग है।' बेटे ने स्पष्ट किया और लड़की मुस्कुराई।

इसी बीच लड़की किचन में चली गई उसे माँ–बेटे की बातचीत में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

'किन्तु यह गलत है। शीघ्र ही इससे शादी करो और मुझे जिम्मेदारी से मुक्त करो।'

बेटे ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। वह सिर्फ उसके चेहरे में उतर आई प्रतिक्रिया को तौलता रहा।

'मेरे आने से तुम खुश नहीं लग रहे हो! व्यवधान आ गया है।' माँ को अब तक विश्वास नहीं आ रहा था कि उसका बेटा ऐसा है। 'तुम्हारे में बदलाव आ गया है।'

'बदलाव, कैसा बदलाव? बेटे ने पूछा।

माँ चुप रही। किन्तु वह बेहद दुखी और उदास थी। वह बिना एक पल रुके चलने को उद्धृत थी कि लड़की आ गई। उसने पैर पकड़कर उसे जाने से रोका। लड़की ने उसे बताया कि वह दोनों आपस में प्रेम करते हैं और आपके आशीर्वाद और सहमति से शीघ्र ही विवाह करेंगे। किन्तु बेटा को यह नहीं पसंद आया। न जाने क्यों यह अहसास घर कर गया कि बेटा उसके यहाँ आने से खुश नहीं है। उसे बेतरतीब, बेतरह उसके शुरू के दिनों के वाक्य सालने लगे। उसमें सबसे प्रमुख था। मेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी माँ है। परंतु वह रुक न सकी और तुरंत चल दी। बेटे ने रोका भी नहीं।

वह उदास निराश बैरंग वापस आ गई। माँ उलटे पाँव लौट आई थी बिना एक कप चाय पिए ही। उसे लगा कि उसकी उपस्थिति उन दोनों के लिए व्यवधान है और उसके लिए अरुचिकर। अपनी जगह लौट आने के बाद भी वह सोच कर सिसक उठती कि बेटा क्या से क्या हो गया है? अपने बेटे के पूर्वसमय की एक–एक घटना दृश्य और प्यार उसके जेहन में तैरते रहते जो उसे कभी बे इंतहा खुशी देते थे आज बेदम पड़े, उसे दुख दे रहे हैं। ऐसी तो उसने कल्पना नहीं की थी। वह बेटे से अपने समय पूर्व लेने वाले अवकाश का जिक्र भी नहीं कर पाई। उसने यह विचार छोड़ने का निश्चय किया।

कुछ ही दिन बीते थे कि उसे लड़की का तुरंत आने का संदेश मिला। उन दोनों के बीच गंभीर गलतफहमियाँ उत्पन्न हो गयी थीं और उनके बीच करीब–करीब रिश्ता टूट ही चुका था, संबंध सिर्फ एक महीन धागे से अटके पड़े थे। जिन्हें उसे सुलझाना था।

बेटे के घर पहुँचने पर पता चला कि लड़की पेट से है। उसने दोनों की शादी कर लेने का सुझाव दिया। इसके लिए दोनों राजी नहीं थे। बेटा अनिच्छुक था और लड़की क्रोधित थी कि उसके बेटे ने उसे धोखा दिया है कि शादी कर लेने के पहले वह प्रेग्नेंट नहीं होगी। ऐसे धोखेबाज से शादी नहीं करनी।

वह बहुत समय तक रोती रही। समझाती रही। ऊँचनीच बताती रही। देश समाज की दुहाई देती रही किन्तु वे दोनों नहीं पसीजे। वे दोनों अपने अड़े पर थे। बल्कि लड़की ने पुलिस में जाने की धमकी दी। तब उसने लड़की को अपने अस्पताल ले जाकर उसका भ्रूण साफ करवा दिया। इस काम में उसके रुपये खर्च हो गए। किन्तु बेटे की समस्या और संबंधों का निराकरण किया। जिस तरह उनका यह रिश्ता समाप्त हुआ था उसका बेटा ही जिम्मेदार था परंतु उसने उसे नहीं कोसा बल्कि लड़की को ही बदचलन कहा, जो विवाह पूर्व अपना कौमार्य सुरक्षित न रख सकी। उसके बेटे ने बहुत वर्षों बाद कहा–मेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी माँ है। यह सुनकर उसे कोई प्रसन्नता नहीं हुई बल्कि विरक्ति और क्षोभ ही हुआ।

आखिर में उसने बेटे की सहमति से उसका विवाह एक धनी और सुंदर लड़की से कर दिया। उसने सोचा देर आए दुरुस्त आए। दोनों इस रिश्ते से प्रसन्न थे और उन्होंने उसे धन्यवाद

दिया और बेटे के मुँह से अनायास निकला, मेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी माँ है। उसने अनगिनत बार अपने पड़ोसियों और स्टाफ से कहा कि उसे बहू के रूप में बेटी मिली है, जो उसे बेटे से ज्यादा चाहती और ध्यान रखती है। वह भी बहू को बेटे से ज्यादा प्यार, ख्याल और लाड़-दुलार देती और सोचती, मूलधन से ज्यादा प्यारा ब्याज होता है।

सब कुछ ठीक लग रहा था। वह जल्दी से जल्दी बेटे बहू के साथ रहना चाहती थी। उसने फिर बेटे से कहा कि वह समय पूर्व अवकाश लेना चाहती है। परंतु बेटे ने मना कर दिया कि कुछ वर्षों के बाद तो आ ही जाओगी, जल्दी क्या है? उसे पता नहीं था कि जिंदगी उसे किस ओर ले जाने वाली है।

सेवानिवृत्ति के बाद जब वह बेटे के पास आई तो कुछ समय के उपरांत सब कुछ बदल चुका था या पहले वाला माहौल बनावटी था। सबसे ज्यादा उसे बहू बदली मिली। उसने बेटे से पूछा भी, 'आखिर क्या बात है?' उसने कुछ नहीं बताया सिर्फ कहा खुद उसी से पूछ लो!' उसने परवाह नहीं की। उसने सोचा वह इस घर की मालकिन है, उसे क्या? तब उसने दु:स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि बेटा भी बदल जाएगा और एक दिन ऐसा भी आएगा कि उसके और बेटे के बीच बाकी रह गया एकतरफा प्रेम भी शनैः - शनैः समाप्त हो जाएगा। आखिर क्या बात है, उसका ख्याल रखने वाला, दिलों जान से चाहने वाला, हमदम उत्तयोक्ति दोहराने वाला-'मेरी माँ दुनिया की सबसे अच्छी माँ है।' आज उससे बात करने से भी कतराने लगा है। कितनी जल्दी वह प्यारा सा लड़का बिल्कुल अजनबी में बदल गया है। क्या कुछ दुष्ट लोग उससे जुड़ गए हैं या बहू ही दुष्ट है? वह ऐसा लगती तो नहीं है? शायद वह उसकी बेवजह निन्दा करती होगी तभी बेटा भी उससे विमुख हो गया है।

वह हर कार्य में सहयोग करने को तैयार रहती, किन्तु उसके सहयोग और अनुभव की किसी को आवश्यकता नहीं थी। उसकी इतनी लंबी स्वास्थकर्मी के रूप में दी गई सेवाओं की अनदेखी की गई और दोनों बच्चों के जन्म में उसका कोई सहयोग नहीं लिया गया। उसकी यह सलाह भी नहीं मानी गई कि बच्चों की नॉर्मलडेलीवरी के लिए सरकारी अस्पताल ही उचित है किन्तु दोनों ही बार महँगे नर्सिंग होम में दाखिल किया गया, जहाँ दोनों बार पेट फाड़कर बच्चों के जन्म कराएं गए।

उससे मिलने आने वाले नगण्य हो गए थे। बहु भाई बंधुओं और पड़ोसियों से निराधार दुष्टताभरी उसकी शिकायत करती। जो कोई भी उसका पक्ष लेने की कोशिश करता वह उससे लड़ती। धीरे-धीरे अपने आने से कतराने लगे थे। उसे डर लगा रहता कि माँ को कोई बेटे से अलग न कर दें, घर का सारा खर्च उसकी पेंशन से ही चलता था। जैसा कि माँ ने सेवानिवृत्ति से आने के बाद कहा था। बेटे ने उसकी पेंशन अपने बैंक में करवा ली थी, उसे पता ही नहीं था कि उसे कितनी पेंशन मिलती है। बेटे ने उसके धन पर अधिकार कर लिया था और बहू ने किचन, सामाजिकता और संबंधों पर।

उसे अजीब सा भ्रम रहता कि वह सबके साथ है। सभी उसे अपनी दुनिया में साथ लेकर चलते हैं। कभी उसके भीतर एक तीव्र आकांक्षा होती कि एक बार अपने अकेलेपन के बावजूद उनके भीतर झाँक कर देख सकूँ-वह पहले जैसा ही चाहता और मानता है? असफल रहती।

बीतते समय के साथ वह नितांत अकेली हो गई। उसके बाल सफेद हो गए। चिंता, फिक्र और अनिद्रा के कारण, वह बेहद कमजोर और बीमार हो गई। सब जान-पहचान वाले और अड़ोसी-पड़ोसी उसे दया की दृष्टि से देखने लगे।

एक दिन उसने अपने बाल डाई करने की सोची जिससे कि वह कुछ ठीक लग सके और बेटे और बहू पर कोई दोष न आ सके कि वे उसकी देखभाल नहीं करते हैं। किन्तु बहू ने बेटे से शिकायत कर दी। वे दोनों उस पर बिगड़ उठे, 'क्या जरूरत है? विधवा और बुजुर्ग दोनों हो, अब किसे दिखाना है? अचानक बेटे के मुँह से निकला, यह शब्द उनके बीच जहर परोस गया। हालाँकि यह कह कर वह पछताया, किन्तु बहू ने पकड़ लिया। माँ-बेटे के शब्दों को सुनकर स्तंभित-सी खड़ी रह गई।

'अपने समय में कई चक्कर चलाएँ होंगे? लोगों को लुभाती फिरती होंगी? पापा जी कुछ करते कहाँ थे?' बहू ने बहुत ही धीमे किन्तु स्पष्ट शब्दों में कहा।

'क्या कह रही हो?' बेटे ने प्रतिवाद किया। किन्तु बहु के आक्षेप पर उसकी प्रतिक्रिया बेहद मामूली थी।

'तुम अब भी छोटे हो।' उसने हँसकर कहा।

बेटा जानता था कि माँ निर्दोष है, रईस जादी का दबा-दबा सा आरोप अर्थहीन और हास्यास्पद है। उस पर बहस करना कोई मायने नहीं रखता था, यह गलत है उसने अत्यंत अनिश्चित और

कमजोर स्वर में प्रतिवाद किया।

माँ अवाक रह गई। उसे लगा कि वह भी क्या उस लड़की की ही तरह है? उसने वह प्रश्न नहीं उठाया। क्योंकि इससे फिर वह अपने बेटे को ही उघाड़ती जो वह कतई नहीं चाहती थी। वह जानती थी कि बेटा सही नहीं रहा था, किन्तु अब तक उसकी हर हरकत के पीछे कारण ढूँढ़ती और उसे सही मानती रही है, और सदैव उसका बचाव किया है। उसे वह लोग बुरे लगते थे जो किसी रूप में बेटे की आलोचना करते।

माँ को जबरदस्त सदमा लगा। दुख, क्रोध, गुस्से और प्रतिकार में वह पूरी ताकत से तर्जनी उठाकर उस पर इंगित कर चीखी, 'तुम!' किन्तु बेहोश हो गई। होश में आने पर वह चुपचाप अपने निराशा, हताशा और उदासी के खोल में चली गई। परंतु बहू के आरोप ने उसके अस्तित्व और अस्मिता पर हमला किया और बेटे ने उसे पीटने की जगह कोई ताड़ना, प्रताड़ना भी नहीं की, जैसे कि उसे इससे कोई मतलब नहीं है। वह हतप्रभ रह गई। उसका वह प्रलाप कहीं खो गया था, 'दुनिया की सबसे अच्छी माँ?'

उसे भोजन ऐसे दिया जाता जैसे कोई अहसान किया जाता। सादा, फीका, बैरंग और बे स्वाद, कहा जाता कि यही आपके लिए लाभदायक है। यद्यपि उसे कोई बीमारी नहीं थी। उसे यह खाना अपमानजनक लगता इसलिए वह अत्यंत अल्प मात्रा में ग्रहण करती। वह खाती इसलिए कि वह जिंदा रह सके, हालाँकि उसे जिंदा रहने में कोई दिलचस्पी नहीं थी किन्तु माँगने से मौत भी कहाँ मिलती?

एक दिन वह बाथरूम की साफ-सफाई करते हुए फिसल कर गिर पड़ी और बेहोश हो गई, परंतु उसे देखने कोई नहीं आया। बेटा बैंक गया हुआ था और बहू और उसके बच्चों ने उसका बहिष्कार कर रखा था। उसे ऊपर का कमरा दिया गया था। वह वहाँ अपने भगवान से प्रार्थना करती कि वह उसे अपने पास बुला ले। किन्तु वह भी नहीं सुनता। शाम को जब बेटा आया तो उसे अस्पताल ले गया।

उसे अपने मायके की बहुत याद आती जहाँ शादी से पहले उसकी मनमर्जी चलती थी। वह अपने छोटे भाई-बहनों के लिए तानाशाह थी तो बड़ों के लिए प्यारी-दुलारी, समझदार, कामकाजी लड़की। अब उनसे मिलना कभी-कभार ही होता था। जब वे उससे मिलने के लिए आते। वह जा नहीं सकती थी। इतनी दूर जाने के लिए वह अपने को अशक्त पाती और उनमें इतना साहस नहीं था कि बेटे से बिगाड़ करके जा सके। एक बार उसकी उत्कंठा ने बहुत जोर मारा तो वह निकल पड़ी मिलने, किन्तु वह मायके का रास्ता न याद रख सकी, लौट पड़ी। लौटने पर वह बेटे का घर भूल गई। बैंक से लौटने पर बेटा उसे ढूँढ़ने निकला तो घर के आस-पास मिली। बेटे ने पकड़ कर उसे ऊपर कमरे में ठूँस दिया।

उसे यह बात बहुत सालती थी कि बेटा अब उससे कभी भी प्रेम से नहीं बोलता था। सिर्फ डाँट-फटकार गुस्सा, चीखना, चिल्लाना शायद उसकी आदत बन गई थी। उससे बेहतर तो वह घर की नौकरानी से पेश आता था। बहू ने पोते और पोती को उससे बातचीत करने से मना कर दिया था। अब उसकी हालत एक अलग थलक पड़े टापू जैसी हो गई थी जो निर्जन था। उससे मिलने सिर्फ बेटा आता कभी-कभी या उसे खाना देने के लिए। उसे लगता कि वह जेल के एक बैरक में बंद है। वे जब उसके कमरे में आते तो वह अँधेरे में आँखें मूँदकर लेट जाती-थकी और निढाल। जब कभी वह नीचे जाती तो ऐसा लगता कि अनजान लोगों से मुखातिब है, जिनकी भाषा वह नहीं जानती। उसे लगता कि बेटे के बदले रवैये से वह शीघ्र मर जाएगी।

वह अकेले में सिसक-सिसक कर रोती परंतु उसके रोने से आवाज नहीं निकलती थी। उसे पति के इतनी जल्दी मृत्य पर क्रोध आता, चाहे कोई कितना निराश, हताश, बेजान हो जाए पेट नहीं मरता। पेट मरने वालों के साथ नहीं जाता। पेट आदमी के जीवित होने का प्रमाण है। परंतु क्योंकि अब उसका अभाव उसे खलने लगा था। उसे लगता कि अगर वह होता तो वह बेटे के बगैर रह सकती थी। उसे यह बात बेहद दुखदायी लगती कि जब उसकी नितांत आवश्यकता है तब वह नहीं है। उसे लगा कि पति का साथ बेहद जरूरी है, विशेष तौर पर अंतिम दिनों में। हालाँकि उसने उसे कोई आवश्यक सुख नहीं दिया था सिवाय बेटे के! किन्तु बेटे का सुख भी स्थायी कहाँ होता है? उसे दु:स्वप्न में भी आशंका नहीं थी कि वह बेटे के प्यार से भी वंचित रह जाएगी, क्योंकि आखिर में वह दुनिया की सबसे अच्छी माँ जो थी।

मगर वह कहीं नहीं जाने की सोचती। घर के एक कोने खुली या बंद रोशनी के अंदर-उन सब की आवाजें सुनते हुए, घुट-

घुट कर जीते हुए, एक बंद गठरी सी। वह थी सिर्फ एक असीम उत्पीड़ित आकांक्षा जो लौ की तरह वह निष्कंप जलती रहती। लेकिन वे सब जाते उसे छोड़कर। वे कोई बहाना भी नहीं बनाते, सीधे उसे छोड़कर जैसे उसका कोई अस्तित्व ही न हो? उसे लगता कि वह बहुत पेचीदा रहस्यमय तरीके से उस पर आश्रित है। वह इतनी हताश कातर, उदास थी कि उसे एक पागल विचार आता कि वह मर जाए।

वह घर कही नहीं था। एक दुख था जो लगातार उसे हॉन्ट करता रहता था। कभी-कभी ऐसा होता है कि सब कुछ होते हुए अपना कुछ नहीं होता। दुख मरने की सीमा तक पहुँच जाता है किन्तु मरता नहीं है। लेकिन रहता है, मरते हुए आदमी की तरह। उसका सारा दिन उदासीनता में बीतता। उसे यह बेहद ताज्जुब लगता कि उसका पोता और पोती भी उसकी कोई पैरवी नहीं करते और उससे अनजान रहते और अनबोला रखते। वे सचमुच मजे में थे।

उसे चक्रवृद्धि ब्याज की उम्मीद थी किन्तु उसके मूलधन और ब्याज सभी जब्त हो गए थे। जब मूलधन नहीं बचा तो ब्याज का क्या प्रश्न? यह समय उसके लिए बहुत त्रासद और कष्टमय था। वह अपने ही घर में पराश्रित होकर रह रही थी। उस जैसी आत्माभिमानी स्त्री के लिए सहज नहीं था। उन्हें तिरस्कृत माँ की परवाह नहीं थी। फिर भी उसे उनके प्रति कोई गिला या रोष नहीं था।

एक बार जब वे नहीं थे तब उनकी पड़ोसन आई थी। उसने उसे बताया कि उसकी इस स्थिति का जिम्मेदार और कोई नहीं बल्कि उसका अपना बेटा है, क्योंकि वह चाहता है कि उसकी पत्नी को उसके पूर्व संबंधों के विषय में भनक न लगे इसलिए वह माँ और बहू में किसी तरह के मेल-मिलाप के विरुद्ध है। संदेह और अनिश्चय से उसके स्वर में एक तनाव खिंच आया। वह कुछ देर तक उसे घूरती रही फिर धीमे से हँसी। उस हँसी में एक विवश निरीहता छिपी थी। उसने भरपूर साँस ली-एक हल्का सा पछतावा होता है कि वह क्यों यहाँ आई थी।

तब उसने सोचा अब यहाँ नहीं रहूँगी। फिर एक दिन ऐसा आया कि वह निकली। जब जाने से पहले उसने एक बार, आखिरी बार उस कमरे को देखा जहाँ वे सोए हुए थे। वे बेफिक्र, बेसुध दीवार की तरफ मुँह फेर कर लेटे थे। वह सीढ़ियाँ उतरती और धीरे से बाहर चली आई।

एम-1285, सेक्टर-आई,
एल. डी.ए. कालोनी।
कानपुर रोड, लखनऊ-226012
मो.-9415200724

वीर नारी सम्मान में सम्मानित वीरमाता निर्मला शर्मा

दो दूना पाँच

– सुशांत सुप्रिय

जन्म – 8 मार्च 1968।

रचनाएँ – उन्नीस पुस्तकें प्रकाशित।

विशेष – अनुवाद पर विशेष कार्य।

कैसा समय है यह
जब भेड़ियों ने हथिया ली हैं
सारी मशालें
और हम निहत्थे खड़े हैं

जैसे पहाड़ से एक बहुत बड़ा पत्थर तेज़ी से लुढ़कता हुआ सीधा उन्हीं की ओर आ रहा था। जैसे समुद्र में उठी एक दैत्याकार सुनामी लहर बहुत तेज़ी से दौड़ती हुई सीधी उन्हीं की ओर आ रही थी। प्रकाश के पिता कुँवर प्रताप को उस पल ठीक ऐसा महसूस हुआ।

'तमाम सबूतों और गवाहों के बयानों की रोशनी में मुल्ज़िम प्रकाश पर लगाए गए सारे इल्ज़ाम सही साबित हो गए हैं। मुल्जिम प्रकाश ने जो अपराध किया है वह जघन्य है। यह अदालत उसे दोषी क़रार देती है। मुल्जिमि प्रकाश के इस कुकृत्य ने इंसानियत को शर्मसार कर दिया है। अदालत का मानना है कि यह अपराध' रेयरेस्ट ऑफ़ द रेयर 'श्रेणी के अंतर्गत आता है। लिहाज़ा यह अदालत मुल्जिम प्रकाश वल्द कुँवर प्रताप को ताज़ीरात-ए-हिंद की दफ़ा 302 के तहत फाँसी की सज़ा सुनाती है। ही इज़ टु बी हैंग्ड टिल ही इज़ डेड।' सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ जज जस्टिस राममूर्ति की भारी आवाज़ अदालत में गूँज रही थी।

जैसे ख़राब मौसम में बीच मैदान में खड़े ऊँचे दरख़्त पर अचानक बिजली गिर जाती है, प्रकाश के पिता कुँवर प्रताप के लिए वह ठीक ऐसा ही पल था।

बरसों पहले बहुत पूजा-पाठ, मन्नतों और डॉक्टरों के खूब चक्कर लगाने के बाद कुँवर प्रताप राय की पत्नी जानकी देवी ने एक लड़के को जन्म दिया था।

'आख़िर हमें हमारे कुल का दीपक मिल ही गया।' कुँवर प्रताप ने शिशु को पहली बार गोद में उठाते हुए गर्व से कहा था।

कुँवर प्रताप राय ज़मींदार घराने से थे। उनके पिता कुँवर अखिलेश राय को अंग्रेज़ों ने 'राय साहब' का ख़िताब दिया था। इलाक़े के दर्जनों गाँवों के बाशिंदे उनकी रियाया थे। दर्जनों कुएँ, तालाब, मंदिर और सैकड़ों बीघे ज़मीन उनकी सम्पत्ति थी। उनके दरवाज़े पर हाथी बँधे होते थे और उनके अस्तबल में ख़ास अरबी नस्ल के घोड़े थे। उनके लठैतों और बंदूकधारियों से पूरा इलाक़ा थर्राता था। कुँवर प्रताप राय को यह सब सामंती विरासत में मिला था। हालाँकि क़ानूनी तौर पर ज़मींदारी उनके पिता के समय में ही छिन चुकी थी लेकिन पुरानी ठसक अब भी मौजूद थी।

कुँवर प्रताप ने शिशु का नाम रखा-प्रकाश।

कुँवर प्रकाश राय। जब प्रकाश नौवीं कक्षा में पढ़ता था तब एक बार शहर के किसी सहपाठी से झगड़ा हो जाने पर उसने अपने पिता का रिवाल्वर स्कूल में ले जा कर उस छात्र के सीने पर तान दिया था।

'तूने ऐसा क्यों किया?' अपने रसूख़ के बल पर मामला रफ़ा-दफ़ा करवा लेने के बाद बाप ने बेटे से पूछा था।

'पापा, वह हम से बराबरी करना चाहता था। कुँवर प्रताप राय के बेटे से! मास्टर की औलाद!' प्रकाश ने घृणा और ग़ुस्से से कहा था।

जब प्रकाश दसवीं कक्षा में पहुँचा तो कुँवर प्रताप राय ने बेटे को हीरो-होंडा बाइक गिफ़्ट में दी। मोटरसाइकिल पा कर प्रकाश फूला नहीं समाया। एकाध साल के भीतर ही उसने अपना एक बाइक-गैंग बना लिया जिसमें इलाक़े के बाहुबली लोगों के लड़के शामिल थे। शहर की लड़कियों को छेड़ना और उन्हें आतंकित करना इन लफ़ंगों का प्रिय शग़ल था। प्रकाश और उसके साथी कभी राह चलती किसी लड़की को छेड़कर सर्र से निकल जाते, कभी किसी बेख़बर लड़की की चुन्नी खींच कर उड़न-छू हो जाते। कभी-कभी 'हाइ' फ़ील करने के लिए ये बिगड़े हुए लड़के राह चलती किसी महिला के

गले से उसकी सोने की चेन भी खींच लेते। इस तरह धीरे-धीरे प्रकाश अपराध की दुनिया की ओर क़दम बढ़ाने लगा था। लेकिन यदि कभी बात बढ़ जाती और पुलिस-थाने की नौबत आ जाती तो इन लड़कों के प्रभावशाली बाप मामले को रफ़ा-दफ़ा कराने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

कॉलेज में दाखिला लेने के बाद प्रकाश बेलगाम घोड़े-सा हो गया। कुँवर प्रताप राय ने अपना सारा पुश्तैनी धन शहर में बड़े-बड़े मॉल्स, मल्टीप्लेक्सेज़ और होटल ख़रीदने में लगा दिया था। वे अपने कारोबार में व्यस्त थे। घर पर भी कई बार बाप-बेटे की मुलाक़ात कई-कई दिनों तक नहीं होती। किसी दिन कुँवर साहब अपनी मर्सिडीज़ में रात में देर से घर लौटते, किसी दिन प्रकाश अपने दोस्तों के साथ पार्टियों या डिस्कोथेक में मस्त होता।

इस बीच एक नए ही क़िस्म के इंडिया की नींव रखी जा चुकी थी। चारों ओर विदेशी पूँजी की नायाब फ़सल उगी हुई थी, चमचमाते मॉल्स थे। मल्टीप्लेक्सेज़ थे। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ थीं। कॉल-सेंटर्स थे। शो-विंडोज़ में सजे-धजे मैनेक्विन्स थे। शीशे वाली लिफ़्ट्स थीं। बाज़ार की चकाचौंध थी। समूचे बाज़ार को ख़रीद कर अपनी अट्टालिकाओं में भर लेने को बेताब नव-धनाढ्य लोग थे और हर जायज़-नाजायज़ तरीके अपना कर किसी तरह जीवन में करोड़पति और 'सफल' बनने की ऐसे लोगों की तेज़ भूख थी।

एक ओर सेंसेक्स की भारी उछाल थी। दूसरी ओर भारत के करोड़ों भूखे-नंगे, ग़रीब किसानों और मज़दूरों की झुग्गी-झोंपड़ियाँ थीं। इनके दुख-दर्द जीवन से बढ़ कर थे। इन्हें दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं थी। इनके बच्चे कुपोषण और अकाल-मृत्यु के शिकार थे। इस नए क़िस्म के इंडिया में इनके लिए कोई जगह नहीं थी।

प्रकाश इस नए किस्म के भारत का होनहार सपूत था। उसके पास लेटेस्ट मोबाइल फ़ोन, लैप-टॉप, पॉम टॉप, आइ पॉड, आइ-पैड और न जाने क्या-क्या गिज़्मोज़ थे। उसके पास रीड ऐंड टेलर के सूट थे। वैन ह्यूसेन और ज़ोडिएक की क़मीज़ें थीं। बेनेटन और लेवीज़ की जीन्स थीं। रे-बैन के सन-गलासेज़ थे। वुडलैंड के जूते थे और टोयोटा लैंडक्रूज़र एस. यू. वी. गाड़ी थी। उसके पास यह सब था लेकिन मूल्य नहीं थे, आदर्श नहीं थे, संवेदना नहीं थी, इंसानियत नहीं थी। यह वह युग था जब हर रात टी. वी. पर अधिकांश चैनल 'रियलिटी शोज़' के नाम पर दर्शकों के लिए धड़ल्ले से बेहूदगी परोस रहे थे। एक साथ कई पीढ़ियों के संस्कारों को नष्ट करने का कुत्सित खेल खेला जा रहा था। टी. आर. पी. बढ़ाने की अंधी दौड़ में हर रात एक प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का गला रेता जा रहा था।

उन दिनों कॉलेज के महात्मा गाँधी सभागार में यूथ-फ़ेस्टिवल चल रहा था। उस शाम कविता-पाठ का आयोजन किया गया था। मुख्य अतिथि के रूप में वरिष्ठ कवि, रंगकर्मी और समाज-सेवक अकबर हाशमी जी मंच पर आसीन थे। उनके उदात्त और धर्म-निरपेक्ष विचारों से कौन नहीं अवगत था। कट्टरपंथी ताक़तें उनके विरुद्ध लामबंद हो रही थीं। बाद में माफ़िया और गुंडों ने उनकी निर्मम हत्या भी कर दी। किंतु उस शाम मंच पर आसीन अक़बर हाशमी एक व्यक्ति नहीं, संस्था लग रहे थे। रोशन विचारों के प्रखर सूर्य लग रहे थे।

'अब दिन
निर्जन द्वीप पर पड़ी
ख़ाली सीपियों-से
लगने लगे हैं
और रातें
एबोला वायरस के
रोगियों-सी
क्या आइनों में ही
कोई नुक्स आ गया है
कि समय की छवि
इतनी विकृत लगने लगी है।'

काव्य-पाठ ज़ोरों पर था। अच्छी कविताओं को खूब सराहा जा रहा था।

'कैसा समय है यह
जब भेड़ियों ने हथिया ली हैं
सारी मशालें और हम
निहत्थे खड़े हैं
कैसा समय है यह
जब भरी दुपहरी में
घुप्प अँधेरा है
जब भीतर भरा है
एक अकुलाया शोर
जब अयोध्या से बामियान तक
ईराक़ से अफ़ग़ानिस्तान तक
बौने लोग डाल रहे हैं
लम्बी परछाइयाँ।'

तभी ऑडिटोरियम के बाहर नारेबाज़ी का शोर सुनाई दिया। देखते-ही-देखते प्रकाश के नेतृत्व में पंद्रह-बीस गुंडा तत्व सभागार में दाखिल हो गए। उनके हाथों में हॉकी-स्टिक्स, सरिये और साइकिल की चेनें थीं। वे कॉलेज द्वारा अकबर

हाशमी जी को इस काव्य-संध्या का मुख्य अतिथि बनाए जाने का विरोध कर रहे थे। कुछ ही पलों में वे गुंडे तोड़-फोड़ और मार-पीट पर उतारू हो गए। भगदड़ मच गई। कई छात्र-छात्राओं के सिर फूट गए। कइयों की बाँहें टूट गईं। कुछ छात्र-कार्यकर्ता बड़ी मुश्किल से मंच के पिछली ओर के दरवाज़े से अकबर हाशमी जी को बचा ले गए।

लेकिन इतनी बड़ी घटना के बाद भी प्रकाश और उसके गुंडा साथियों का बाल भी बाँका न हुआ। कॉलेज प्रशासन ने उन्हें केवल चेतावनी देकर छोड़ दिया। यह आज़ाद भारत का दुर्भाग्य ही था कि गुंडा तत्वों के आका उच्च पदों पर आसीन थे। असामाजिक तत्वों को संरक्षण प्राप्त था। सच्ची बात कहने वाले को जान से मार दिया जाता था। सही बात कहने वाले लेखकों की किताबों पर पाबंदी लगा दी जाती थी। अपनी अंतरात्मा की आवाज़ सुनने वाले साहित्यकारों और कलाकारों को देश-निकाले का दर्द झेलना पड़ता था।

जल्दी ही प्रकाश कॉलेज का 'दादा' बन गया। इस बार प्रकाश और उसके गैंग ने जूनियर्स की रैगिंग करते समय ऐसे-ऐसे हथकंडे अपनाए कि 'गुलाल' फ़िल्म में दिखाए गए रैगिंग के हथकंडे भी उनके सामने फीके पड़ गए। मारे डर, अपमान, और पीड़ा के कई छात्र-छात्राओं ने कॉलेज छोड़ दिया। एक छात्र ने इस मानसिक यातना से पीड़ित हो कर आत्महत्या तक करने की कोशिश की। कॉलेज के शिक्षकों ने भी गुंडों के डर से चुप्पी साध ली।

'हम सब घर-परिवार, बाल-बच्चे वाले हैं। इन गुंडों के मुँह कौन लगे। इनकी पहुँच ऊपर तक है।' लोग दबी ज़बान में एक-दूसरे से कहते। कुछ पीड़ित छात्र-छात्राओं के अभिभावकों ने इन गुंडों के विरुद्ध शिकायत करने की भूल की। उन्हें शायद पता नहीं था कि कॉलेज की मैनेजिंग कमेटी के ज़्यादातर सदस्य प्रकाश और उसके गिरोह के अन्य लड़कों के प्रभावशाली पिता लोगों की जेब में थे। ज़ाहिर है, सभी मामले रफ़ा-दफ़ा कर दिए गए।

इस बीच प्रकाश के पिता कुँवर प्रताप राय नगर-निगम के महापौर भी बन गए थे। उनका क़द कुछ और बढ़ गया था। उनकी नाक कुछ और खड़ी हो गई थी।

यह उन्हीं दिनों की बात थी। हुआ यह कि प्रकाश को कॉलेज में पढ़ने वाली एक लड़की निशा पर 'क्रश' हो गया। अब यह तो कहीं लिखा नहीं था कि गुंडों को किसी लड़की को चाहने का अधिकार नहीं होता। लेकिन शरीफ़ घराने की कोई लड़की किसी गुंडे को लिफ़्ट दे, ऐसा भी नहीं सुना जाता। लिहाज़ा प्रकाश को ग़ुस्सा आ गया। ग़ुस्सा उसका ख़ानदानी हथियार था।

कहते हैं कि एक बार शिकार पर गए प्रकाश के परदादा के पालतू कुत्ते शेरा को किसी चीते ने मार डाला। चीते की इस धृष्टता से प्रकाश के परदादा इतने ख़फ़ा हुए थे कि उन्होंने एक हफ़्ते के भीतर सौ चीतों का सफ़ाया कर दिया था। भारत में चीतों की प्रजाति के विलुप्त हो जाने के पीछे निःसंदेह प्रकाश के परदादा की मुख्य भूमिका रही होगी।

प्रकाश के दादा का ग़ुस्सा भी किंवदंतियों का विषय बन गया था। हुआ यह था कि एक बार प्रकाश के दादा किसी काम से कोर्ट-कचहरी जाने के लिए निकले ही थे कि एक कौए ने उनके सिर पर बीट कर दी। इस वाहियात हरकत से प्रकाश के दादा इतने नाराज़ हुए कि अपनी दुनाली ले कर वे कौओं के ख़ून के प्यासे हो गए। बताया जाता है कि उन्होंने अंजुलि में गंगा-जल ले कर यह शपथ ली कि वे पूरी पृथ्वी को सात बार काग-विहीन कर देंगे। पुराने लोग बताते हैं कि एक ही हफ़्ते में उन्होंने इलाक़े के तक़रीबन एक हज़ार कौए मार गिराए थे। कहते हैं कि इलाक़े का कोई भी ऐसा काग-परिवार नहीं बचा था जिसका कम-से-कम एक सदस्य इस काग-संहार में मारा न गया हो। कई काग-परिवारों की तो तीन-तीन पीढ़ियाँ प्रकाश के दादा के ग़ुस्से की बलि चढ़ गई थीं। पता नहीं इस बात में कितना दम है, किंतु लोक-कथाएँ ऐसे ही तो बनती हैं।

प्रकाश के पिता कुँवर प्रताप राय का ग़ुस्सा भी जग-प्रसिद्ध था। बचपन में एक बार एक बंदर ने उनके हाथ से केला छीन लिया था। उन्होंने भी क़सम खाई कि वे उस इलाक़े से बंदरों को खदेड़ कर ही दम लेंगे। बड़े हो कर उन्होंने इलाक़े में काले मुँह वाले लंगूरों को बड़ी संख्या में ला कर छोड़ दिया। धीरे-धीरे इन लंगूरों ने बंदरों को उस इलाक़े से ही भगा दिया।

ऐसे ग़ुस्सैल ख़ानदान का चिराग़ था प्रकाश। इसलिए जब निशा ने उसे 'लिफ़्ट' नहीं दी तो उसे ग़ुस्सा आ गया। लेकिन यह क्रोध ऐसा भयावह रूप ले लेगा इसकी कल्पना तो प्रकाश के पिता कुँवर प्रताप राय ने भी नहीं की थी।

एक दिन जब प्रकाश ने निशा से बदतमीज़ी करने की कोशिश की तो निशा ने उसे थप्पड़ जड़ दिया। प्रकाश आग-बबूला हो गया। उसी शाम जब निशा बाज़ार जा रही थी, प्रकाश अपने गिरोह के साथ बाइक पर आया और चलती मोटर-साइकिल से निशा के मुँह पर एसिड फेंक कर निकल भागा। ख़ुशक़िस्मती से

प्रकाश का निशाना चूक गया। निशा ने अपने हाथ बचाव की मुद्रा में उठा लिए थे और अपना चेहरा पीछे झुका लिया था। इसलिए उसका चेहरा बच गया और एसिड का सारा वार उसके हाथों ने झेला। दर्द से तड़पती निशा को लोग अस्पताल ले गए।

यह एक गम्भीर मामला था। लेकिन कुँवर प्रताप राय ने फ़ौरन बेटे को उसके ननिहाल भेज दिया। कई झूठे गवाह तैयार कर लिए गए जिन्होंने इस मामले में गवाही दी कि इस घटना वाले दिन प्रकाश शहर में था ही नहीं क्योंकि वह तो दो दिन पहले ही अपने ननिहाल चला गया था।

कुँवर प्रताप राय के पास रुतबा था, रसूख़ था, दौलत थी। लिहाज़ा प्रकाश एक बार फिर बच निकला। कुँवर प्रताप राय ने बेटे को सावधान रहने की सलाह दी।

अगले कुछ महीने प्रकाश ने 'लो-प्रोफ़ाइल' रहने की कोशिश की। लेकिन लम्पट जवानी के भड़कीले शोले को भला कौन रोक सकता है।

कुछ ही महीने बाद प्रकाश और उसके कुछ मित्र अपनी-अपनी गर्ल-फ्रेंड्स के साथ 'सरिस्का' में बाघ देखने के बहाने गए। लेकिन वहाँ उन्होंने दो 'ब्लैक बक' (हिरण की एक प्रजाति) का अवैध रूप से शिकार करके उन्हें मार डाला। शहर के एक खोजी पत्रकार को इसकी भनक लग गई। 'ब्लैक बक' संरक्षित जीव थे। मामला तूल पकड़ने लगा। लेकिन लड़कों के बाप किस मर्ज़ की दवा थे। हर स्तर पर कुछ दे-दिला कर किसी तरह इस मामले को भी दबा दिया गया।

लेकिन यह सब तो केवल 'ट्रेलर' था। 'हॉरर मूवी' तो अभी बाक़ी थी।

एक बार देर रात अपने मित्रों के साथ किसी पार्टी में मौज-मस्ती करने के बाद प्रकाश अपनी टोयोटा-लैंडक्रूज़र में घर लौट रहा था। लोगों का कहना है कि नशे की हालत में उसने अंधाधुंध गाड़ी चलाते हुए फुटपाथ पर सो रहे कुछ ग़रीब मज़दूरों पर अपनी गाड़ी चढ़ा दी। इस हादसे में छः-सात मज़दूर मौक़े पर ही दम तोड़ गए। प्रकाश अपनी गाड़ी घटना-स्थल से ले कर भाग खड़ा हुआ। कई घायल मज़दूर वहाँ ख़ून से लथपथ कराहते-छटपटाते रहे। उनमें से कुछ और ने भी बाद में अस्पताल मेंअंतिम साँसें लीं।

पुलिस ने प्रकाश को गिरफ़्तार कर लिया। लेकिन कुछ दिन जेल में रहने के बाद ही प्रकाश ज़मानत पर रिहा हो गया। कुँवर प्रताप राय के पास दौलत थी, रुतबा था। उनका मानना था कि हर कोई बिकाऊ होता है। लेकिन हर आदमी की क़ीमत अलग-अलग होती है। केवल सही बोली लगाने वाला होना चाहिए। लिहाज़ा उन्होंने अपनी तिजोरी का मुँह खोल कर गवाहों को ख़रीद लिया। दूसरी ओर उनके पास अच्छे वकीलों की एक पूरी फ़ौज तैयार थी जिन्होंने अदालत में यह साबित कर दिया कि दरअसल इस हादसे के समय प्रकाश गाड़ी चला ही नहीं रहा था। वह तो साथ वाली सीट पर बैठा मात्र था। जबकि उस समय गाड़ी तो प्रकाश का ड्राइवर चला रहा था। इस तरह प्रकाश को एक बार फिर बचा लिया गया। दौलतमंद और बाहुबली लोगों की बिगड़ी औलादों की रैश-ड्राइविंग से यदि कई ग़रीब मज़दूर मर भी जाते थे तो क्या हुआ? आख़िर आज़ाद भारत में ग़रीब मज़दूरों की औक़ात ही क्या थी? कीड़े-मकोड़ों से ज़्यादा थोड़े ही समझी जाती थी उनके जीवन की क़ीमत!

प्रकाश बच गया लेकिन वह कहाँ सुधरने वाला था। जल्दी ही उसकी दोस्ती अंडरवर्ल्ड के कुछ लोगों से हो गई जो सुपारी ले कर हत्याएँ करते थे। उसने उनसे एक ए. के. 47 राइफ़ल ख़रीद ली। लेकिन कुछ दिनों के बाद ही इस गैंग के कुछ बदमाश पुलिस के हत्थे चढ़ गए। पूछताछ में उन्होंने पुलिस के सामने यह बात भी उगल दी कि उन्होंने शहर के महापौर कुँवर प्रताप राय के बेटे प्रकाश को एक ए. के. 47 राइफ़ल बेची थी। पुलिस ने 'आर्म्स एक्ट' के तहत मामला दर्ज़ करके प्रकाश को गिरफ़्तार कर लिया। वैसे भी देश की सुरक्षा को आतंकवादियों से बड़ा ख़तरा था। कैलेशनिकोव राइफ़ल अपने पास रखना अवैध था। जुर्म था।

लोगों को लगा कि प्रकाश इस बार बुरी तरह फँस गया। लेकिन कुँवर प्रताप राय फिर हरकत में आए। प्रकाश उनका अपना ख़ून था। उनका मानना था कि जवानी में बच्चों से ग़लतियाँ हो ही जाती हैं। लिहाज़ा उन्होंने देश के सर्वश्रेष्ठ क्रिमिनल लॉयर श्याम वंजानी की सेवा ली। नतीजा यह निकला कि कुछ महीने जेल में रहने के बाद प्रकाश एक बार फिर जेल से बाहर आ गया।

श्याम वंजानी और वकीलों की उनकी टीम ने क़ानून की कमज़ोरियाँ का फ़ायदा उठाते हुए अदालत में उसकी ऐसी व्याख्या कर दी कि प्रकाश फिर से बच निकला। यह ख़बर अगले दिन अख़बारों के मुख-पृष्ठ पर छा गई। टी. वी. चैनलों में इस विषय पर 'टॉक-शो' आयोजित करने की होड़ लग गई। कई टी. वी. चैनलों ने अपना पक्ष रखने के लिए प्रकाश को 'प्राइम-टाइम' में अपने स्टूडियो में आमंत्रित किया। यह प्रसारण 'लाइव' जा रहा था। इस पैनल में प्रकाश के वक़ील श्याम वंजानी के अलावा प्रकाश के पिता कुँवर प्रताप राय और कुछ क्राइम-एक्सपर्ट्स भी बुलाए गए। कुछ चैनलों ने सेवानिवृत्त पुलिस-आयुक्तों को भी ऐसे कार्यक्रमों में बुलाया। इन सभी प्रोग्रामों में इस विषय पर मंथन का लम्बा दौर चला। हर चैनल ने प्रकाश के साथ 'एक्स्क्लूज़िव' इंटरव्यू दिखाने का दावा किया। देखते-ही-देखते प्रकाश एक सेलेब्रेटी बन गया। दूसरी ओर इन खबरिया चैनलों का टी. आर. पी. भी बढ़ गया।

इस मौक़े का फ़ायदा उठाते हुए प्रकाश के पिता कुँवर प्रताप राय ने

कॉलेज के एक प्राध्यापक को प्रकाश के जेल के दिनों पर एक किताब लिखने के लिए कहा। प्राध्यापक को इसके बदले एक मोटी रक़म दी गई। लेकिन यह किताब प्रकाश के नाम से छपी। शीर्षक था–'ऐन इनोसेंट मैन्स जेल–डायरी' (एक बेक़सूर आदमी की जेल–डायरी)। उप–शीर्षक था–'हाउ आइ वाज़ इल्लीगली डीटेंड ऐंड टार्चर्ड इन जेल फ़ॉर मंथ्स' (कैसे मुझे कुछ महीनों तक अवैध रूप से जेल में रख कर यातनाएँ दी गईं)। यह किताब प्रसिद्ध प्रकाशक लेंग्विन पब्लिशर्स ने छापी। देखते–ही–देखते यह किताब 'नेशनल बेस्टसेलर' बन गई। कई भाषाओं में इस पुस्तक के अनुवाद भी प्रकाशित हो गए। कुछ ही महीनों में इस किताब की लाखों प्रतियाँ बिक गईं। प्रकाश को रॉयल्टी के रूप में एक मोटी रक़म मिली। मुंबई के एक प्रसिद्ध फिल्म निर्माता–निर्देशक ने इस विषय पर फ़िल्म बनाने का अधिकार प्रकाश और उसके पिता से एक करोड़ रुपए में ख़रीद लिया। प्रकाश की दसों अँगुलियाँ घी में थीं।

कुछ महीने बाद कुँवर प्रताप ने धूम–धाम से प्रकाश की शादी एक दौलतमंद और ऊँचे ख़ानदान की लड़की से कर दी। ब्याह में खूब सारा दहेज़ भी मिला जिसमें एक मर्सिडीज़ गाड़ी भी शामिल थी। कुँवर प्रताप राय ने सोचा कि शादी का खूँटा प्रकाश को बाँध कर रख सकेगा। वे चाहते थे कि प्रकाश अब उनके व्यवसाय में उनका हाथ बँटाए।

लेकिन कुँवर साहब का यह सोचना ग़लत साबित हुआ। प्रकाश की शादी के कुछ महीने बाद ही यह कांड हो गया।

'वही दाल–रोटी आदमी रोज़–रोज़ नहीं खा सकता। कभी–कभी उसे स्पेशल डिश की दरकार भी होती है।' एक दिन प्रकाश ने अपने गैंग के एक सदस्य से कहा।

दरअसल प्रकाश अपराध के घोड़े पर चढ़ चुका था। उसके मुँह में जुर्म के ख़ून का स्वाद लग गया था। उसके भीतर से इंसानियत कब की पलायन कर चुकी थी। उसके भीतर अच्छाई की नदी का पानी तो बहुत पहले सूख गया था। अब वहाँ केवल बुराई की रेत बची हुई थी।

मदमस्त साँड़–सा प्रकाश अब अपने शिकार की तलाश में जुट गया और उसकी निगाह अपने ही घर पर तैनात एक गार्ड की सोलह वर्षीया बेटी पर पड़ी। एक दिन उस हैवान ने काले शीशे वाली गाड़ी में उस लड़की को उठा लिया। एक ख़ाली फ़्लैट में ले जा कर उस दरिंदे ने उस लड़की से कुकर्म किया। फ़्लैट के बाहर उसके गैंग के सदस्य पहरे पर रहे। उस राक्षस ने इस पूरे कांड का अश्लील एम.एम. एस. भी बना लिया ताकि बाद में उसे इंटरनेट पर अपलोड कर सके। फिर उस शैतान ने उस बेचारी लड़की का गला घोंट कर उसकी हत्या कर दी। लड़की अपनी जान की भीख माँगती रही लेकिन प्रकाश ने उसकी एक नहीं सुनी। फिर अपने कुकर्मों को छिपाने के लिए उस वहशी जानवर ने लड़की की लाश के टुकड़े–टुकड़े किए और बाद में उन्हें अपने पिता के होटल के तंदूर में जला दिया।

'यह अदालत मुल्जिम प्रकाश वल्द कुँवर प्रताप को ताज़ीरात–ए–हिंद की दफ़ा 302 के तहत फाँसी की सज़ा सुनाती है। ही इज़ टु बी हैंग्ड टिल ही इज़ डेड।' सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ जज जस्टिस राममूर्ति की भारी आवाज़ अदालत में गूँज रही थी।

जैसे गर्म तवे पर पड़ गई पानी की बूँद छन्न से भाफ़ बन कर उड़ जाती है, कुँवर प्रताप राय को लगा कि अदालत के इस फ़ैसले से उनका अपना वजूद भी वैसे ही मिट गया हो। उन्हें चक्कर आ गया। उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। लेकिन उनके ज़ेहन के उस अँधेरे में ही अचानक एक बहुत पुरानी स्मृति किसी उजली लकीर–सी कौंधी। सात साल का प्रकाश स्कूल से रोता हुआ घर आया है। उसके गाल पर थप्पड़ का निशान है।

'क्या हुआ बेटा? क्यों रो रहा है? किसी ने मारा है क्या?'

'मास्टर ने।'

'क्यों?'

'हमने दो दूना पाँच बताया था। मास्टर कहने लगा–ग़लत है।'

'फिर?'

'हमने कहा–हम कुँवर प्रताप राय के बेटे हैं। हमने दो दूना पाँच कह दिया तो वही सही है। इस बात पर मास्टर ने हमें मारा। पापा, आपका नाम सुनने के बाद भी मारा।'

दो दिन बाद उस मास्टर को नौकरी से निकाल दिया गया था। और घिरते अँधेरे के बीच अदालत के कमरे में बैठे कुँवर प्रताप को लगा।

शुरुआत ही ग़लत हो गई थी। नींव में ही गड़बड़ी आ गई थी तभी तो आज पूरी इमारत असमय ही भड़भड़ा कर गिर पड़ी। यदि उस दिन उन्होंने प्रकाश को बता दिया होता कि उसके मास्टर जी सही थे–कि चाहे कोई भी कहे, दो दूना पाँच कभी सही नहीं होता–तो आज उन दोनों को यह दिन नहीं देखना पड़ता।

(जिस नए क़िस्म के भारत की नींव रखी जा चुकी थी उसमें भ्रष्ट, अवसरवादी, बेईमान, दग़ाबाज़, फ़रेबी, जालसाज़, दोगले और अपराधी क़िस्म के लोगों की चाँदी थी। दो–दूना पाँच को सही बताने वाले न जाने कितने ऐसे लोग सीना ताने आज़ाद घूम रहे थे।)

5001, गौड़ ग्रीन सिटी,
वैभव खंड, इंदिरापुरम्,
ग़ाज़ियाबाद–201014 (उ. प्र.)
मो.–8512070086

जीवन के सच का पता

– राजकुमार कुम्भज

जन्म – 12 फरवरी 1947।
जन्म स्थान – मध्य प्रदेश।
रचनाएँ – तीस पुस्तकें प्रकाशित।

जीवन के सच का पता

स्मृति है कि चुभती हुई
चुभन-सी चुभन कोई सदियों पुराने
देह में ज़ख़्म नहीं कहीं कोई दिखता
रक्त मगर रिसता रहता है रह-रहकर
कुछ-कहकर नहीं आते हैं दु:ख जैसे
कुछ-कुछ वैसे ही आती रहती हैं स्मृतियाँ
नदियाँ सूख भी जाएँ तो नमी का एहसास
नहीं जाता, नहीं जाता, नहीं जाता
बूँद-बूँद बरसता रहता है मौसम-दर-मौसम
चिंगारियों भरी तड़प हो जैसे कोई
और चीथड़ा-चीथड़ा आत्मा के कोनों में सूना
कोई नहीं द्वार पर, कोई दस्तक भी नहीं
फिर भी मगर फिर भी और फिर-फिर
सुनाई देती रहती है कॉलबेल
परदे उठते हैं, गिरते नहीं, निराकार सब
आती-जाती रहती हैं आवृत्तियाँ
और आपत्तियाँ भी नेक-अनेक
कि रास्ता उधर से नहीं जाता है इधर से
घर से पीछे, बहुत पीछे छूट जाता है रिश्ता
आमूल-चूल बदल जाता है जीवन
और जीवन के सच का पता।

कुछ इधर, कुछ उधर

दु:ख है कि झर-झर झरता है झरना
कहना कुछ भी नहीं,
सिर्फ तड़पना और सहना
थपेड़े गर्म हवाओं के,
मौसम रेगिस्तान के
आमरण आचरण एक रोशनदान के
तिनका-तिनका ढूँढ़ना
ठिकाने छाँव के
गिनना, भूलना फिर-फिर छाले पाँव के
मरने की आस लिए चलते चलना
काँटों में फूल और फूलों में
खुशबू की तरह रहना
कुछ इधर,
कुछ उधर देखना और हँसना।

331, जवाहरमार्ग,
इंदौर-452001 (म.प्र.)
दूरभाष 0731-2543380

बहू-बेटियाँ

– ओम उपाध्याय

जन्म – 11 जुलाई 1949।

शिक्षा – बी.एससी.।

रचनाएँ – सात पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान – राष्ट्रीय साहित्य सृजन शिखर सम्मान सहित अनेक सम्मान।

बहू-बेटियाँ

कोशिशें कर
साड़ी बाँधने,
गोल-गोल
रोटियाँ बनाने,
और तहजीब
सीखने में जुटी
बहू-बेटियाँ।

बेटियाँ
सीख रही हैं
काम काज घर का,
आखिर एक दिन
छोड़ कर जाना है मायका
उठते-बैठते,
सोते-जागते,
देखते सपने
सोचती है वह
कैसे बनाए जाते हैं
पराए अपने।

ज्योंहि छोरी,
हुई किशोरी,
माँ की
आरंभ हुई देख भाल,
क्योंकि ये दुनिया
उसके बाबुल का घर
वो दुनिया
ससुराल।

आज यहाँ,
कल वहाँ
बेटियों को देखना है
दूसरा जहाँ।
गूँथना सीख रही
खुले बालों की
बनाना चोटियाँ,
बहू-बेटियाँ।

बी-107, प्रथत तल,
स्टर्लिंग स्काय लाइन,
इंदौर-452016 (म.प्र.)
मो.-9407515174

चुनौती

- देवेन्द्र कुमार रावत

जन्म – 25 जुलाई 1957।

शिक्षा – स्नातकोत्तर।

रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

सम्मान – क्षेत्रीय सम्मानों से सम्मानित।

चुनौती

हम क्यों दे रहे हैं चुनौती
सूर्य को, समुद्र को,
और कह भी रहे हैं कि
कि सूर्य तुम कभी,
क्रोधाग्नि तो बरसाओ।

समुद्र तुम अपनी
सीमाएँ लाँघ
कर तो दिखाओ।
बादलो, कभी इतना बरसो
कि लोग त्राहि-त्राहि करें।

या इतना तरसाओ
कि लोग प्यासे मरें।
हवाओं तुम भी
कभी प्रबल वेग से बहो।
प्रलय की कहानियाँ कहो।
क्या हम दे सकते हैं चुनौती?

सूर्य को, समुद्र को,
बादलों को, हवाओं को।
हाँ, हमने दी है चुनौती?
बेशुमार जनसंख्या बढ़ा कर।
हरे-भरे पेड़ काट कर।

समय का चितेरा

सदियों से खींचे जा रहे हैं,
हर आदमी के चित्र।
समय का चितेरा
है भी विचित्र।
वह शून्य भीति पर इन्हें
टाँगता भी है।
पर इनमें से अधिकांश के,
रंग उड़ जाते हैं।
और जो शेष रह जाते हैं,
वे उकर जाते हैं पत्थरों पर।
और पहुँच जाते हैं,
पूजा घरों में
पर ये ऐसे लोग हैं,
जिन्होंने जीवन अपने लिए
नहीं जीया
दिया, दूसरों को अमृत
और स्वयं गरल पिया।

फ्लेट नं. 107, महेन्द्रा चौराहा,
बावड़िया कला,
भोपाल-462026 (म.प्र.)
मो.-9893119507

दरवाजा

– सुरेश नारायण कुसुंबीवाल

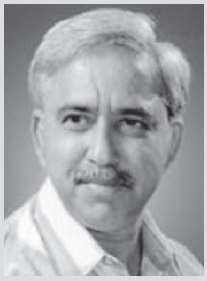

जन्म – 10 अक्टूबर 1954।

शिक्षा – एम.ए., बीएड.।

रचनाएँ – सात पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान – महा. हिंदी साहित्य अकादमी संत नामदेव पुरस्कार।

दरवाजा

एक दरवाजा है वहाँ

मैं थपथपाता हूँ
दरवाजा खुलता नहीं है

मैं थपथपाता हूँ
नहीं खुलता दरवाजा फिर भी

कोई आता है
थपथपाता है दरवाजा थपथप
एक खास अंदाज में, और
दरवाजा खुलता है

मैं फिर करता हूँ कोशिश
अपनी ही तरह से, और
झेलता हूँ नाकामयाबी

जानता हूँ मैं
मगर
फिर करता हूँ कोशिश
फिर करूँगा कोशिश
अपनी ही तरह

देखना चाहता हूँ
कब तक रहता है दरवाजा बंद

एक सड़क

एक सड़क
मेरे घर से निकलती है
पहले सीधी ही सीधी जाती है
फिर अचानक मुड़ जाती है

एक सड़क
मेरे घर से निकलती है
पहले एक अकेली ही होती है
फिर मिल जाती है उसमें कई और सड़कें

एक सड़क
मेरे घर से निकलती है
पहले धीमी–धीमी होती है
फिर धीरे–धीरे दौड़ने लगती है
दौड़ती ही जाती है

एक सड़क
मेरे घर से निकलती है
फिर लौटकर नहीं आती है।

रामेश्वर नगर,
प्रोफेसर कालोनी, जिला जलगांव,
भुसावल–425201 (महाराष्ट्र)
मो.–09028040400

बहती नदी हूँ

– मयंक श्रीवास्तव

जन्म – 11 अप्रैल 1942।
जन्मस्थान – ऊँदनी, फिरोजाबाद (उ.प्र.)।
रचनाएँ – पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – दुष्यंत कुमार पाण्डुलिपि संग्रहालय, भोपाल द्वारा सुदीर्घ साधना सम्मान।

बहती नदी हूँ

मैं तुम्हारे गाँव की, बहती नदी हूँ
हो रहा मेरा हरण मुझको बचाओ।

कुछ शिकारी रोज आकर पास मेरे
मन मुआफिक जिस्म मेरा नोचते हैं
मैं किसी की माँ, किसी की मैं सखी हूँ
वे निठुर मन में न ऐसा सोचते हैं
रोज मैली कर रहे
मेरी चुनरिया
पड़ गये ऐसे चरण इनको मिटाओ।

मैं तुम्हारे प्राण की संजीवनी हूँ
मैं तुम्हारे धर्म की पहचान भी हूँ
मैं तुम्हारी जिंदगी की एक धड़कन
मैं तुम्हारा राग हूँ, मैं गान भी हूँ
मैं निभाती आ रही
संबंध सारे
आ गया है आज क्षण तुम भी निभाओ।

मैं न होऊँगी अगर तो तुम न होगे
इस समूचे गाँव की होगी तबाही
मैं तुम्हारे वंश की मंदाकिनी हूँ
गाँव का मंदिर तुम्हें देगा गवाही
आ गया ऐसा समय
तो माँगती हूँ,
है तुम्हारे पास ऋण मेरा चुकाओ।

कबीर समझ बैठे

पता नहीं है यह
हमको भी किस हक़ से
खुद को हम अपनी जागीर समझ बैठे।

तिनके से भी नहीं लड़ाई जीती है
फिर भी हम जयवीर समझते जाए हैं
असफलताओं से झोली भरने पर भी
हम अपनी यशगाथा लिखते आए हैं
कभी नहीं हम
प्रतियोगी बनकर उतरे
पर अपने को सबसे मीर समझ बैठे।

हमने निज अस्तित्वहीनता के आगे
अपने प्रतिबिम्बों को ऊँचाई दे दी
निर्बलता का दोष छिपाकर सीने में
समझ लिया ताकत को तनहाई दे दी
कभी नहीं तरकश के
बाहर निकले हैं
फिर भी सबसे घातक तीर समझ बैठे।

जानी नहीं हकीकत स्वर्णिम सपनों की
सोच-कर्म का अंतर कभी नहीं पाटा
दिशाहीनता अपना काम रही करती
उम्र बढ़ाता रहा निरंतर सन्नाटा
ढाई आखर का सच
समझ नहीं पाए
अपने को हम किंतु कबीर समझ बैठे।

हमने अपने घर के भीतर रहकर ही
बहुधा अंतरिक्ष की दूरी नापी है
अपने घर का 'इन्टरनेट' बताता है
अपनी ही चर्चा घर-घर में व्यापी है
बुद्धिजीवियों की
महफिल में गए बिना
हम अपनी मुद्रा गंभीर समझ बैठे।

**242, सर्वधर्म कॉलोनी,
सेक्टर-सी, कोलार रोड,
भोपाल-462042 (म.प्र.)
मो.-9977121221**

झूठ का अवगुण छिपा है

– **मनीष श्रीवास्तव 'बादल'**

जन्म – 20 दिसंबर।

रचनाएँ – एक पुस्तक प्रकाशित।

♦ ♦ ♦ ♦

झूठ का अवगुण छिपा है, बँट रहे सम्मान में,
और सच का गुण हमेशा ही दिखा अपमान में।

कथ्य में, बस कथ्य में है, पुस्तकों का रस छिपा,
और तुम अटके पड़े हो आवरण, उन्वान में।

इस बुढ़ापे में अकेले बैठकर वो सोचते,
ख़ुश्बुएँ तो उड़ गयीं, गुल सूखते गुलदान में।

'बच्चे लंदन में हैं सेटल', फख्र से कहते पिता,
पर घिरे अंदर ही अंदर मोह के तूफान में।

गाँव का है हाट छूटा, सिल की चटनी भी नहीं,
खोजते हम स्वाद जाकर मॉल की दूकान में।

इसकी तुलना क्यों भला उससे की जानी चाहिए,
इसमें खूबी है अलग और है अलग उपमान में।

अब जुबाँ में तेज ख़ंजर और पत्थर दिल में है,
मिल रहे हथियार 'बादल' आज के इंसान में।

♦ ♦ ♦ ♦

बुरे लम्हों में मुमकिन है कोई अपना बदल जाए,
किसी से क्या गिला हो फिर, अगरचे दम निकल जाए।

तुम्हारी बेरुख़ी ने ही उसे पत्थर बनाया है,
तुम्हीं क्यों चाहते हो अब, कि वो पत्थर पिघल जाए।

कभी मंज़र है तूफ़ाँ का, कभी सैलाब अश्कों का,
नहीं उम्मीद बाक़ी है, कि ये मौसम सँभल जाए।

सँजो कर वो रखे है जो, हँसीं कुछ पल मुहब्बत के,
वो ख़ुश्बू प्यार की, मुमकिन है मुट्ठी से फिसल जाए।

फ़रेब औ' झूठ से लड़कर हमेशा सच ही हारा है,
कि' जैसे रौशनी को घुप अँधेरा इक निगल जाए।

हाँ, उसके सब्र का जब बाँध टूटेगा, तो मुमकिन है,
जिसे सबने छला है वो ज़माने को ही छल जाए।

उसे कुछ वक़्त दो यारो, सँभल जाएगा वो इक दिन,
नहीं बच्चा है 'बादल' जो खिलौनों से बहल जाए।

♦ ♦ ♦ ♦

जो कभी सामने खुल कर के नहीं रोते हैं,
वो हँसें ख़ूब, उन्हें ग़म भी अधिक होते हैं।

आदतन रोज़ मैं करता हूँ पिता–माँ से बात,
तब ही रातों में सदा चैन से वे सोते हैं।

ख़्वाहिशें उनको हमेशा सभी की याद रहें,
ख़्वाहिशें आँख में घर भर की पिता ढोते हैं।

बस सियासत में विरासत का चलन ज़िन्दा है,
दिखते बेटे व भतीजे कहीं पर पोते हैं।

हाँ, ग़रीबी ने हुनर सारे दिए हैं उनको,
घर बनाया है कभी, खेत कभी जोते हैं।

उनको लगता है बहुत बोलता है ये 'बादल',
जैसे इंसान नहीं पालतू हम तोते हैं।

फ्लैट नंबर–टॉप–3, नर्मदा ब्लॉक,
अल्टीमेट कैम्पस, शिर्डीपुरम,
कोलार रोड, भोपाल–462042 (म.प्र.)
मो. 8823809990

स्याही के रंग

– रमेश दवे

कविता करना मनुष्य की भाव-चेतना का सर्जन करना है। जब जीवनगत स्थितियाँ और अनुभव संवेदनशील होता है, फिर चाहे वह कविता हो, कहानी, उपन्यास, नाटक या निबंध हो। अभिषेक जैसे युवा कवि का कविता-संग्रह 'स्याही के रंग' पढ़कर ऐसा लगा, जैसे कवि का भाषा-संवेदी मन किसी रचना को आकार देने के लिए उद्वेलित हो रहा है। हिन्दी काव्य की मनोभूमि पर अधिकांश कवि संघर्ष-बीज की उत्पत्ति हैं। भारत के पास भले ही सुदीर्घ, सनातन, काव्य-परम्परा हो, लेकिन वर्तमान का कवि तो न अतीत में जी सकता है न भविष्य को ताक सकता है। राग-विराग, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु एवं नाना प्रकार के अनुभवों की अनेक श्रृंखला में बाँधा, कवि मन, जब शब्द की ध्वनियों से घिर जाता है तो अनुभव आकृति ग्रहण करते हैं, स्थितियाँ संवेदित करती हैं और बुद्धि तत्व, भाव-तत्व को उकसाता है।

पुस्तक : स्याही के रंग।
लेखक : अभिषेक सिंह।
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, 46 बेसमेंट , सी, सुदर्शनपुरा, बाइस गोदाम, जयपुर-302006 (राज.)।
मूल्य : 250/- रु.।

अभिषेक सिंह की कविताओं में अपने आसपास का जीवन फलक है। वे भावुकता भरी आकाशीय चरना नहीं करते, बल्कि यथार्थ के स्पन्दनों का सृजन करते हैं। इसलिए पिता, पितृत्व, माँ, पत्नी का एक पारिवारिक पक्ष है, तो दूसरी ओर व्याधियों, बीमारियों, कर्मगत बेचैनियों, राजनीतिक क्षुद्रताओं, प्रशासनिक विडंबनाओं आदि का एक व्यापक प्रांगण उनकी कविताओं में स्याही का रंग वैविध्य लेकर उतरती हैं। अभिषेक सिंह ऐसी पीढ़ी के कवि हैं, जिसके पास न बीता कल है न आगामी कल, बल्कि जो है वह आजादी आज है। कविता संग्रह पढ़ते हुए लगा कि हिन्दी का कवि कविता से पृथक जीविका का कवि है, क्योंकि कविता से चाहे वह प्रसाद या निराला हो जाए, अगर जीविका के लिए साधन नहीं है तो कवि का कवि जीवन व्यथा की मौन कथा बनकर रह जाएगा। कवि का आत्म-संघर्ष हिन्दी की आधुनिक कविता में इस कारण अपने यथार्थ की धरती पर ही मुखर हुआ है। संस्कृति हो या प्रकृति वह कृति में रूपांतरित तभी होती है, जब आत्म-अवलम्बी जीवन कविता में शब्द का स्वाभिमान रचना है। इस संग्रह के कवि अभिषेक सिंह भले ही प्रशासक हों पर जीविका के प्रश्न की बजाए उनकी कविता जीवन प्रश्नों की ही अभिव्यक्ति है।

कविता संग्रह का शीर्षक है 'स्याही के रंग' जो यह स्पष्ट करता है, स्याही विविधता का रंग केवल स्याही नहीं, बल्कि स्याह के अन्दर से रक्त रंग प्रकट होता है। सामान्य से सामान्य व्यक्ति अपनी भाव चेतना में स्याही के रंगों से रँगा होता है, फिर चाहे वह संघर्ष का रंग हो, अभाव और भूख का रंग हो, शोषण और अन्याय का रंग हो या जीवनगत अनेक विडम्बनाओं का रंग हो। अभिषेक सिंह की कविताओं की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने काव्य-तत्व को काव्य-तथ्य में निरूपित कर व्यर्थ की व्यंजनाएँ या लाक्षणिक प्रयोग नहीं किए हैं। अनेक कविताएँ अपने प्रत्यक्ष-अनुभूत सत्य की आध्यात्मिक शक्ति की तरह है, क्योंकि अनुभव कोई अलंकार नहीं है, वह तो सत्य से साक्षात्कार है। 'स्याही के रंग' की कविताओं में अभिषेक ने अपनी प्रकृतिगत या विचारगत निरीहता का निर्वाह दिया है।

रूस का प्रतीकवादी कवि अलेक्शांद्र ब्लोक जब यह कहता है कि ये बड़े-बड़े कपड़े के बेनर्स क्यों टाँग रखे हैं। राजनीति ने, इतने कपड़े से तो कई बच्चों के कमीज बन सकते थे जो उनके खुले बदन को ढक देते। इसी प्रकार अभिषेक जब यह कहते हैं कि बच्चे युद्ध का निर्णय करें तो लगता है संवेदना का स्तर कितना मार्मिक और समान हो। उद्धरण-

'मैं चाहता हूँ/बच्चे/युद्ध का निर्णय करें/जमीन बाँटे/दोषियों के दण्ड का निर्धारण करें, मुझे भरोसा है/वे बंदूकों में रंग भर देंगे।

इन पंक्तियों को पढ़ते हुए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की ये पंक्तियाँ याद आती हैं-

'अगर मुझे मिले बन्दूक। मैं कर दूँ उसके दो टूक,
नली निकाला करूँ पिचकारी। रंग डालूँ में दुनिया सारी।'

चाहे विक्रमादित्य का वह ग्वाल-बालक हो जो नीर-क्षीर निर्णय करता हो या स्व. सर्वेश्वर जी का पिचकारी वाला बालक या अभिषेक का निर्णय करने वाला बच्चे ये बालक वे यह सिद्ध करते हैं कि निर्णय की नि:संगता निर्लज्जता बच्चों से ही संभव है। अभिषेक सिंह एक प्रकृति संवेदी कवि होने के कारण जब नदियों को लेकर अपनी भाव धारा रचते हैं, तो उनका मन नदी में जिस सत्य को देखता है, वह इस प्रकार व्यक्त होता है-' अविरल बहना' कविता में -

'एक नदी का सूख जाना/ सभ्यताओं का पतन होना है ।
संस्कृति का क्षरण है/पीढ़ियों की यात्रा का/खो जाना है/'

यहाँ अभिषेक का कवि थोड़ा विचार स्फीति से ग्रस्त लगता है क्योंकि पृथक पंक्ति में सभ्यता के पतन का जो विचार है वह इतना पर्याप्त है कि संस्कृति और पीढ़ियों की यात्रा में विचार के विस्तार को अधिक बनाने की आवश्यकता नहीं थी। इसी प्रकार नदियाँ सनातनी हैं में अभिषेक कहते हैं - **'नदियाँ जीवित परम्परा हैं'**-

आगे नदियाँ नामक कविता में अभिषेक एक भूगर्भीय तथ्य भी प्रकट करते हैं-

'कुछ नदियाँ/जमीन में खो जाती हैं/ उन्हें उगना पड़ता है/
फिर से/ रिश्तों की तरह।'

इन पंक्तियों से 'सरस्वती' के विलुप्त हो जाने की स्मृति है और अनेक नदियाँ या तो मार्ग बदलती हैं, या मनुष्य के स्वार्थ की भूमि में अदृश्य हो जाती हैं। 'नदियों के संस्कार' नामक इस कविता में अभिषेक का संस्कारित हृदय अपनी धड़कनों में बहता है–

'नदियों के संस्कार कितने गहरे हैं/या तो नदियों ने
फसलों की वजह से/ सालभर बहना सीखा होगा
या फसलों ने/नदियों के किनारे उगना।'

अभिषेक के पास अपनी कविता का वातावरण या पर्यावरण है, जिसे वे न केवल कवि, बल्कि एक आबजर्वर या प्रशासक की। मानवीय संवेदना के साथ देखते हैं। उनके अनुभव की प्रशासकीय पंजी (रजिस्टर) से ऐसी पंक्तियाँ अपने आप उभरती हैं–

'जहाँपनाह/विचारों पर महसूल लगा दीजिए।
जो विचार करे/ वह महसूल दे / ठीक इनकम टैक्स की तरह।'

इस कविता में विचार का वह द्वन्द्व है जो एक जिम्मेदार व्यक्ति को न सदैव विचार से ही डरे हैं और डरते हैं। अभिषेक के पास काव्य विषय भोगना होता है क्योंकि सत्ता किसी की भी हो शक्ति–सम्यक व्यक्ति अनेक हैं, जो उनकी समर्थ अभिव्यक्ति बने हैं। वे जितने विचार संपन्न और दृष्टि संपन्न है उतने ही भाषा सम्पन्न और सम्पन्न भी हैं। वे व्यर्थ की भावुकता में तो नहीं उलझते, लेकिन मनुष्यगत मर्म स्वाभाविक रूप से उनकी रचना में प्रत्यक्ष हो जाते हैं। अगर अभिषेक एक व्यर्थ की भावुकता में तो नहीं उलझते लेकिन मनुष्यगत मर्म स्वाभाविक रूप से उनकी रचना में प्रत्यक्ष हो जाते हैं। अगर अभिषेक एक श्रेष्ठ पंक्ति के बाद विचार का व्यर्थ विस्तार न करें तो शब्द मितव्ययता से उनकी कविता की गठन अधिक प्रभावी हो सकती है। कुछ पंक्तियाँ तो ऐसी हैं जो उनके ही शब्दों में सनातनी परम्परा के या नदियों के अविरल बहाव की तरह पढ़ी, सुनी और महसूस की जा सकती हैं। उनकी अभिव्यक्ति का सौष्ठव इन पंक्तियों में कितना रसात्मक होकर जीवन संवेदी बन गया है।

1. बेटियाँ पिता की/दूसरी माँ होती हैं।
2. पिता तुमसे/असहमत होने को ही मैं /सहमत हुआ/
3. (पुत्र!) तुम मेरा विस्तार करना/पुत्र तुम मुझसे ही होड़ करना/
4. तुमने किसी लड़की को/अनायास मुस्कुराते देखा है।
लड़कियाँ अनायास ही/नहीं मुस्कुरातीं/
5. तुम धूप/हो जाओ/मैं छाँव हो जाऊँ/तुम शहर हो जाओ/ मैं गाँव हो जाऊँ/
6. तुम जलती रहीं/ दीया बनकर/मेरे हर अँधेरे में/
7. नवीन स्मृतियों का सृजन/जीवन की शर्त है/
स्मृतियों की कोख में ही/नए विचार जन्मते हैं/
8. लहू की स्याही से/लिखे जाते हैं/युद्ध के परिणाम/
9. जिनके पास कुछ नहीं है/ उन्हें भी/एक दूसरे का/
दुख बाँटते देखा है।
10. खूँटी पर टँगे हुए मरीज/ या तो पूरा जीना चाहते हैं
या फिर मर जाना चाहते हैं/
11. जिस शहर में बेगमें नवाब थीं। सच कहूँ तो
उस शहर का कोई सानी नहीं है/
12. जो जहाँ था/वो/वहाँ खौफ में था/
13. खास मरने वालों में/ इंसानियत थी।
14. मेरा लहू/ कुछ फीका सा रह गया है/ इतना गाढ़ा रंग तो
किसी मेहनतकश के/खून का ही होगा/
15. एक सत्य मेरा भी है/एक सत्य तुम्हारा भी है/
यह असत्य इतना सार्वभौमिक है/ कि मेरा भी है/तुम्हारा भी है।

कविता साहित्य की रस–जननी होती है। मनुष्य अपने भौतिक जीवन से उठकर आकांक्षाओं, संवेदनाओं और अनुभवों के दृश्य–अदृश्य परिसर में जब उतरता है तो उसका सामना अनेक तत्वों और तथ्यों से होता है। अभिषेक सिंह का 'स्याही के रंग' संग्रह को पढ़कर लगा कि वे एक संभावनावान कवि हैं जिनके पास अपने समय की ताजगी है, अपनी स्मृतियों का संग्रह है, अपनी लोकभूमि के लोकाचारों और व्यवहारों का सीधा–सीधा अनुभव है, रिश्तों की संवेदना है और प्रकृति के प्रति चिन्तायुक्त चेतना है फिर चाहे वह नदी हो, वृक्ष हो या गाँव नगर का परिवेश हो। यद्यपि यह लिखने योग्य बात तो नहीं कि वे एक अखिल भारतीय सेवा के प्रशासक हैं, फिर भी कोई भी सर्जक–कवि, कथाकार या किसी भी विधा का लेखक अपनी जीवन संधियों से इसलिए मुक्त नहीं हो सकता कि वहाँ उसे अपनी रचना का कच्चा माल उपलब्ध होता है। अपने कर्म–संयुक्त समय, स्थान और वातावरण के भीतर से वह जिन शब्दों से टकराता है, जिन घटनाओं और परिस्थितियों से मुकाबला करता है, वे ही तो अन्ततः उसकी काव्यानुभूति बनती हैं।

अभिषेक सिंह की इन कविताओं में कोरोना जैसी महामारी की तात्कालिकता से उपजी करुणा है, बेटियों का पिता के प्रति मातृत्व का मार्मिक संस्कार है, पिता की छत्र–शक्ति का अहसास है और साथ ही अपने स्वाभाविक जीवन और जीविका से जुड़े प्रश्नों के प्रति चेतना और चिन्ता दोनों हैं। अभिषेक सिंह के पास भाषा की अच्छी पकड़ तो है, मगर कविता में हीं, 'तो' 'फिर' जैसे शब्दों से अगर बचा जाता तो शिल्प अधिक गठा हुआ होता। शब्द–विन्यास तो उनका सटीक है, विचार की प्रस्तुति भी बहुत loud या वाग्मिताभरी न होकर काव्यशील से युक्त है और लगता है, एक कवि अपनी भाषा में कविता की रस सत्ता, विचार–सत्ता और संवेदना का अन्वेषण कर रहा है। अति–आधुनिक या उत्तर–आधुनिक लिबास की बजाय वे अपनी स्वदेशी, स्थानीय और परिवार की भाषिक जीवंतता से जुड़े हैं। इसलिये कविता वैचारिक दुराग्रह या पूर्वाग्रह की जमीन पर किसी वाम दक्षिण की प्रतिबद्धता तो उनकी कविता नहीं बनती, हाँ इतना अवश्य है कि कहीं–कहीं यथार्थ के प्रगतिवादी–जनवादी संकेत हैं। चूँकि अभिषेक सिंह का यह प्रथम संकलन है, इसलिए अब अपेक्षा की जानी चाहिए कि उनकी काव्य–भूमि का विस्तार होगा, अधिक कल्पनाशीलता और ऊर्जा के साथ।

एस.एच. 8/19, सहयाद्रि परिसर,
भदभदा रोड, भोपाल–462003 (म.प्र.)
मो.–9406523071

सुषेण पर्व

- कृष्ण गोपाल मिश्र

राम-कथा के व्यापक फलक पर असंख्य पात्र अंकित हैं जो अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से मानवमूल्यों की सम्यक् प्रतिष्ठा करके अनुपम आदर्श उपस्थित करते हैं किंतु रामकथा के रचयिताओं ने प्रमुख चरित्र श्रीराम को ही केंद्र में रखकर काव्य-कृतियाँ रची हैं इसलिए इन पात्रों के महत् कृतित्व में सन्निहित संदेश अलक्षित ही रह गए हैं। आदिकवि की 'रामायण' से लेकर गोस्वामी तुलसीदास की 'रामचरितमानस' तक की रामकथा-यात्रा इसी प्रवृत्ति की छाया में संपन्न हुई है किंतु बीसवीं शताब्दी में कवियों ने राम के महत् चरित्र को स्वर देने के साथ-साथ रामकथा के अन्य पात्रों का चारित्रिक-वैशिष्ट्य रेखांकित करने में भी विशेष रुचि दर्शायी है। यहाँ तक कि जटायु आदि मानवेतर जीवों के आदर्श व्यवहार के कारण उन्हें भी प्रमुख पात्र बनाकर प्रबंधकाव्य रचे गए हैं। 'सुषेण पर्व' शीर्षक से सद्य: प्रकाशित यह काव्यनाटक इसी काव्यपरंपरा की नवीनतम रचना है जिसमें डॉ. देवेंद्र दीपक ने प्रथम बार वैद्यराज सुषेण के पौराणिक चरित्र को मानवीय संस्पर्श से समृद्ध किया है।

पुस्तक : सुषेण पर्व।
लेखक : देवेन्द्र दीपक।
मूल्य : 135/- रु.।

समीक्ष्य काव्यनाटक की प्रयोजनात्मक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए काव्य नाटककार ने 'पूर्विका' के अंतर्गत स्पष्ट किया है-'मैं हमेशा एक सूत्र के साथ आगे बढ़ा हूँ और वह है उपेक्षित और अलक्षित। मेरे रचनाकार के शिल्पी प्रभाकरजी (कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर) ने मुझे एक सूत्र दिया-या तो नई बात कहो, या फिर नए रूप-शिल्प में कहो। नई बात कहना आसान नहीं होता लेकिन उपेक्षित और अलक्षित के चयन से एक सुअवसर मिल ही जाता है और मैंने वही मार्ग अपनाया। पीसे हुए को क्या पीसना!'- (पृ. अमुद्रित पूर्विका से)। बीसवीं शताब्दी की काव्यकृतियों में उपेक्षित और अलक्षित पात्रों पर प्रचुर साहित्य-सृष्टि मिलती है। द्विवेदी युग में सुकवि मैथिलीशरण गुप्त आदि ने उपेक्षित पात्रों को अपनी काव्यकृतियों में प्रमुख पात्र, नायक-नायिका बनाकर प्रतिष्ठित किया तथा उनके माध्यम से मानवीय प्रवृत्तियों एवं मानवमूल्यों को रेखांकित करते हुए समाज को सार्थक दिशा-निर्देश देने का और युगीन समस्याओं के व्यावहारिक समाधान सुझाने का स्तुत्य कार्य किया। उर्मिला, राधा, बलराम, सुनंदा, नकुल आदि कितने ही पात्रों पर रचित रचनाएँ इस तथ्य की साक्षी हैं। छायावादी युग में 'कामायनी' आदि कृतियों में भी भारतीय आख्यानों के उपेक्षित-अलक्षित पात्र प्रस्तुत हुए हैं और यह प्रस्तुति-परंपरा बीसवीं शताब्दी के संपूर्ण साहित्यिक परिदृश्य को आच्छादित करते हुए अब तक सतत् प्रवाहमान है। यद्यपि नवीनता के अतिरिक्त व्यामोह में अनेक बड़े रचनाकारों ने रावण, मेघनाद, शूर्पणखा आदि असत् पात्रों को भी नायकत्व प्रदान किया है किंतु यह नवीनता मनुष्यता के समक्ष कोई अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करने में असमर्थ रहने के कारण निरर्थक है। 'कनुप्रिया' जैसे काव्य-नाटक में राधा और कृष्ण को आज के उच्छृंखल विषय-वासना ग्रस्त प्रेमी-युगल के रूप में अंकित करके डॉ. धर्मवीर भारती ने तथाकथित नवीनता का लक्ष्य भले ही अर्जित कर लिया हो किंतु संबंधित पौराणिक पात्रों के चारित्रिक औदात्य का अवमूल्यन ही किया है। डॉ. देवेंद्र दीपक के इस काव्य-नाटक की नवीनता ऐसी किसी भी अवांछनीय नवीनता से मुक्त है और वैद्यराज सुषेण के अलक्षित चरित्र को चिकित्सा-व्यवस्था से जुड़ी समसामयिक समस्याओं के समाधान के संदर्भ में व्याख्यायित करती है। इसलिए इस काव्य नाटक में डॉ. दीपक ने लक्षित और उपेक्षित के साथ-साथ नई बात कहने का लक्ष्य भी अर्जित कर लिया है।

समीक्ष्य काव्य-नाटक की प्रेरक प्रष्ठभूमि में विगत दो वर्षों की सामाजिक परिस्थितियों के साथ-साथ डॉ. दीपक की मौलिक चिंतन-दृष्टि भी सक्रिय रही है। स्वयं रचनाकार ने इस तथ्य को इन शब्दों में रेखांकित किया है-'रामानंद सागर की रामायण की प्रस्तुति बड़ी लोकप्रिय हुई। कोरोना के दिनों में भी उस आख्यान की पुनर्प्रस्तुति को जनता ने बड़े चाव से देखा और एक बात मेरे संज्ञान में आई कि लक्ष्मण मूर्छा के फिल्मांकन में सुषेण को जो महत्व मिलना चाहिए था वह महत्व नहीं मिला। लक्ष्मण की मूर्छा टूटने पर रामजी हनुमान को तो गले लगाते हैं लेकिन सुषेण तो बेचारा एकदम अदृश्य। एक प्रश्न कौंधा-जो राम गिलहरी के योगदान को रेखांकित करते हैं वह सुषेण के साथ ऐसा व्यवहार करें कि लक्ष्मण की मूर्छा टूटने पर सुषेण के प्रति कृतज्ञता प्रकट ना करें ऐसा कैसे हो सकता है! इस बात को लेकर कुछ रचनाओं को देखा प्राय: सभी जगह सुषेण को साइडलाइन कर दिया गया है। मुझे लगा कि सुषेण को केंद्र में रखकर रचना कर्म में लगूँ। सो काव्य नाटक के रूप में 'सुषेण-पर्व' पर काम प्रारंभ किया।'- (पूर्विका, पृष्ठ अमुद्रित)। डॉ. देवेंद्र दीपक के इस कथन से स्पष्ट है कि समीक्ष्य काव्य-नाटक के सृजन में सुषेण के प्रति रचनाकारों की उपेक्षा दृष्टि और कोरोनाकालीन परिस्थितियाँ भी प्रेरणा बनी हैं। वस्तुत: किसी भी साहित्यिक रचना अथवा कलाकृति के सृजन में रचनाकार का प्रयोजन प्रधान होता है। प्रयोजन एवं प्रतिपाद्य के अनुरूप ही वह कथानक आदि विषय-वस्तु का ताना-बाना बनता है और उसी के अनुसार चरित्रों को भी महत्व प्रदान करता है। रामकथापरक रचनाओं में राम ही अधिकतर केंद्रीय पात्र रहे हैं इसलिए अन्य पात्रों को विशेष महत्व नहीं मिल सका है। सुषेण की अत्यल्प प्रस्तुति का भी यही कारण स्पष्ट होता है। वे कथा-

निर्वाह के लिए संक्षेप में अंकित मिलते हैं। डॉ. देवेंद्र दीपक ने सुषेण को प्रमुख पात्र के रूप में चुना है इसलिए इस रचना का कथा-वितान अन्य रामकथा कृतियों की विषयवस्तु से पर्याप्त भिन्न और नवीन है।

समीक्ष्य काव्य-नाटक के उपजीव्य ग्रंथों में श्रीमद्भागवत्, श्रीरामचरितमानस, विष्णुसहस्त्रनाम, मानस-पीयूष, रामायण, अध्यात्म-रामायण, प्राचीन भारतीय-संस्कृति कोश आदि ग्रंथ प्रमुख हैं। इनके अध्ययन के अतिरिक्त डॉ. दीपक ने अनेक विद्वानों से संपर्क कर शास्त्रीय और लोकजीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक सामग्री को भी प्राप्त कर नाटक की विषयवस्तु को सरसता और विश्वसनीयता प्रदान की है। इस काव्य नाटक की कथावस्तु मिश्रित कोटि की है। इसमें प्रख्यात ग्रंथों से कथा-सूत्र ग्रहण कर कथानक की पौराणिकता का संरक्षण किया गया है तथा कल्पना-वैभव का सकारात्मक सदुपयोग कर कथावस्तु को समसामयिक सामाजिक संदर्भों से सम्प्रक्त करते हुए अद्भुत प्रासंगिकता प्रदान की गई है। कालनेमि की कथा, मकरी-प्रसंग, संजीवनी लाते हुए हनुमान पर भरत द्वारा शर-संधान आदि अधिकतर कथा-प्रसंग प्रख्यात कोटि के हैं जबकि सातवें दृश्य में स्वर्गीय दशरथ का अवतरण उत्पाद्य (काल्पनिक) कोटि का इतिवृत्त है। कथानक में सुषेण की पत्नी सूर्या की सृष्टि भी काल्पनिक है। इस प्रकार समीक्ष्य काव्य-नाटक में कथानक मिश्रित श्रेणी का है।

समीक्ष्य काव्य-नाटक में डॉ. देवेंद्र दीपक ने सुसंगत मौलिक उद्भावनाओं की भी सार्थक सृष्टि की है। लक्ष्मण के अनिष्ट की आशंका से व्याकुल श्रीराम के विलाप को सुनकर उन्हें धैर्य देने के लिए दशरथ की आत्मा का आगमन शेक्सपियर के हेमलेट आदि नाटकों में अवतरित आत्माओं के वर्णन से प्रभावित कहा जा सकता है किंतु लक्ष्मण के उपचार के लिए प्रस्थान करने से पूर्व सुषेण द्वारा लंका के राजवैद्य पद से त्यागपत्र देना निश्चय ही रचनाकार की मौलिक उद्भावना है-'**मुझे अपना त्यागपत्र / लिखने दो।/राज पद के बोझ से मुक्ति/ यही सार्थक युक्ति**' - **(पृ. 63-64)**

पंचम दृश्य में वैद्यराज सुषेण ने लक्ष्मण की चिकित्सा प्रारंभ करने से पूर्व ईश्वरीय आराधना का परामर्श दिया है-
'स्वामी,/ साधन और आराधन / दोनों साथ-साथ/में करता हूँ साधन आप सब करें आराधन।' - (पृ. 74 - 75)

इस प्रकार की मौलिक उदभावनाओं से इस काव्य-नाटक की कथावस्तु में रोचकता, नाटकीयता और सरसता की सृष्टि हुई है। साथ ही पुराख्यान को विकृत किए बिना नवीनता का सूत्रपात भी हुआ है।
चरित्रांकन की दृष्टि से यह काव्य-नाटक संतुलित है। राम और रावण की सेना के कुछ सैनिकों और नट-नटी के अतिरिक्त राम, लक्ष्मण, हनुमान, जामवंत, सुग्रीव, विभीषण, अंगद, सुषेण, सूर्या, चिकित्सा प्रमुख और लंका के पाँच नागरिक नाटक में प्रस्तुत हुए हैं। पुरुष-पात्रों की तुलना में नारी-पात्रों की संख्या कम है। केवल नटी और सुषेण-पत्नी सूर्या दो ही नारी पात्र हैं जिन्हें कथा-प्रसंग के आग्रह पर कल्पित किया गया है। सुषेण नाटक के प्रमुख पात्र हैं और उनके चरित्र को उभारने के लिए ही उनकी पत्नी सूर्या की परिकल्पना की गई है। सुषेण चिकित्सा-शास्त्र में निष्णात वैद्य होने के साथ-साथ विचारशील नागरिक भी हैं। नाटककार दीपक जी ने उनके चरित्र में अंतर्द्वंद की सृष्टि करके उनके व्यक्तित्व को जीवंत बना दिया है। समीक्ष्य काव्यनाटक में सुषेण के चरित्र में अंतर्द्वंद की प्रभावपूर्ण प्रस्तुति दो स्थलों पर हुई है। प्रथमत: सुषेण राजवैद्य के पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण लक्ष्मण के उपचार हेतु जाने के अवसर पर द्वंदग्रस्त हो जाते हैं और द्वितीयत: लक्ष्मण का उपचार करने से पूर्व उनके मन में द्वंद जागृत हो जाता है-
'मेरी निष्ठा पर/ सबको होगा संदेह। / वंचना का दोष मुझ पर! / ऐसे में/ मैं न रावण का रहा / और न राम का।'- (पृ. 96)

सहजता, सरलता, विचार-शीलता, कर्तव्य-परायणता, तार्किकता आदि अन्य अनेक गुणों की भी सफल प्रस्तुति सुषेण के चरित्र-चित्रण में मिलती है। सुषेण-पत्नी सूर्या का चरित्र भी औदात्य से परिपूर्ण है। वे पति-परायणा सहधर्मिणी हैं और अंतर्द्वंद ग्रस्त पति को उचित परामर्श देने में समर्थ हैं। राम के चरित्र में करुणा की प्रधानता के कारण उनके अन्य गुणों का अधिक प्रकाशन नहीं हो सका है। हनुमान अत्यंत बुद्धिमान, पराक्रमी और स्वामीभक्त समर्थ सेवक के रूप में अंकित हुए हैं किंतु एक स्थल पर उनकी प्रस्तुति उनके पारंपरिक रूप से किंचित भिन्न है। हनुमान को सर्वत्र विनम्र, बुद्धिमान, वाकपटु और रामभक्त दर्शाया गया है किंतु इस रचना में वे सुषेण और सूर्या की पारस्परिक वार्ता सुनते-सुनते उद्विग्न हो उठते हैं और कठोर स्वर में सुषेण को धमकाते से प्रतीत होते हैं। वे पहले सूर्या के माध्यम से सुषेण को संदेश भिजवाते हैं-
'आचार्य से कहो चलना है / चलना ही है!'- (पृ. 56)

और फिर सुषेण एवं सूर्या की पारस्परिक वार्ता में हस्तक्षेप करते हैं-
'तुम दोनों का बहुत हो चुका विमर्श / मेरा प्रतिपल बढ़ रहा अमर्ष
विलंब असह्य / शीघ्रता समय की माँग।' - (पृ.-63)

हनुमान के इस कथन पर सुषेण उन्हें टोकते हैं-
'हनुमान/रामदूत हो तो / राम जैसा व्यवहार चाहिए
मैं आचार्य हूँ/मेरा मेरुदंड सीधा है / मैं अभय हूँ/कैसा भय?' (पृ.-63)
ये संवाद एक ओर हनुमान और सुषेण के चारित्रिक वैशिष्ट्य एवं भिन्नता को निरूपित करते हैं तो दूसरी ओर चरित्रांकन की तुलनात्मक पद्धति के सफल प्रयोग की भी पुष्टि करते हैं। जामवंत, लक्ष्मण, मेघनाद, कालनेमि आदि अन्य पात्रों की छवि उनके व्यवहार और कथन में अंकित हुई है। समग्रत: चरित्रांकन की दृष्टि से रचना सफल है।

समीक्ष्य नाटक की सफलता का एक प्रमुख आधार इसमें प्रस्तुत

संक्षिप्त किंतु अत्यंत मार्मिक काव्यात्मक संवाद भी हैं। रचनाकार ने संवादों के माध्यम से कथानक को विस्तार दिया है और पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ भी निरूपित की हैं। युगजीवन की समस्याओं को स्वर दिया है, ज्वलंत समस्याओं के समाधान सुझाए हैं और नाटक के प्रेक्षकों एवं पाठकों को रचनात्मक संदेश दिए हैं। इस प्रकार इस नाटक में संवाद-योजना का स्वरूप अधिक स्पृहणीय बन पड़ा है। प्रसंगानुकूलता, पात्रानुरूपता, संक्षिप्तता, सरसता, सुबोधता आदि अन्य रेखांकनीय विशेषताओं से भी संवाद समृद्ध हैं।

सुषेण-पर्व में प्रस्तुत जीवनदर्शन युगानुरूप है। नारी के प्रति स्वस्थ एवं आदरास्पद दृष्टिकोण, भाग्य पर भरोसा, आशावादिता, आपद्धर्म का निर्वाह आदि अनेक बिंदुओं पर दीपक जी ने सार्थक दृष्टि दी है। प्रथम-दृश्य में नागरिकों की वार्ता में नारी के प्रति सहानुभूति इस प्रकार प्रकट हुई है-**'नारी ही सहती है/ युद्ध की आपदा!**
वही तो भोगती है/पूरा संत्रास! / नारी पर ही गिरती गाज
अतीत होता उसका / सब सुख, श्रृंगार, साज!' (पृ.-36)

इस नाटक में आशा का स्वर अत्यंत प्रबल है। लक्ष्मण की मूर्छा से आहत और हताश श्री राम जब युद्ध के भावी परिणाम के संदर्भ में चिंतित हो उठते हैं, उनकी वीरता धीरता और गंभीरता निराशा के काले कुहासे में अपना प्रकाश खो बैठती है तब जामवंत का निम्नांकित कथन आशावादिता दर्शाता है - **'दशरथ नंदन, असुर निकंदन! / हम युद्ध जीतेंगे / सीता मुक्त होंगी।' (पृ.-69)**

राम के प्रति जामवंत के निम्नांकित कथन में भारतीय-दर्शन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विषय कर्मवाद की प्रतिष्ठा मिलती है और कर्म की शक्ति से आशा का उदय दर्शाया गया है-
'कर्म की काट कर्म / कर्म का उत्तर महाकर्म
हमारी कर्म श्रृंखला अनवरत/ आज जिन आँखों में
आँसू हैं दुख के,/ कल उन आँखों में / आँसू होंगे सुख के!' (पृ.-71)

जिस प्रकार महाप्राण निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' में जामवंत राम को निराश देखकर उन्हें शक्ति की उपासना का परामर्श देते हैं- 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर'-उसी प्रकार इस काव्य-नाटक में भी जामवंत 'कर्म का उत्तर महाकर्म'-कहकर कर्म की प्रतिष्ठा करते हैं। कर्म के साथ ही भाग्य को भी इस रचना में महत्व मिला है। अनेक संदर्भों में भाग्य की स्वीकृति इस प्रकार दृष्टव्य है-
1. 'देव! यह कैसी लीला / लीला का कैसा कटाक्ष!' (पृ. 43)
2.'हे ईश्वर! / विधि का यह कैसा लेख?
किसने मेरे भवितव्य को लीला?' (पृ. 68)
3.'सब नियति का विधान / नियति ही करेगी समाधान।' (पृ. 70)

'कर्म' और 'भाग्य' की यह समन्वयवादी-दृष्टि मनुष्य जीवन की संजीवनी शक्ति है। कर्म का संदेश मनुष्य के पुरुषार्थ का पथ प्रशस्त कर उसे लक्ष्यसिद्धि की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है तथा कर्म की विफलता पर देव में विश्वास उसके आहत मन को संबल देकर उसे नकारात्मकता की ओर पतित होने से रोकता है। भाग्य और पुरुषार्थ, तकदीर और तदवीर दोनों का सुविचारित एवं संतुलित संयोग स्वस्थ्य विकास की आधार भूमि है। समीक्ष्य काव्य-नाटक में कवि ने उक्त समन्वित-दृष्टि की पुष्टि करके जीवन-दर्शन को उपादेय बनाया है।

समीक्ष्य काव्य-नाटक में निनादित संदेश सर्वथा सामयिक हैं। चिकित्सा-सेवा को व्यवसाय का निर्दय स्वरूप देती जा रही सभ्य समाज की असभ्य सोच को बदलने के लिए सूर्या और सुषेण के मध्य संपन्न संवाद सार्थक संदेश देता है। सुषेण लंका के राज वैद्य हैं। इसलिए लंका पर आक्रमण करने वाले राम की सहायता के लिए तत्काल तत्पर नहीं होते। तब सूर्या उन्हें चिकित्सक के कर्तव्य जो पंचशील के रूप में उनकी दीक्षा में अंगभूत हैं, स्मरण कराती है-
'चिकित्सा के हित हर / अनुरोध को स्वीकार करूँगा!
चिकित्सा के लिए सदा तत्पर / कोई प्रमाद नहीं!
मेरी सेवा सबके लिए सुलभ / किसी भाँति का कोई/भेद नहीं!
चिकित्सा सेवा में/अभय और निर्लोभ / संधान और प्रयोग में
रहूँगा निरंतर रत।' (पृ. 61)

अर्थात् चिकित्सक को निर्भय और निर्लोभ होकर बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक रोगी के उपचार हेतु सतत् उद्धत रहना चाहिए तथा चिकित्साक्षेत्र में नए अनुसंधान करना चाहिए। छठे-दृश्य में वनदेवी द्वारा चिकित्सकीय अनुसंधान एवं ज्ञान का व्यावसायिक उपयोग निषिद्ध किया जाना भी आज के संदर्भ में सार्थक संदेश है -**'इस औषधि का / निजी हित में व्यावसायिक उपयोग नहीं होगा।' (पृ. 87)**

मानवीय गुण-धर्म को सर्वोपरि मानकर दायित्वों का निर्वाह करना ही मनुष्य का धर्म है, कर्तव्य है। यही इस काव्य-नाटक का प्रमुख संदेश है। सूर्या के शब्दों में यह संदेश इस प्रकार मुखर हुआ है-
'अपने को रचो / अधर्म से बचो!' (पृ. 60)

अपने को रचना अपने व्यक्तित्व में मनुष्यता को पुष्ट करना है। मानसिक धरातल पर अपने भावों और विचारों में मानवीय-दृष्टि को विकसित करके ही हम स्वयं को 'रच' सकते हैं। अधर्म, अकरणीय और पाप से बच सकते हैं। राम के स्वर में भी यही लोक मंगलकारी संदेश सुनाई देता है- **'मंगल रचें/करें सदा मंगलवर्षा / इसी में निहित है हमारे मनुज होने की/सार्थकता।' (पृ. 92-93)**

समीक्ष्य नाट्य-रचना में रंग-संकेतों का स्पष्ट निर्देश अंकित करके डॉ. देवेंद्र दीपक ने इस कृति की अभिनेयता को विशेष उत्कर्ष प्रदान किया है। रंगसंकेत प्राय: प्रत्येक दृश्य के प्रारंभ में प्रस्तुत हुए हैं किंतु

कहीं-कहीं पर दृश्य के मध्य में भी रंग संकेत मिलते हैं। सातवें दृश्य में संजीवनी आ जाने पर सुषेण द्वारा किए गए उपचार के वर्णन में नाटकीयता का चरम उत्कर्ष दिखाई देता है। औषधि का संचयन करते हुए सुषेण का स्वरचित मंत्रोच्चार रचना की नाटकीयता को पुष्ट करता है-
'शोभनम् शोभनम् / शुभम् शुभम् / शिवम् शिवम्' (पृ. 99)

लक्ष्मण को औषधि का सेवन कराने से पूर्व प्रस्तुत वंदना में श्लोक का सरस्वर पाठ भी अभिनेयता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लक्ष्मण की मूर्छा टूटने पर रामादल के सैनिकों द्वारा 'जय श्रीराम, जय जय श्रीराम' का उद्घोष तथा नाटक के अंत में पटाक्षेप से पूर्व सूर्योदय के साथ रंगोत्सव का आयोजन तथा अभिनेताओं द्वारा सुषेण, हनुमान, गिरिखंड, संजीवनी आदि की परिक्रमा करते हुए नृत्यपूर्वक समूहगान की प्रस्तुति काव्यनाटक की सफलता में चार चाँद लगा देती है। समीक्ष्य काव्य-नाटक की भाषा सर्वत्र विषयानुकूल है। सुविचारित शब्द-प्रयोग, अतुकांत, लयात्मकता, पदमैत्री, बिम्बात्मकता, अलंकारिकता, लाक्षणिकता आदि विशेषताओं के कारण इस रचना की तत्सम शब्द प्रधान काव्यभाषा की रसनीयता उच्चकोटि की बन पड़ी है। सुविचारित शब्दप्रयोग का एक उदाहरण 'राजवैद्य' और 'वैद्यराज' प्रयोग में रेखांकनीय है। श्रीराम सुषेण से कहते हैं-
'सुषेण/पहले तुम राजवैद्य थे / और आज से तुम वैद्यराज।' (पृ.-103)

'राज' पद को उपसर्ग से परसर्ग में परिवर्तित करते ही शब्द का आशय पूर्णतया परिवर्तित हो जाता है। 'राजवैद्य' प्रयोग प्रतिष्ठा सूचक तो है किंतु सामंतवादी प्रवृत्ति, वैद्य की राजवंशीय सीमित प्रतिबद्धता तथा लोकजीवन से उसकी दूरी प्रकट करता है जबकि 'वैद्यराज' शब्द से व्यापक प्रतिष्ठा के साथ-साथ वैद्य की गरिमामयी स्वायत्तता भी प्रकट होती है। इस प्रकार के सुविचारित शब्द प्रयोगों से काव्यभाषागत अर्थ-गौरव में अपूर्व वृद्धि हुई है। समीक्ष्य रचना की काव्यभाषा में पदमैत्री और अतुकांत लयात्मकता का सौंदर्य भी बेजोड़ है। निम्नलिखित पंक्तियों में पदमैत्रीगत सौंदर्य निम्नवत द्रष्टव्य है-1. **'तात! सेवक तत्पर सत्वर!' (पृ.-47)**
2. **'उठाओ, उठाओ, उठाओ/ पसीने, पसीने क्यों हो गए इंद्रजीत।' (पृ.-38)**
3. **'धीरे-धीरे / कपट सामने आने लगा।' (पृ.-49)**

उपर्युक्त उद्धरणों में 'तत्पर, सत्वर', 'उठाओ', 'पसीने', 'सामने आने',-आदि पदों में वर्णों एवं स्वरों की मैत्री प्रस्तुत होने से काव्यभाषा जीवंत बनी है। अनेक स्थलों पर अतुकांत लयात्मकता की प्रस्तुति भी अपूर्व प्रभाव उत्पन्न करती है- **'जाओ, / जाकर ताल से जल पी लो ताल का जल बहुत शीतल। / बहुत मीठा!' (पृ. 83)**

डॉ. देवेंद्र दीपक ने इस रचना की काव्यभाषा में व्याकरणिक शुद्धता का अधिकांशत: निर्वाह किया है तथापि कुछ स्थलों पर स्वैच्छिक शब्द-प्रयोग की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। शब्दों की स्वैच्छिक प्रयुक्ति के दो उदाहरण निम्नवत प्रस्तुत हैं-
1. **'सुलोचना ने बहुत प्रबोधा/युद्ध से विरत होने के लिए/अनुरोधा!' (पृ. 35)**
2. **'मेरे जागृत बोध ने संकेता।' (पृ. 47)**

इन पंक्तियों में प्रबोधा, अनुरोधा और संकेता शब्द व्याकरण सम्मत नहीं हैं। यदि स्वैच्छिक शब्द-प्रयोग की यह प्रवृत्ति नियंत्रित हो जाती तो काव्यभाषा निर्दोष बन जाती। अपवाद रूप में प्राप्त इस दोष के होने पर भी काव्यभाषा में प्रभाव कम नहीं हुआ है। अलंकारिकता, बिम्बात्मकता, लाक्षणिकता आदि अन्य विशेषताओं ने भी इस कृति की काव्यभाषा को और भी प्रभावपूर्ण बनाया है। छोटे-छोटे वाक्यों में अंत्यानुप्रास की प्रस्तुति भी अत्यंत प्रभाव संपन्न है-
1. **'यह तो ठीक/ पर नहीं नीक।' (पृ. 59)**
2. **'राजपद के बोझ से मुक्ति यही सार्थक युक्ति।' (पृ. 64)**
3. **'आपका क्षेम/मेरा नेम।' (पृ. 65)**

समीक्ष्य काव्यभाषा में उपमा के सटीक प्रयोग भी अत्यंत प्रभावोत्पादक हैं-
1. **'कपूर की तरह/उड़ गया उल्लास।' (पृ. 49)**
2. **'अपने धैर्य को/रुई की तरह धुन रहे।' (पृ. 94)**

लोकोक्तियों-सूक्तियों के प्रयोगों ने भी काव्यभाषा को मार्मिकता प्रदान की है -
1. **'नकचढ़ी/कामदग्धा शूर्पणखा/की कटी नाक।**
ना नाक कटती/ना होता युद्ध/अब सवाल/नाक बचाने का है।' (पृ. 27)
2. 'गाँठ बाँध लो-
खेती को पानी/रोगी को औषधि/ समय पर मिले तो लाभ।' (पृ. 78)

उक्ति-वैचित्र्य को काव्य का सर्वाधिक शोभावर्धक उपादान कहा गया है। प्रस्तुत नाटक में कथन की भंगिमा का सौंदर्य अनेक स्थलों पर प्रकट हुआ है। एक उद्धरण निम्नवत द्रष्टव्य है-
'आज लगा/कि मैंने जल पिया / मिट्टी की महक में / जल मानो चहक उठा।' (पृ. 51)

इस प्रकार की काव्योचित पंक्तियों से काव्य-नाटक की प्रभावान्विति सर्वत्र समृद्ध है। नट-नटी संवाद की लघुवाक्यावली काव्य-नाटक के लिए अधिक अनुकूल है। समग्रत: नाटक विषय, भाव, अभिनय, नाट्य-शिल्प आदि सभी दृष्टियों से सफल है।

09-चैतन्य नगर, मालाखेड़ी रोड,
नर्मदापुरम् -461001 (म.प्र.)
मो. 9340944771

राष्ट्रध्वज

- कृष्णमुरारी त्रिपाठी अटल

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय भोपाल में सहायक प्राध्यापक एवं जाने माने ब्लॉगर श्री लोकेन्द्र सिंह की नवीन कृति 'राष्ट्रध्वज और आरएसएस' हाल ही में अर्चना प्रकाशन भोपाल से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक का मूल्य रु. 50 है। राष्ट्रीय विचारों पर तथ्यात्मक लेखन के चलते लेखक की अपनी सशक्त पहचान है। इसके लिए वे साहित्य अकादमी म.प्र. सहित अनेक संस्थाओं के पुरस्कारों से पुरस्कृत हुए हैं। उनकी अब तक 14 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें से कुछ पुस्तकों में उन्होंने सह-लेखक और संपादक के तौर पर भी भूमिका निभाई है। इनमें से उनकी चर्चित कृति 'संघ दर्शन : अपने मन की अनुभूति रही है। लोकेन्द्र सिंह की सद्य: प्रकाशित कृति 'हिन्दवी स्वराज्य दर्शन' भी शिवाजी महाराज से जुड़े यात्रा संस्मरणों पर आधारित इसी कड़ी की पुस्तक है।

पुस्तक : राष्ट्रध्वज।
लेखक : लोकेन्द्र सिंह।
प्रकाशक: अर्चना प्रकाशन, जी.एफ-7, मानसरोवर कॉम्प्लेक्स, ए-ब्लाक शिवाजी नगर, भोपाल-16 (म.प्र.)।
मूल्य : 50/- रु.।

प्राय: कूटरचित ढंग से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की समाज में छवि धूमिल करने का उपक्रम राष्ट्रविरोधी संविधान-विरोधी शक्तियाँ करती ही रहती हैं। अतएव अनेकानेक प्रकार से ऐसे लोग, समूह, संगठन विभिन्न माध्यमों के द्वारा संघ को लेकर समाज में भ्रामक संदेश फैलाते रहते हैं। इसीलिए वे इस उक्ति के साथ चलते हैं कि 'एक झूठ को सौ बार बोलो तो सच लगने लग जाएगा।' कुछ इसी तरह से संघ और तिरंगे को लेकर भी आरएसएस विरोधी शक्तियों ने स्वतंत्रता के बाद से ही एक दूषित वातावरण तैयार किया है। स्वभावत: राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में 'आत्मप्रचार' और अपने किए कार्यों का दस्तावेजीकरण करने का भाव कभी नहीं रहा है। संघ स्पष्ट रूप से राष्ट्र और समाज के सर्वांगीण कल्याण के लिए राष्ट्रीय विचारों को आत्मसात कर चलता है। प्रसिद्धि पराङ्गमुख होकर हिन्दू समाज का संगठन करते हुए समाज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करना ही संघ की शैली है। अतएव राष्ट्र विरोधी संविधान विरोधी शक्तियाँ संघ की समाज में व्यापक स्वीकार्यता से विचलित होकर-संघ के विरोध में मिथ्या, तथ्यहीन दुष्प्रचार करने में जुटी रहती हैं। ठीक इसी प्रकार से राष्ट्रध्वज तिरंगा और आरएसएस को लेकर भी समय-समय पर इनके दुष्प्रचार अभियान चलते रहते हैं। ऐसा करने वाले वे सभी लोग, दल, संगठन व समूह हैं जिनके पूर्ववर्ती कृत्यों के साथ इनकी देशभक्ति पर सदैव प्रश्नचिह्न उठे हैं। पुस्तक में लेखक लोकेन्द्र सिंह ने राष्ट्रध्वज के विकास की यात्रा, भगवा ध्वज, तिरंगा और संघ के अंतर्सम्बंधों का तथ्यात्मक ढंग से शत प्रतिशत प्रामाणिकता के साथ विश्लेषण किया है। इसमें उन्होंने जो भी बात कही है उसके लिए एक एक सन्दर्भ और प्रमाण दिए हैं। इन्हीं सन्दर्भ प्रमाणों के साथ वे पुस्तक के माध्यम से तिरंगा और संघ को लेकर पाठक से संवाद करते हैं। छ: अध्यायों —1.मन की बात 2. सांस्कृतिक पहचान 'भगवा ध्वज' 3.राष्ट्रध्वज 'तिरंगा' की संवैधानिक प्रतिष्ठा 4. राष्ट्रध्वज तिरंगे की प्रतिष्ठा में संघ ने दिया है बलिदान 5. भगवा ध्वज और संघ 6. तिरंगा और कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य; आदि के माध्यम से वे संघ और तिरंगे को लेकर किए गए दुष्प्रचारों के एक-एक सिरे प्रमाण के साथ ध्वस्त करते हैं । इतना ही नहीं 'राष्ट्रध्वज और आरएसएस' के माध्यम से वे उन तमाम ऐतिहासिक तथ्यों, सन्दर्भों, संविधान सभा की बहसों, ध्वज समिति के सुझावों, स्वतन्त्रता आन्दोलन के सर्वमान्य नेताओं आदि के वक्तव्यों/ विचारों के द्वारा तिरंगे की स्वीकार्यता आदि को लेकर अनेक मिथकों को भी तोड़ते हैं।

'सांस्कृतिक पहचान भगवा ध्वज'-इस अध्याय में लेखक ने सविस्तार, बिन्दुवार ढंग से 22 जुलाई 1947 को राष्ट्र ध्वज के रूप में तिरंगे की स्वीकार्यता तक के विभिन्न ऐतिहासिक पहलुओं पर चर्चा की है। इतना ही नहीं 2 अप्रैल 1931 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा गठित सात सदस्यीय समिति ने व्यापक जनसुझावों के आधार पर निष्कर्षत: 'भगवा ध्वज' को राष्ट्रध्वज के रूप में स्वीकार किया था। इस ध्वज समिति के सदस्य थे—सरदार वल्लभ भाई पटेल, पं. जवाहरलाल नेहरू, डॉ. पट्टाभि सीतारमैया, डॉ. ना.सु. हर्डीकर, आचार्य काका कालेलकर, मास्टर तारा सिंह और मौलाना आजाद। इसके साथ ही लेखक ने ध्वज समिति द्वारा दिए गए सुझाव यानी राष्ट्र ध्वज के रूप में 'भगवा ध्वज' की सर्वस्वीकार्यता को लेकर संघ संस्थापक सरसंघचालक डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार के प्रयासों को उद्घाटित किया है। वहीं भारत के सनातन इतिहास में ध्वज के रूप में 'भगवा ध्वज' के महत्व एवं वैदिक ऋचाओं से लेकर महान भारतीय सम्राटों के शासनकाल में भगवा ध्वज, संघ की मान्यता में भगवा ध्वज पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

'राष्ट्रध्वज तिरंगा की संवैधानिक प्रतिष्ठा' में लेखक ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं स्वयंसेवकों द्वारा तिरंगे के सम्मान में किए गए कार्यों एवं अनेक पहलुओं की ओर ध्यानाकर्षित किया है। संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरुजी द्वारा दिल्ली में 2 नवंबर, 1948 को जारी सार्वजनिक वक्तव्य के उद्धरण के माध्यम से 'संघ व तिरंगे' को

लेकर कई सारे भ्रमों का निवारण करते हैं। साथ ही इस अध्याय में लेखक ने—स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं उसके पश्चात राष्ट्रीय ध्वज के स्वरूप को लेकर आन्दोलन कारियों के विचारों को दर्शाया है। लेखक ने इस अध्याय में तथ्यात्मक ढंग से डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा 'भगवा ध्वज' को राष्ट्रीय ध्वज के रूप में स्वीकार करने की भी चर्चा की है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय ध्वज को लेकर महात्मा गांधी की नाराज़गी और उनके विचारों को प्रस्तुत किया है। दृष्टव्य है—6 अगस्त, 1947 को लाहौर में महात्मा गांधी ने सार्वजनिक रूप से अपनी नाराजगी प्रकट करते हुए कहा—'मैं भारत के ध्वज से चरखा हटाए जाने को स्वीकार नहीं करूँगा। अगर ऐसा हुआ तो मैं झंडे को सलामी देने से मना कर दूँगा। आप सभी को मालूम है कि भारत के राष्ट्रीय ध्वज के बारे में सबसे पहले मैंने सोचा और मैं बगैर चरखा वाले राष्ट्रीय झंडे को स्वीकार नहीं कर सकता।' **(सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय खण्ड 89, पृ.11-12)**

इतना ही नहीं महात्मा गाँधी के झण्डे को लेकर ये वक्तव्य किसी को भी अचरज में डाल सकते हैं। जब गाँधी जी ने 24 जून, 1947 वायसरॉय लार्ड माउंटबेटन के द्वारा—राष्ट्रीय ध्वज के एक कोने में 'ब्रिटिश यूनियन जैक' को स्थान दिए जाने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। साथ ही आगे वे तदर्थ समिति द्वारा इसके ख़ारिज किए जाने पर आक्रोशित भी हुए थे। गाँधीजी ने नईदिल्ली में 19 जुलाई, 1947 को प्रार्थना सभा में कहा कि—'इसमें क्या गलत है अगर भारत अपनी महान परंपराओं के मुताबिक राष्ट्रीय झंडे में यूनियन जैक को भी जगह दे। यदि हमारे झंडे के एक कोने में यूनियन जैक लगाया तो क्या गुनाह किया? गुनाह अगर किया होगा तो अंग्रेजों ने किया। उनके झंडे का क्या दोष है? अंग्रेजों की खूबी भी तो आप देखिए। वे स्वेच्छा से आपके हाथ में बागडोर देकर जा रहे हैं। कितनी खूबी की बात है कि इतना बड़ा बिल, जिसमें सारी सल्तनत को उन्होंने फेंक दिया, पार्लियामेंट ने पास करने में एक सप्ताह भी नहीं लगाया। एक जमाना वह था जबकि हम लोगों के मिन्नतें करते रहने पर भी छोटे-से बिल पास होने में भी एक-एक साल लग जाता था। उस बिल में उन्होंने कोई सफाई की है या नहीं; यह तो बाद में तजर्बे से पता चलेगा। मगर यूनियन जैक रखने में तो हमारी शराफत ही थी । हम अपने सबसे बड़े दरबान के तौर पर लॉर्ड माउंटबेटन को यहाँ रखे हुए हैं। वह पहले इंग्लैंड के बादशाह के नौकर थे, मगर अब हमारे नौकर हैं। जब हम उनको अपनी नौकरी में रखते हैं, तब एक कोने में उनका झंडा भी रख लेते हैं तो उससे हिन्दुस्तान के साथ कोई बेवफाई नहीं होती।' **(सम्पूर्ण गाँधी वाङ्मय, खंड-88, पृ. 447-48)**

इस प्रकार ऐसे अन्य तथ्यात्मक उद्धरणों / सन्दर्भों के माध्यम से लेखक ने तिरंगे और राष्ट्रध्वज के विषय में - तत्कालीन परिदृश्य का विस्तार से वर्णन किया है।

लोकेन्द्र सिंह ने 'राष्ट्रध्वज तिरंगे की प्रतिष्ठा में संघ ने दिया है बलिदान' अध्याय में-वर्ष 1962 में भारत चीन युद्ध के समय कम्युनिस्टों के भारत विरोधी कुकृत्यों पर चर्चा के साथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों के योगदान को सप्रमाण प्रस्तुत किया है। साथ ही इस अध्याय में उन्होंने—1963 की गणतंत्र दिवस परेड में पं. नेहरू द्वारा स्वयंसेवकों को आमंत्रण, गोवा मुक्ति आंदोलन में संघ के स्वयंसेवक और तिरंगे की रक्षा में प्राणोत्सर्ग, जेल की यातना, दादरा और नगर हवेली की स्वतंत्रता में संघ के योगदान, 1955 में उज्जैन के स्वयंसेवक नारायण बलवंत उपाख्य 'राजाभाऊ महाकाल' का गोवा मुक्ति आन्दोलन में तिरंगे की रक्षा करते हुए बलिदान, जम्मू-कश्मीर में धारा 370 का विरोध, काश्मीर के लालचौक में स्वयंसेवकों द्वारा तिरंगा फहराना, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का जम्मू-कश्मीर में अभियान, एक देश में दो विधान, दो प्रधान, दो निशान नहीं चलेंगे-नहीं चलेंगे के उद्घोष के साथ प्रजा परिषद के नेतृत्व में आंदोलन, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का संघर्ष और बलिदान, सहित अनेक स्वयंसेवकों के बलिदानों पर तथ्यात्मक विषय सामग्री प्रस्तुत की है। इन समस्त सन्दर्भों के माध्यम से लेखक ने राष्ट्रध्वज तिरंगे के सम्मान और रक्षा को लेकर संघ के स्वयंसेवकों के योगदान को रेखांकित करते हुए सत्य को जनसामान्य तक लाने का महनीय कार्य किया है।

पुस्तक के पाँचवें अध्याय—'भगवा ध्वज और संघ' में लेखक ने 27 सितम्बर 1925 को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के गठन और गुरु के रूप में भगवा ध्वज की धारणा पर पर सविस्तार प्रकाश डाला है। इसमें उन्होंने संघ संस्थापक डॉ. हेडगेवार, संघ की कार्यप्रणाली, गुरु के रूप में भगवा ध्वज की मान्यता के पीछे विविध सांस्कृतिक दृष्टांतों, गुरुदक्षिणा, संघ के समविचारी/ आनुशांगिक संगठनों में भगवा ध्वज की स्वीकार्यता आदि को लेकर विभिन्न उद्धरणों, दृष्टांतों के माध्यम से चर्चा करते हैं। अंतिम अध्याय 'तिरंगा और कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य' में लेखक ने—हर घर तिरंगा अभियान, भारतीय सेना, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, संविधान सभा में प्रस्तुत तिरंगे, लाल किले से तिरंगा फहराने की परम्परा, संस्कृत सम्मेलन व शांति निकेतन में भगवा ध्वज को लेकर माँग, झण्डा सत्याग्रह, श्यामलाल गुप्त पार्षद द्वारा 'झंडा गीत' लिखने के पीछे की कहानी, पिंगली वेंकैया की पुस्तक, इत्यादि प्रसंगों का रोचक वर्णन किया है।

स्पष्ट रूप से यह पुस्तक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) और तिरंगे को लेकर फैलाए गए षड्यंत्रकारी कूटरचित विभ्रमों पर सन्दर्भ सहित प्रमाण प्रस्तुत करती है। सत्य का उद्घाटन करते हुए सप्रमाण संघ की राष्ट्र निष्ठा और भारत के संवैधानिक आदर्शों, प्रतीकों को लेकर संघ की मान्यता को प्रस्तुत करती है। राष्ट्रध्वज के रूप में तिरंगे की स्वीकार्यता तक के विभिन्न पड़ावों की कहानी कहती है। कई सारी भ्रान्तियों और मिथकों को तोड़ती है।

एलआईजी 250, ई-7,
अवंतिका पार्क के पास,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016
मो.- 9617585228

स्मृति शेष कथा अशेष

- राजेन्द्र सिंह गहलौत

बंगाल का प्रथम विभाजन 19 जुलाई 1905 को भारत के तत्त्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जन द्वारा किया गया था जो कि दोनों विभाजित भागों की भारतीय जनता के विरोध के कारण सन् 1911 में रद्द कर दिया गया तथा पूर्वी बंगाल एवं पश्चिमी बंगाल पुन: एक हो ग,। देश के विभाजन के साथ ही 1947 में बंगाल दूसरी बार विभाजित हो गया तथा इस बार हिन्दू बाहुल्य एवं मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र के आधार पर बंगाल का पूर्वी भाग पाकिस्तान में चला गया तथा पश्चिमी भाग भारत में रहा। लेकिन देश के विभाजन में हिन्दू मुस्लिम एकता में भी फर्क साम्प्रदायिक तनाव बढ़ा। जबकि देश विभाजन के पूर्व ही बन 1946 में बंगाल में कलकत्ता एवं नौवाखली में भीषण दंगे हुए तथा देश विभाजन के बाद सन् 1950 और सन् 1964 में पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दू मुस्लिम के मध्य साम्प्रदायिक दंगे हुए। सन् 1971 में पूर्वी पाकिस्तान एक बार पुन: विभाजित हो कर बांग्लादेश के नाम से एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। जिसके इस्लामिक राष्ट्र बनने के बाद हिन्दू बंगालियों को काफी तादाद में विस्थापित होना पड़ा जिसका असर हिन्दू मुस्लिम अंतर्संबंधों में भी पड़ा। दूसरी ओर बंगाली शरणार्थियों का भी लगातार भारत आना जारी रहा जिनके पुनर्वास की समस्याओं से भी देश को जूझना पड़ा तथा देश के पश्चिमी बंगाल के साथ ही उत्तर प्रदेश, असम, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि प्रांतों में विस्थापित बंगालियों को बसाया गया। बंग -भंग के इतिहास तथा बंगभंग से विस्थापित बंगालियों की दशा, हिन्दू मुस्लिम बंगालियों के मध्य हुए दंगे उनके मन में व्याप्त परस्पर वैमनस्य सबको रेखांकित करते हुए हिन्दी भाषा में कम ही उपन्यास दृष्टिगोचर होते हैं जबकि बांग्ला भाषा में संभवत: इस विषय पर काफी लिखा गया है। यद्यपि 6 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद तोड़े जाने पर बांग्लादेश के मुसलमानों ने बांग्लादेश के हिन्दू बंगालियों पर आक्रामक प्रतिक्रया की उनके सैकड़ों धर्म स्थल तोड़े गए जिसे केन्द्र में रख कर बांग्लादेश की प्रतिष्ठित साहित्यकार तसलीमा नसरीन ने बहुचर्चित कृति 'लज्जा' लिखी। लेकिन उन की वह कृति भारत में मस्जिद तोड़े जाने पर बांग्ला देश में उसकी प्रतिक्रया में वहाँ हुए हिंदू बंगालियों पर हिंसक घटनाओं को रेखांकित करती है वह प्रतिक्रियात्मक घटना बंग-भंग से नहीं जुड़ पाती है। ऐसी स्थिति में प्रतिभू बनर्जी का आलोच्य उपन्यास मेरी जानकारी में संभवत: एक मात्र हिन्दी भाषा में लिखा हुआ उपन्यास है जो बंग-भंग के इतिहास तत्तकालीन परिस्थितियों तथा विस्थापित बंगालियों की पूरी व्यथा कथा को रेखांकित करता है।

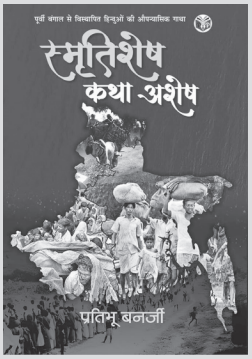

पुस्तक : स्मृति शेष कथा अशेष।
लेखक : प्रतिभू बनर्जी।
प्रकाशक : द पेनमेन प्रेस।
मूल्य : रु. 525/-।

उपन्यास के कथानक का प्रारंभ अतीत के बंगाली परिवार के एक दृश्य से होता है यह परिवार जतिन बाबू का है। उपन्यास के कथानक में 'वन्देमातरम' गीत के प्रभावशाली स्वर सुनाई पड़ते हैं तो ह्रदय विदारक 1770 के भीषण अकाल की स्मृतियाँ भी मुखर होती हैं साथ ही द्वितीय महायुद्ध की भी बातें की जाती हैं यह सब जतिन के बाबा अघोरनाथ के स्वर में प्रस्तुत होता है। तत्त्कालीन बंगालियों के रोजी-रोटी की समस्या से जूझते हुए वर्मा प्रवास, जात्रा नाटक का आयोजन आदि के दृश्य जतिन के काका लोकनाथ दत्त के माध्यम से प्रस्तुत होता है। उपन्यास के पात्र रहमान के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम एकता के दृश्य जहाँ दिखलाई पड़ते हैं वहीं समय बदलने के बाद मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र में मुस्लिमों द्वारा ठाकुर दा को अपमानित करने के दृश्य से हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य, साम्प्रदायिक दंगों के दृश्य भी प्रस्तुत होते हैं। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन, युवा क्रांतिकारी खुदीराम बोस की फाँसी, चौरी चौरा कांड, ब्रिटिश सरकार द्वारा

जारी 'जरीब कानून' तथा 1924 का 'नजरबंदी कानून' आदि को उपन्यास के कथानक में समाहित किया गया है। अघोरनाथ पर असहयोग आंदोलन में सक्रिय होने का आरोप लगा कर भैरवनगर में नजरबंद किया गया तथा नजरबंदी से वापस लौटने के बाद उनने अपने ग्राम में बहुत सारे परिवर्तनों को देखा। जबकि अघोरनाथ के पुत्र जतिन बाबू की स्मृतियों से तत्तकालीन बंगाल की बहुत सारी स्थितियाँ उपन्यास में उभर कर सामने आती हैं। हिन्दू मुस्लिम दंगे, युवाओं का स्वाधीनता संग्राम में शामिल होना, अंतर्जातीय विवाह, हिन्दू विधवा विवाह कानून आदि। बंगाल के गरम खून ने सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व को स्वीकारा। जबकि मुस्लिम लीग ने हिंदू मुस्लिम के बीच मतभेदों की खाई को और चौड़ा किया तथा इसके साथ ही पाकिस्तान निर्माण की माँग ने जोर पकड़ा। अंतत: 1947 में देश का विभाजन हुआ। अघोरनाथ एवं जतीन के परिवार को बंगाल से विस्थापित होना पड़ा तथा कोलकाता बाद में वर्धमान जिले के पल्ला कैंप में शरण मिली फिर वहाँ से भारत सरकार के पुनर्वास मंत्रालय द्वारा निर्देशित करने पर उन्हें मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ के माना कैम्प में शरण लेना पड़ा। वहीं जतिन को हेल्थ इंस्पेक्टर की नौकरी मिली तथा रिटायरमेन्ट के बाद पूर्वी मध्यप्रदेश के एक शहर को उन्होंने स्थाई निवास बनाया।

देश के विभाजन में पंजाब एवं सिंध के विस्थापितों की भीषण दुर्दशा के चित्र बहुत सारी कृतियों में चित्रित है लेकिन देश विभाजन में बंगाल के विभाजन एवं विस्थापितों की दयनीय दशा का चित्रण कम ही हिन्दी भाषा की कृतियों में चित्रित किया गया। इसके पीछे एक प्रमुख कारण यह भी है कि बांग्ला साहित्यकारों ने सिर्फ अपनी मातृभाषा बंगला में ही साहित्य सृजन किया। इस दृष्टिकोण से भी आलोच्य उपन्यास हिन्दी भाषा में लिखे जाने की वजह से हिन्दी भाषी पाठकों हेतु महत्त्वपूर्ण बन जाता है। यद्यपि उपन्यास का कथानक सिर्फ 1947 के देश विभाजन की पूर्व की स्थितियों एवं देश विभाजन के साथ ही बंगाल के विभाजन बंगालियों के विस्थापन तथा पुर्नवास की स्थितियों को ही अपने कथानक में समेटता है लेकिन उपन्यासकार ने उपन्यास की भूमिका में सन् 1905 में पहली बार बंग–भंग के इतिहास से लेकर 1947 में बंगाल विभाजन एवं बांग्ला देश के निर्माण तथा वहाँ से विस्थापित हिंदू बंगालियों पर भी विस्तार से चर्चा की है।

उपन्यास में एक लंबे कालखंड की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों को सहेज कर यथासंभव उन्हें कथानक में शामिल किया गया है जबकि विस्तृत चर्चा पात्रों के कथनों एवं संस्मरणों के माध्यम से भी प्रस्तुत की गई है। यह सब उपन्यासकार के गहन अध्ययन से ही संभव हो सका है जिसके हेतु वे बधाई के पात्र हैं। नि:संदेह वर्तमान साहित्य में उनका यह उपन्यास अपनी विषयवस्तु के साथ ही उसकी रोचक प्रस्तुती की वजह से भी हर वर्ग के पाठकों द्वारा सराहा जाऐगा।

बुढ़ार 484110,
जिला शहडोल (म.प्र.)
मो.–9329562110

सूचना

'अक्षरा' का अप्रैल 2024 का अंक 'राम' पर आधारित होगा। रचनाकार अपनी अप्रकाशित मौलिक रचना अक्षरा कार्यालय या ईमेल पर भेजने का कष्ट करें। आपकी रचना 10 मार्च 2024 तक प्राप्त हो जाए।

ईमेल - myakshara18@gmail.com

स्वप्नदर्शी

- विवेक रंजन श्रीवास्तव

मन से अश्विनी कुमार दुबे व्यंग्यकार हैं, उपन्यासकार और कथाकार हैं। दुबे जी को म. प्र. साहित्य अकादमी, भारतेंदु पुरस्कार, अम्बिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार, स्पेनिन सम्मान आदि से समय-समय पर सम्मानित किया गया है। यद्यपि रचनाकार का परिचय किसी पुरस्कार या सम्मान मात्र से बिल्कुल नहीं दिया जा सकता। दरअसल सच ये होता है कि श्री अश्विनीकुमार दुबे के रचना कर्म के समदृश्य बहुविध लेखन करने वाले गंभीर रचनाकर्मी का ध्यान पुरस्कार और सम्मानों के लिये नामांकन करने की ओर नहीं जाता, वे अपने सारस्वत लेखन अभियान को अधिक वरीयता देते हैं। आजीविका के लिये अश्विनी कुमार दुबे अभियंता के रूप में कार्यरत रहे हैं। उनका रचनात्मक कैनवास वैश्विक रहा है। भारत रत्न मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरैया जी के जीवन पर केंद्रित उनका उपन्यास 'स्वप्नदर्शी' बहुचर्चित है। यह उपन्यास केवल व्यक्ति केंद्रित न होकर विश्वेश्वरैया जी के जीवन मूल्यों, संघर्ष और कार्य के प्रति उनकी ईमानदारी तथा निष्ठा को प्रतिष्ठित करता है। भगवान को भी जब रातों रात सुदामा पुरी का निर्माण करवाना हो तो उन्हें विश्वकर्मा जी की ओर देखना ही पड़ता है। बदलते परिवेश में भ्रष्टाचार के चलते इंजीनियर्स को रुपया बनाने की मशीन समझने की भूल घर, परिवार, समाज कर रहा है। इस आपाधापी में अपना जमीर बचाए न रख पाना इंजीनियर्स की स्वयं की गलती है। समाज व सरकार को देखना होगा कि तकनीक पर राजनीति हावी न होने पावे। मानव जीवन में विज्ञान के विकास को मूर्त रूप देने में इंजीनियर्स का योगदान रहा है और हमेशा बना रहेगा। किन्तु जब अश्विनी जी जैसे अभियंता लिखते हैं तो उनके लेखन में भी वैज्ञानिक दृष्टि का होना लेखकीय गुणवत्ता और पाठकीय उपयोगिता बढ़ाकर साहित्य को शाश्वत बना देता है।

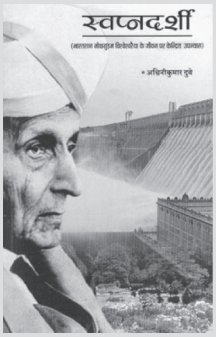

पुस्तक : स्वप्नदर्शी।
लेखक : अश्विनी कुमार दुबे।
प्रकाशक : इंद्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।
मूल्य : 250/- रु.।

अश्विनी जी के विश्वेश्वरैया जी पर केंद्रित उपन्यास 'स्वप्नदर्शी' में पाठक देख सकते हैं कि किस तरह वैचारिक तथ्य तथ्यो को भाषा, शैली और शब्दावली का प्रयोग कर अश्विनी जी ने अपनी लेखकीय प्रतिभा का परिचय दिया है। उन्होंने विषय वस्तु को शाश्वत, पाठकोपयोगी, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। यह जीवनी केंद्रित उपन्यास वर्ष 2017 में प्रकाशित हुआ है अर्थात् पाठक को इसमें लेखन यात्रा में एक परिपक्व लेखक की अभिव्यक्ति देखने मिलती है। इसके लेखन के दौरान अश्विनी जी मधुमेह और उच्च रक्तचाप की बीमारियों से ग्रसित रहे हैं पर उन्होंने योजनाबद्ध तरीके से उपन्यास की सामग्री सँजोई और कल्पना के रंग भरकर उसे जीवनी परक उपन्यास के रोचक फार्मेट में पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है। मेरे पढ़ने में आया स्वप्नदर्शी विश्वेश्वरैया जी पर केंद्रित पहला ही उपन्यास है। किसी के जीवन पर लिखने हेतु रचनाकार को उसके समय परिवेश और परिस्थितियों में मानसिक रूप से उतरकर तादात्म्य स्थापित करना वांछित होता है। स्वप्नदर्शी में अश्विनी जी ने विश्वेश्वरैया जी के प्रति समुचित न्याय करने में सफलता पाई है। उपन्यास से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं, जिन से पाठक अश्विनी कुमार दुबे के लेखन में उनकी वैज्ञानिक दृष्टि की प्रतिछाया का आभास कर सकते हैं।

'तुम्हें खुली आँखों से देखना और जिज्ञासु मन से समझना है। अपनी जिज्ञासा को कभी मरने मत देना'

'सिर्फ कृषि कार्यों पर निर्भर रहकर हम अपनी गरीबी दूर नहीं कर सकते, निर्धनता से लड़ने के लिये हमें अपने उद्योग और व्यापार को बढ़ाना होगा।'

'इंग्लैंड में एक प्रतिष्ठित नागरिक ने विश्वेश्वरैया जी से उपहास की दृष्टि से पूछा जब सारी दुनिया अस्त्र-शस्त्र बना रही थी, तब अपका देश क्या कर रहा था? विश्वेश्वरैया जी ने तपाक से उत्तर दिया तब हमारा देश आदमी बना रहा था। उन्होंने स्पष्ट किया कि विवेकानंद, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी इसी दौर के भारतीय हैं जिन्होंने दुनिया को शाश्वत दिशा दी है। विश्वेश्वरैया जी के इस जवाब का उस अंग्रेज के पास कोई उत्तर नहीं था।'

'चमत्कारों में मेरा भरोसा नहीं है। मैं आदमी के हौसलों का कायल हूँ। मैंने एक स्थान देखा है जहाँ विशाल बाँध बनाया जा सकता है।' ये मैसूर के निकट सुप्रसिद्ध कृष्णराज सागर बाँध के विश्वेश्वरैया जी द्वारा किए गए रेकनाइसेंस सर्वे का वर्णन है।

233, ओल्ड मीनाल,
भोपाल 462023 (म.प्र.)
मो.- 7000375798

शहर दर शहर

– जया केतकी

फिल्म निर्माण के साथ अनेक विधाओं में सृजन कर रहे 'इरावती' पत्रिका के संपादक राजेंद्र राजन का उपन्यास 'शहर दर शहर' प्रथम दृश्टया उनकी यात्राओं एवं आत्मकथ्यों का संकलन दिखाई पड़ता है। प्राक्कथन में राजेंद्र राजन लिखते हैं प्रस्तुत पुस्तक मेरे भीतर दशकों तक दबी पीड़ा का प्रतिफल है जिसे मैं न मालूम कैसे और क्यों सालों साल सीने में दबाए रहा। भीतर की अनुभूतियों, खट्टी-मीठी स्मृतियों का जखीरा किसी कोने में सुप्तावस्था में मौजूद रहता है हर लेखक के। असंख्य कहानी, किस्से और घटनाएँ शब्दबद्ध होने के लिए लंबी प्रतीक्षा में लेखक के चेतन व अवचेतन का हिस्सा बनी रहती हैं। इसी के अंतिम पैरा में वे अपने मित्रों और सहयोगियों का आभार व्यक्त करते हैं।

पुस्तक : शहर दर शहर।
लेखक : राजेन्द्र राजन।
प्रकाशक : विजया बुक्स, 1/10753, सुभाष पार्क, गली नं.-3, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032।
मूल्य : 295/- रु. ।

पुस्तक के बारे में शिमला से श्रीनिवास जोशी लिखते हैं कि समीक्षा का कार्य दुरूह है। समीक्षा का कार्य पैदा करना है तो मारना भी। उसका कार्य पौधे लगाना है तो पौधे उखाड़ना भी। वह रोग देता है तो रोगहर भी बनता है। वह बनी बनाई चीज को तोड़ता है तो टूटी हुई चीज को जोड़ता भी है। वह रोता है तो हँसता भी है। इतना होने पर भी मूर्तियाँ केवल सृजन कर्ताओं की लगती हैं, समीक्षकों की नहीं।

आवरण देखने से आभास होता है कि यह उपन्यास है, पढ़ने से पता चलता है कि यह उपन्यास है ही नहीं बल्कि आत्मकथा है। इसे आत्मकथात्मक उपन्यास कह सकते हैं लेकिन आत्मकथात्मक उपन्यास में कल्पना के अंश होने चाहिए। वे केवल आत्मकथा और संस्मरण तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए। लेखक स्वयं असमंजस में है कि वह क्या लिख रहा है आत्मकथात्मक उपन्यास या आत्मकथा।

मुंबई से सूरज प्रकाश कुछ नोट्स के अंतर्गत लिखते हैं। लेखक यहाँ पर चाह कर भी झूठ नहीं बोल सकता बेशक वह कुछ चीज, कुछ बातें, कुछ प्रसंग, कुछ घटनाएँ कुछ दुखद घटनाएँ बयाँ न करें। यह संकेत मात्र दे दे लेकिन आत्मकथा में झूठ नहीं बोल पाता और यही झूठ न बोलना उसके लिए सबसे बड़ा संकट हो जाता है। जिसके बारे में भी सच बोला जाए वही नाराज हो जाता है। लत लेकर पीछे पड़ जाता है। मुकदमे तक की धमकी दी जाती है और मुकदमे किए भी जाते हैं। जीवन भर के लिए जो संबंध टूट जाते हैं वह अलग। धर्मशाला से विजय उपाध्याय चंडीगढ़ से जितेंद्र अवस्थी ने भी अपने विचार इसके अंतर्गत रखे हैं।

इस आत्मकथात्मक उपन्यास के अंदर आपको कई शीर्षक मिलेंगे- आधी हकीकत आधा अफसाना, यह पहला शीर्षक है। दूसरा है टाइपिंग में करियर की तलाश, तीसरा है सेनेटरी शॉप में सेल्समैनी। आढ़ती की मुंशीगिरी। अगला शीर्षक है प्रेम की बगिया में खिले फूल, उसके बाद शीर्षक है दिलबर से दिल्लगी। नीमला टैक्सटाइल को टाटा यह भी एक शीर्षक है। अगला शीर्षक है ताराचंद के शॉर्ट हैंड स्कूल में, फिर अमृतसर की गलियों में, नया शहर नए जख्म, प्रेम की जंग में जीत, कपड़ा नापने की नई नौकरी, लेखकों से मुठभेड़, आई एम विनोद सहगल, नया शहर नए चारागाह, दैनिक ट्रिब्यून से दोस्ती, संवेदनशील कहानी का किरदार, जनसत्ता ने बनाया खोजी पत्रकार, भल्ला और विज से नजदीकियाँ, चंडीगढ़ में चंद और लेखक, पंजाब का मुक्तिबोध कुमार विकल, दिलगीर का कला दर्पण, खौफ के साए में एक रात, जब नई सुबह ने दस्तक दी, चंडीगढ़ से नाहन को विदाई, यह अंतिम शीर्षक है।

25 शीर्षकों के अंतर्गत यह लेखक राजेंद्र राजन की आत्मकथा है। 152 पृष्ठ का यह उपन्यास विजय बुक्स दिल्ली से प्रकाशित है जिसका मूल्य 295 रुपए है।

द्वारा हिंदी भवन, भोपाल
मो.-9826245286

26 जनवरी 2024, गणतंत्र दिवस की झलकियाँ

सरोजिनी नायडू

जन्म : 13 फ़रवरी, 1879
प्रयाण : 2 मार्च, 1949

भारत देश है प्यारा

भारत देश है हमारा बहुत प्यारा,
सारे विश्व में है यह सबसे न्यारा,
अलग–अलग हैं यहाँ सभी के रूप रंग,
पर सुर सब एक ही गाते,
झंडा ऊँचा रहे हमारा,
हर परदेश की है यहाँ अलग एक जुबान,
पर मिठास की है सभी में शान,
अनेकता में एकता को पिरोकर,
सबने हाथ से हाथ मिलाकर देश सँवारा,
लगा रहा है अब भारत सारा,
''हम सब एक हैं'' का नारा,
भारत देश है हमारा बहुत प्यारा,
सारे विश्व में है यह सबसे न्यारा।

नारी

बचपन में माँ ने नारी का किरदार निभाया है,
उसने ही तो हमें ठीक से चलना, बोलना और पढ़ना सिखाया है,
उम्र जैसे बढ़ी तो पत्नी ने नारी का रूप दिखाया है,
उसने हर परिस्थिति में हमें डटकर लड़ना सिखाया है,
फिर बेटी ने नारी का रूप अपनाया है,
दुनिया से प्यार करना सिखाया है,
और तो क्या ही लिखूँ मैं नारी के सम्मान में,
हम सब तो खुद ही गुम हो गए हैं अपनी ही पहचान में।

बदलता हूँ

मैं सोच भी बदलता हूँ,
मैं नजरिया भी बदल ता हूँ,
मिले न मंजिल मुझे,
तो मैं उसे पाने का जरिया भी बदलता हूँ,
बदलता नहीं अगर कुछ
तो मैं लक्ष्य नहीं बदलता हूँ,
उसे पाने का पक्ष नहीं बदलता हूँ।

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।